महाराणा सांगा और उनका काल

3596



डॉ0 राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय फैजाबाद
के मध्य कालीन एवं आधुनिक इतिहास विषयान्तर्गत
पी–एच0 डी0 उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

2011

अग्रसारित

प्राचार्य
रणवीर रणञ्जय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
अमेठी - सी.एस.एम. नगर (उ0प्र0)

शोध निर्देशक

16.5.2011

डॉ0 राम सुन्दर यादव
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग
रणवीर रणञ्जय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
अमेठी–सी0एस0एम0 नगर (उ0प्र0)

शोधार्थी

16.05.2011

धर्मेन्द्र कुमार तिवारी
एम0ए0 (मध्यकालीन इतिहास)
ग्राम व पोस्ट – टिकरी
अमेठी–सी0एस0एम0 नगर (उ0प्र0)

डॉ0 राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय फैजाबाद
(उ0प्र0)



महान योद्धा महाराणा सांगा

प्रमाण-पत्र

डॉ० राम सुन्दर यादव
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग
रणवीर रणञ्जय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
अमेठी–सी0एस0एम0 नगर (उ0प्र0)

निवास:
केशवनगर, अमेठी
जनपद– सी०एस०एम० नगर (उ०प्र०)
मो०– ०९७२१७८०८४७

प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री धर्मेन्द्र कुमार तिवारी आत्मज श्री गया प्रसाद तिवारी ने मेरे निर्देशन में मध्यकालीन इतिहास विषयान्तर्गत ''महाराणा सांगा और उनका काल'' शीर्षक पर पी–एच0डी0 उपाधि हेतु मौलिक शोध कार्य किया है। इन्होंने डॉ0 राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद की नियमावली में निहित विधि के अनुसार अनुसंधान कार्य सम्पन्न किया है।

अतएव मैं पी–एच0डी0 उपाधि के मूल्यांकनार्थ इस शोध–प्रबन्ध को सहर्ष संस्तुत करते हुए शोधार्थी के मंगलमय भविष्य की कामना करता हूँ।

दिनाँक : 16-5-2011 ई०

शोध निर्देशक

(डॉ० राम सुन्दर यादव)

आभार

आभार

इस संसार में बड़े–बड़े पुण्यों के उदय होने से मनुष्य का शरीर प्राप्त होता है। इसी मानव–शरीर के माध्यम से मनुष्य को सृजनात्मक कार्य करने का अवसर मिलता है। अपने पुण्यों के प्रभाव से मैं शाण्डिल्य गोत्रीय तिवारी वंश में उत्पन्न हुआ, उस पर भी मेरा परम सौभाग्य था कि मुझे मेरे आदरणीय पिता श्री गया प्रसाद तिवारी और पूजनीया जननी श्रीमती रामलली तिवारी की उपलब्धि हुई। आप दोनों ने हर प्रकार से प्रयास करते हुए और कष्टों को सहते हुए मुझे आज कुछ करने के योग्य बनाया। मैं अपने माता–पिता को बार–बार प्रणाम करता हूँ और यह कामना करता हूँ कि इसी प्रकार के माता–पिता सभी को प्राप्त हों।

मध्यकालीन इतिहास में एम0ए0 की परीक्षा जब मैंने उत्तीर्ण किया तब मेरा परम सौभाग्य था कि डॉ0 अक्षयवर नाथ तिवारी रीडर संस्कृत विभाग, आर0आर0पी0जी0 कालेज अमेठी, सुलतानपुर की ज्येष्ठ एवं सुयोग्य पुत्री माधुरी (एम0ए0 संस्कृत) के साथ 18 मई 2003 को मेरा विवाह हो गया। मेरी अभूतपूर्व उन जीवन संगिनी ने मुझे बार–बार शोध कार्य के लिए प्रेरित करना प्रारम्भ किया। इसी प्रेरणा के फलस्वरूप मैंने आदरणीय गुरुवर डॉ0 राम सुन्दर यादव रीडर एवं अध्यक्ष इतिहास विभाग आर0आर0पी0जी0 कालेज अमेठी, सुलतानपुर से अपने शोध कार्य के लिए निवेदन किया और आपने उदारभाव से इस कार्य के लिए सहर्ष अपनी सहमति प्रदान कर दिया। आपकी कृपा मेरे ऊपर अनवरत बनी रही और इसी प्रकार का भाव भविष्य में भी बना रहेगा। मैं अपने उन आदरणीय गुरुदेव का बार–बार अभिनन्दन एवं वन्दन कर रहा हूँ। यद्यपि इस शोध

कार्य को करने के लिए न तो मेरी बौद्धिक क्षमता थी और न ही मैं आर्थिक रूप से अपने को सामर्थ्यशील पा रहा था किन्तु पूजनीय डॉ0 अक्षयवर नाथ तिवारी के सुदृढ़ सम्बल और धैर्यपूर्ण आशीष के द्वारा मुझे कहीं पर भी अपनी बौद्धिक तथा आर्थिक अल्पता का आभास मात्र भी नहीं हो सका।

माननीय शोध समिति के द्वारा कृपा–पूर्वक ''महाराणा सांगा और उनका काल'' विषय मेरे लिए जब स्वीकृत हो गया तब मैंने कुछ कार्य किया। किन्तु इसी बीच शुक्रवार 31 दिसम्बर 2010 को क्रूर महाकाल ने मेरी आदर्श धर्मपत्नी को कवलित कर लिया। मैं एकदम टूट गया और किंकर्तव्यविमूढ़ होकर किसी तरह अपना जीवन निराशा पूर्वक बिताने लगा। महाकाल के इस बज्रापात से आहत और धर्मपत्नी की शोकाग्नि की भीषण ज्वाला में मेरा तन और मन झुलस गया। मुझ जैसे अबोध एवं सामान्य को आदरणीय डॉ0 अक्षयवर नाथ तिवारी ने पुत्रवत् स्नेह प्रदान करते हुए सान्त्वना पूर्वक साहस दिलाया। यद्यपि डॉ0 अक्षयवरनाथ तिवारी को सपरिवार अपनी प्रिय–पुत्री के असामयिक वियोग से अकथनीय कष्ट था किन्तु आपने अपने उस शोकाग्नि को उसी प्रकार मेरे सामने आपने दबाकर रखा जैसे आयुर्वेद के अन्तर्गत पुट पाक के लिए भूमि अग्नि को अपने भीतर समाहित किए रहती है और पुट पाक के अग्नि के संताप को भीतर–भीतर झेलता रहता है। आप एक आदर्श पुरुष हैं। इस शोक की घड़ी में शोधकार्य की धारा में आप मुझे जिस प्रकार लाए वह केवल मैं ही जानता हूँ। आपके प्रति कुछ कहने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। मैं आदर पूर्वक डॉ0 अक्षयवर नाथ तिवारी का नमन करता हूँ।

जैसे–तैसे मुझ शोकाकुल को यह महत्वपूर्ण शोध उपाधि प्राप्त तो हो जायेगी किन्तु अच्छा तो होता कि उस घड़ी के सुख का अनुभव मैं अपनी सतत प्रेरणादायिनी धर्मपत्नी माधुरी के साथ करता। अपना वश किसी पर भी नहीं होता है किन्तु मुझे इतना विश्वास अवश्य है कि मेरी धर्मपत्नी की शुभकामना मेरे प्रति हर समय बनी रहेगी और वह स्वर्ग में रहकर भी मेरी हर प्रकार की उपलब्धियों में अपनी भागीदारी करेंगी।

इसी क्रम में मैं अपने अग्रज आदरणीय श्री विनोद कुमार तिवारी के प्रति मैं अपना अकथनीय आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने हर समय हमें हर प्रकार से सहयोग प्रदान किया है। दुःख की घड़ी में मेरी आदरणीय दोनों बहनों श्रीमती रेखा तथा श्रीमती रंजना नें स्वयं को संभालकर मुझे टूटने से बचाया और इस कार्य को करने के लिए मुझे प्यारपूर्वक प्रेरित किया। मैं उन दोनों को बार–बार प्रणाम करता हूँ। इस आभार की कड़ी में मैं अपनी अम्मा श्रीमती उर्मिला तिवारी (धर्मपत्नी डॉ0 अक्षयवर नाथ तिवारी) तथा सचिन एवं लालजी (पुत्र डॉ0 अक्षयवर नाथ तिवारी) के प्रति अपना आभार प्रदर्शित करता हूँ। आप सभी हमें अपने पारिवारिक सदस्य के रूप में सम्भालते और स्वीकार करते हुए हर क्षेत्र में आशीर्वाद और सहयोग प्रदान करते रहते हैं। आभार की इसी श्रृंखला में हर प्रकार से सहयोग करने वाले श्री रामकृष्ण तिवारी, श्री सुभाष द्विवेदी तथा श्री महेश चन्द्र अग्रहरि का भी सच्चे भाव से स्मरण कर रहा हूँ।

अपना आशीर्वाद और सम्बल प्रदान करने वाले डॉ0 त्रिवेणी सिंह पूर्व प्राचार्य तथा डॉ0 लाल साहब सिंह, वर्तमान प्राचार्य आर0आर0पी0जी0 कालेज अमेठी का मैं सादर वन्दन और अभिनन्दन कर रहा हूँ, जिनका

सहयोग और आशीर्वचन हमें प्राप्त हुआ और भविष्य में भी उसी भाव से प्राप्त होता रहेगा।

श्री राजेन्द्र प्रसाद शुक्ल बुक लिफ्टर, पुस्तकालय आर0आर0पी0जी0 कालेज अमेठी का मैं बहुत आभारी हूँ। पुस्तकों के निर्गत करने में आपने मेरा पूर्ण सहयोग किया है। इसी क्रम में विषयगत सामग्री के संग्रह करने में मैं श्री जितेन्द्र मिश्र (भांजा डॉ0 अक्षयवर नाथ तिवारी) का मैं बहुत आभारी हूँ जिन्होंने महत्वपूर्ण एवं व्यस्त अध्ययन के समय भी मेरा सहयोग किया है। डॉ0 बालकृष्ण द्विवेदी ने मेरे इस दुष्कर कार्य में बहुत सहायता किया है मैं उनका बहुत आभारी हूँ।

अपने इस शोध कार्य की सामग्री के संकलन में मुझे जिन–जिन विश्वविद्यालयों और शोध संस्थानों का कृपा पूर्वक सहयोग मिला है, उनके प्रति आभार प्रकट करना मेरा हार्दिक एवं नैतिक दायित्व है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की पूर्णता की दिशा में जिन आदरणीय इतिहास लेखकों, विद्वानों तथा विशेषज्ञों का मुझे सहयोग प्राप्त हुआ है, मैं उनके प्रति आदर पूर्वक आभार व्यक्त करता हूँ।

कृपाकांक्षी

16.05.2011

वासन्तीय नवरात्र
वर्ष 2011 ई0

धर्मेन्द्र कुमार तिवारी
एम0ए0 (मध्यकालीन इतिहास)
ग्राम व पोस्ट – टिकरी, अमेठी
सी0एस0एम0 नगर (उ0प्र0)
मो0 09451468018 / 9984099050

प्राक्कथन

प्राक्कथन

इतिहास की समीक्षा करके कार्य करने वाला कोई व्यक्ति अथवा देश उन्नति के पथ पर अग्रसर हुआ करता है। हमारे भारतवर्ष का इतिहास अनेक दृष्टियों से समृद्धिशाली रहा है। भारत–भूमि के ऊपर एक से बढ़कर–एक देशप्रेमी, बलिदानी धर्मरक्षक, सामाजिक उन्नयन करने वाले, दानी, विवेकशील, दृढ़प्रतिज्ञ, परमवीर, तेजस्वी, कार्यकुशल, प्रजापालक, और नेतृत्वशक्ति से प्रतिष्ठा को प्राप्त अनेकानेक शासक और राजा हुए है जिनकी यशोगाथा का गान करते हुए आज भी लोग अपने को हर प्रकार से गौरवान्वित किया करते हैं। यह मेरे सौभाग्य का विषय था कि मुझे भारतीय इतिहास के पन्नों पर सदा–सदा के लिए ओजस्वी, प्रजापालक, दृढ़व्रती और अपनी अन्तिम सांस तक देश के लिए चिन्ता करने वाले मेवाड़नरेश 'महाराणा' की उपाधि के द्वारा महिमा मण्डित संग्राम सिंह को लक्ष्य करके मैं ''महाराणा सांगा और उनका काल'' नामक शोध–शीर्षक शोध–कार्य के लिए स्वीकृत किया गया।

महाराणा सांगा एक कुशल राजनीतिज्ञ नेता और महान देशप्रेमी राजपूत थे। अपनी प्रजा और देश की रक्षा करना उनके रोम–रोम और साँस–साँस में समाया हुआ था। वास्तव में राजपूत राजाओं ने अनेक सुल्तानों का सामना कर अपनी स्वतन्त्रता के लिए भरसक प्रयत्न किया था। सम्पूर्ण राजपूत–इतिहास में महाराणा सांगा का व्यक्तित्व और कृतित्व अंगुलियों पर गिने जाने वाले लोगों में है। राणा सांगा अपने युग के सर्वाधिक शक्तिशाली हिन्दू शासक थे और राजपूताना के अन्य राजा, राव, रावत तथा सरदार उनके नेतृत्व को स्वीकार करते थे। राणा सांगा और

उनके जीवन के लक्ष्य तथा उनके आचरण आज की भारतीय जनता के लिए आदर्श बने हुए हैं। उन्हें हिन्दू पक्ष के रूप में आदरपूर्वक प्रतिष्ठित किया गया है। अतः राणा सांगा के कृतित्व और व्यक्तित्व को वास्तविक रूप में प्रस्तुत करना मेरे शोध का प्रमुख लक्ष्य है।

''महाराणा सांगा और उनका काल'' नामक मेरा शोध प्रबन्ध कुल आठ अध्यायों में विभक्त है। मेरे शोध प्रबन्ध का प्रथम अध्याय ''मेवाड़ की भौगोलिक स्थिति एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि'' के नाम से है। इसके अन्तर्गत मेवाड़ के उस समय की भौगोलिक स्थिति को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है और इसी अध्याय के अन्तर्गत प्रारम्भिक काल से लेकर महाराणा रायमल और राणा सांगा का मेवाड़ का इतिहास है।

द्वितीय अध्याय का नाम ''रायमल की मृत्यु के समय मेवाड़'' है। इस अध्याय के भीतर राणा रायमल की मृत्यु के काल के समय मेवाड़ की दशा का उल्लेख किया गया है।

तृतीय अध्याय ''राणा सांगा का उत्कर्ष, अजमेर और चाकसू से सम्बन्ध'' नाम से है। इस अध्याय के भीतर राणा सांगा के उत्कर्ष को अन्तः और वाह्य दोनों प्रकार से प्रस्तुत किया गया है और उसके बाद राणा सांगा का अजमेर और चाकसू के ऊपर किये गये आक्रमण और उनकी विजय को दर्शाया गया है। इसी क्रम में राजपूतों की असफलता/ पराजय के कारणों का भी उल्लेख किया गया है।

चतुर्थ अध्याय ''राणा सांगा, ईडर, मालवा और गुजरात राज्य'' के नाम से है। इसी अध्याय में राणा सांगा के सम्बन्ध को ईडर मालवा और

गुजरात के साथ दिखाया गया है। साथ ही राणा सांगा द्वारा तीनों राज्यों के साथ प्रयोग में लाई गयी नीतियों को प्रस्तुत किया गया है।

पंचम अध्याय ''राणा सांगा का दिल्ली के सुल्तानों से सम्बन्ध'' के रूप में है। इस अध्याय के अन्तर्गत दिल्ली सल्तनत की स्थापना एवं प्रमुख वंशों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। इसी अध्याय में खिलजी वंश और लोदी वंश के अन्तर्गत बहलोल लोदी को दिखाते हुए सिकन्दर लोदी और इब्राहीम लोदी की राणा सांगा के साथ प्रयोग में लायी गयी नीतियों और लड़ाइयों का उल्लेख हुआ है।

षष्ठ अध्याय ''राणा सांगा और बाबर'' के नाम से है। इस अध्याय में राणा सांगा और बाबर को लक्ष्य करके दोनों के आरम्भिक जीवन तथा संक्षिप्त वंश–वृक्ष को प्रस्तुत करते हुए दोनों के जीवन में आई हुई कठिनाइयों और समस्याओं का प्रस्तुतीकरण है। इसके बाद दोनों की राज्य की प्राप्ति को दिखाते हुए 'खानवा' के महासमर क्षेत्र में लड़े गये भीषण संग्राम और उसके परिणाम को दिखाया गया है।

मेरे शोध प्रबन्ध का सप्तम् अध्याय ''राणा सांगा कालीन सामाजिक और सांस्कृतिक उन्नति के नाम से कहा गया है। इस अध्याय के अन्तर्गत राणा सांगा के समय में मेवाड़ राज्य की सामाजिक और सांस्कृतिक उन्नति को अनेक बिन्दुओं के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

अष्टम अध्याय ही मेरे शोध प्रबन्ध का अन्तिम भाग है। इस अध्याय के अन्तर्गत शोध–प्रबन्ध का उपसंहार प्रस्तुत किया गया है और अन्त में शोध प्रबन्ध की पूर्णता के लिए प्रयुक्त सन्दर्भित ग्रन्थों की प्रामाणिक सूची प्रस्तुत है।

विषयानुक्रम

विषयानुक्रम

प्रथम अध्याय

मेवाड़ की भौगोलिक स्थिति एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

अ. मेवाड़ का भूगोल

ब. मेवाड़ का संक्षिप्त इतिहास

(प्रारम्भ से रायमल तक)

प्रथम अध्याय

मेवाड़ की भौगोलिक स्थिति एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

(अ) मेवाड़ का भूगोल

मेवाड़ चारों ओर से पर्वतों से आच्छादित है। मेवाड़ के पश्चिमी, पश्चिमी–दक्षिणी, उत्तरी और पूर्वी सीमा के भाग पहाड़ी हैं और मध्य का भाग मैदानी है। मैदानी भाग बनास और उसकी सहायक नदियों द्वारा सिंचित है।[1] मेवाड़ का पर्वतीय भाग अधिक महत्वपूर्ण हैं।

मेवाड़ राज्य की सीमायें और इसका आकार समय–समय पर परिवर्तित होता रहा है। भूतपूर्व मेवाड़ राज्य राजस्थान के दक्षिण में स्थित था। मेवाड़ के पूर्वी और उत्तरी–पूर्वी सीमाएं आधुनिक चित्तौड़ जिले की बेंगू तहसील तक ही थीं। पश्चिम में गोंडवाड़ का भू–भाग मेवाड़ में सम्मिलित था। उत्तर पश्चिम में मारवाड़ का पाली जिला मेवाड़ और मारवाड़ की सीमा बनता था। सोजत, जैतारण और बर भू–भाग मेवाड़ की उत्तरी पश्चिमी सीमा बनाते थे। 15वीं शताब्दी में मेवाड़ की उत्तरी सीमा बांधनवाड़ा ग्राम तक थी।[2] दक्षिण में मेवाड़ की सीमाएं जावर तक थीं। सामान्यतः मेवाड़ को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं–

1. मेवाड़ का पर्वतीय भाग
2. मेवाड़ का मैदानी भाग

मेवाड़ का अधिकांश भाग पहाड़ी होने के कारण अधिक महत्वपूर्ण है। पर्वतीय अधोलिखित हैं–

1. ऊपरमाल का पठार
2. बैराठ के पहाड़

3. जरगा पर्वतमाला

4. पई–कोटड़ा के पहाड़

5. धरियावद पर्वतमाला

6. भोमट पर्वतमाला

7. राणा–काकर के पहाड़

8. मगरा पर्वत

1. ऊपरमाल का पठार

मेवाड़ प्रदेश का ढाल उत्तर–पूर्व की ओर है।[3] जैसा कि, मानचित्र में भी दर्शाया गया है मेवाड़ के पूर्वी भाग में ऊपरमाल का पठार व बैंगू तहसील है। इस पठार में मांडलगढ़ का दुर्ग बहुत ही ख्याति प्राप्त है। ऊपरमाल के मुख्य पर्वतों की श्रृंखला में बिजेपुर, बिजोलिया, सुखानन्द जी के पर्वत हैं। राणा सांगा के पूर्व काल में इस क्षेत्र के लिए अनेकानेक बार युद्ध हुए, जिसमें मुगलों को मुँह की खानी पड़ी थी। 'जरवा' मैदानी भाग से बहने वाली नदियाँ उत्तर–पूर्व की ओर बहती हैं। साबरमती व वाकल नदियाँ दक्षिण की ओर बांगा, कदमाली आदि नदियाँ उत्तर की ओर प्रवाहित होती हैं।

पर्वतों से अच्छादित होने के कारण मेवाड़ प्रदेश अत्यन्त ही सुशोभित और रमणीय प्रतीत होता है। नदियों की धारा से सिंचित प्रदेश सदैव पुष्पित और पल्लवित रहते हैं।

2. बैराठ के पहाड़

बैराठ के पहाड़ मेरवाड़ा के पर्वतीय भागों में अपना वर्चस्व बनाए हुए हैं। यहाँ के पहाड़ छोटे–छोटे होने के कारण मनभावन लगते हैं। पर्वतों की ऊँचाई अधिक न होने के कारण यह क्षेत्र छापामार युद्ध के लिए उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। यहाँ की 'मेव' जाति मेवाड़ के राजपूतों के लिए

हमेशा आँख की किरकिरी बनी रही। राणा सांगा के पूर्ववर्ती राणा लाखा[4] को इन मेव जातियों से संघर्ष करना पड़ा था।

मेव जाति इन पर्वतीय भागों मे निवास के पूर्व मेवाड़ में ही निवास करती थीं। राजपूतों से मेव जाति अपना उचित तालमेल न बढ़ा सके, यही कारण था कि समय–समय पर इनमें आपसी छिट–पुट संघर्ष चलता रहता था।

3. जरगा पर्वतमाला

मेवाड़ प्रदेश का यह भाग सैनिक दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण रहा है। सैनिक दृष्टि से और सुरक्षात्मक दृष्टिकोण से भी यह पर्वत माला विशेष है। यहाँ की ऊँची–ऊँची पहाड़ियां सैनिकों की रक्षा में सहायक सिद्ध होती हैं। जरगा कुम्भलगढ़ पर्वत के पास 3215 फीट ऊँची एक पर्वत श्रेणी है।[5] सैनिक दृष्टि से उन्नत होने के कारण मेवाड़ शासकों ने सदैव इस श्रेष्ठता पर रखा है। भील जाति यहाँ के निवासियों में मुख्य हैं।

प्राकृतिक दृष्टिकोण से देखने पर यह ज्ञात होता है कि यहाँ की मनमोहक घाटियाँ व घने जंगल जहाँ एक तरफ युद्धपरक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं वहीं दूसरी ओर वे इन थके सैनिकों को एक नई ऊर्जा व साहस प्रदान करने में सक्षम होते हैं।

4. पई कोटड़ा के पहाड़

पई कोटड़ा के पहाड़ मेवाड़ प्रदेश की भीतरी गिरवा क्षेत्र में आता है। यह क्षेत्र पहाड़ी है और भीलों का प्रमुख निवास स्थान है। सैनिक दृष्टि से यह स्थान भी अपने में महत्व रखता है। गुरिल्ला युद्ध के लिए यह

पर्वत श्रृंखला महत्वपूर्ण मानी जाती है। वाह्य आक्रमणों से यह श्रृंखला सुरक्षा प्रदान करती है और प्रदेश को उन्नतिशील रखने में अपना योगदान प्रदान करती है।

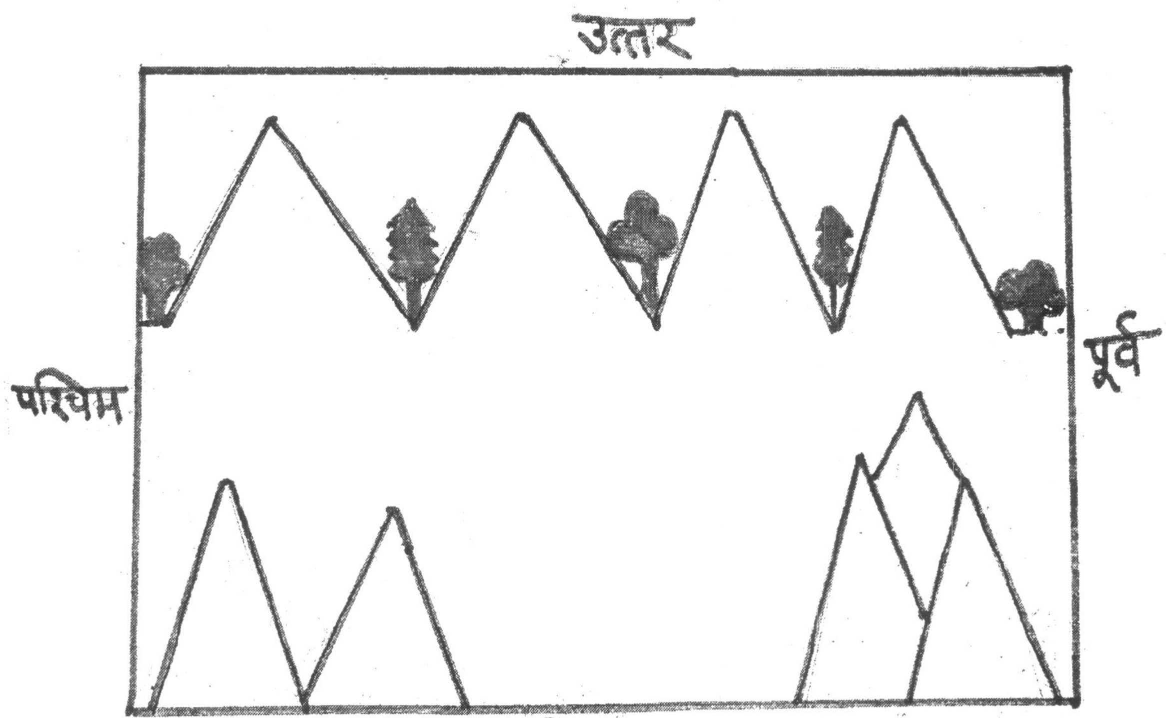
5. धरियावद पर्वतमाला

धरियावाद पर्वतमाला एक सजग प्रहरी की भांति मेवाड़ प्रदेश के पूर्वी भाग में विराजमान है। इसके परितः गहरी खाईंयों के कारण शत्रु के आक्रमण स्वतः ही कम हुए हैं, अर्थात् यह सुरक्षा कवच अपने मे ही पूर्ण है। यहाँ के पर्वत छोटे–छोटे हैं जो कि सैनिकों के लिए सुमार्ग बनाते हैं। इसमें प्रतापगढ़ से मिले हुए क्षेत्र में घना जंगल भी है।

6. भीमट पर्वतमाला

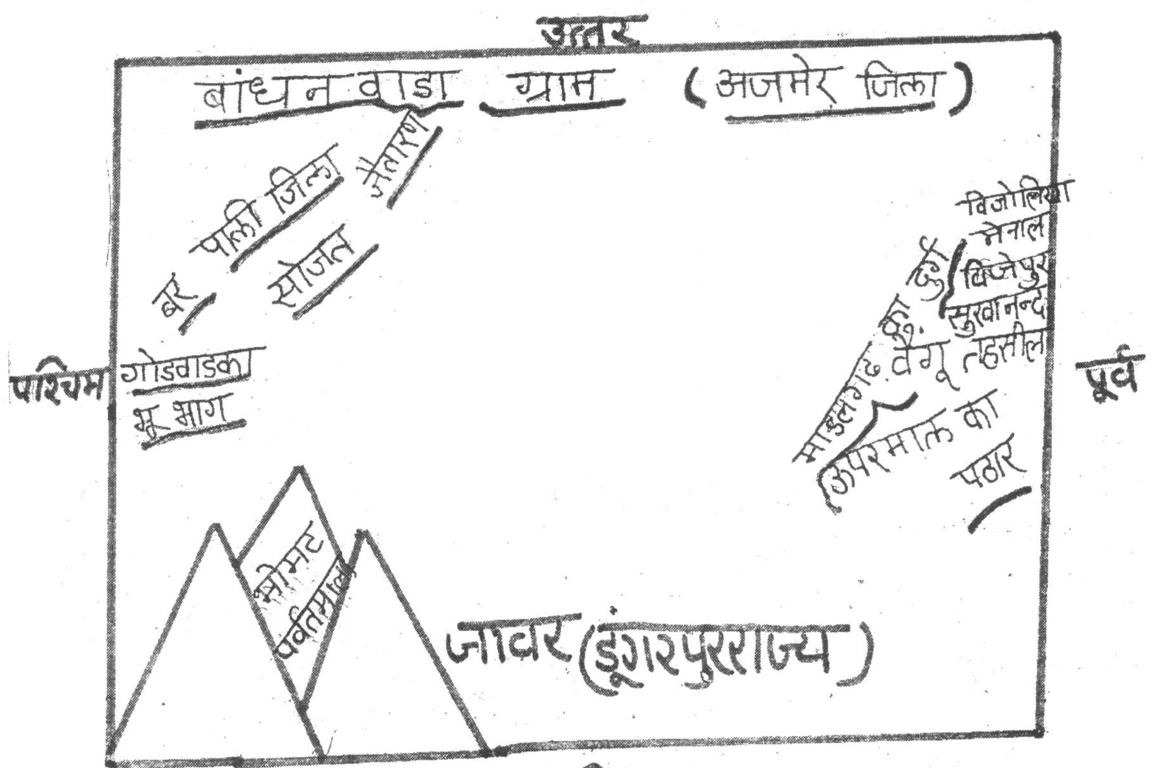
यह भाग मेवाड़ का सर्वाधिक घना पर्वतीय भाग है भीमट का यह क्षेत्र जंगलों से घिरा हुआ है। धरियावाद पर्वत माला की भाँति भीमट पर्वतमाला भी शत्रुओं से रक्षा करने में समर्थ है। इस क्षेत्र में वर्षा औसत से अधिक होती है, शत्रु से सुरक्षा का एक महत्वपूर्ण पहलू यह भी था। गुजरात प्रदेश में अपना आधिपत्य जमाने के लिए और वहाँ पर आक्रमण करने के लिए यह क्षेत्र महत्व का था। अन्य प्रदेशों के शासक भीमट को अपने अधीन करने के लिए अनेकों प्रयास किए, जिसमें ईडर प्रदेश विशेष था, लेकिन वे सफल न हो सके।

भोमट मेवाड़ के दक्षिणी–पश्चिमी भाग में शोभयमान है। गोगुन्दा से 'सरवण' ग्राम तक दो समानान्तर पर्वत मालाएं चलती हैं। एक पर्वत माला वाकल नदी के पश्चिम में होकर जाती है, जबकि दूसरी पर्वतमाला ओगुणा



दक्षिण

मेवाड़ का भौगोलिक वर्णन



दक्षिण

मेवाड़ की भौगोलिक स्थिति

कमलनाथ (2638) कोल्यारी होकर जाती है। ईडर और गुजरात की ओर आने वाला एक प्राचीन मार्ग भी था। भीमट पर्वतमाला सघन और औसत से अधिक वर्षा वाला क्षेत्र होने के कारण मेवाड़ के शासकों का एक शरण स्थल था। यह क्षेत्र शत्रुओं को पराजित करने और अपनी सुरक्षा करने के लिए भी प्रसिद्धि को प्राप्त था।

7. राणा काकर के पहाड़

यह पर्वतमाला घने जंगल और घाटियों से प्रायः वंचित है। मध्यकाल में यह क्षेत्र सैनिक दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है और इसकी एक पर्वतमाला जरगा पर्वतमाला से मिली हुई है। राणकपुर, गोगून्दा, गूलर के पहाड़ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। गोगून्दा तक जाने वाली पर्वतमाला, राणकपुर से शुरू होती है।

राणा–कांकर के पहाड़ में प्राकृतिक सौन्दर्य का अभाव है, यहाँ की पर्वतमालाएं छोटी होने के कारण शत्रु से रक्षा करने में पूर्णरूप से समर्थ नहीं हैं।

8. मगरा के पर्वत

मेवाड़ का यह क्षेत्र पहाड़ी और घने जंगलों से अच्छादित है। गिरवा के दक्षिणी भूभाग मगरा कहलाता है। जयसमंद की झील इसी क्षेत्र में आती है। 'चांवड' नगर मध्यकाल में बड़ा उल्लेखनीय रहा है।

शत्रुओं से रक्षा करने में मेवाड़ का यह क्षेत्र भी ख्याति प्राप्त है। चीड़, देवदार और बाँसों की सघनता के कारण शत्रुओं को नाकों चने

चबाना पड़ता है। मेवाड़ के महाराणाओं ने 'मगरा' की इन्हीं विषमताओं को देखते हुए इस क्षेत्र की सुरक्षा प्रबन्ध उत्तम ढंग से करने में लगे रहे।

प्राकृतिक दशाएं

वर्षा

मेवाड़ प्रदेश में वर्षा का औसत सामान्यतः 20 इंच के आसपास है। कुम्भलगढ़ गोगुन्दा, चावन्ड आदि पर्वतीया भू–भाग में वर्षा का औसत से अधिक है।[8] यहाँ पर कभी–कभी अतिवर्षा और कभी–कभी अकाल के कारण असामान्य स्थिति बनी रहती है।

वर्षा की इसी असामान्य कारण क्षेत्रीय जनता प्रर्ण चिन्तामुक्त न रहकर सदैव असमंजस की स्थिति से घिरी रहती है।

जलवायु

सामान्यतः किसी प्रदेश की जलवायु उसके निवासियों के विकास की स्पष्ट प्रमाण होती है। उपरिवर्णित है कि मेवाड़ प्रदेश पहाड़ो से आच्छादित है, पहाड़ी क्षेत्रों में पानी प्रायः भारी होता है जो कि अधिक मेहनत करने वालों के लिए स्वास्थयप्रद व हितकारी होता है। साथ ही साथ वृक्षों की और मैदानी भागों की औसत मात्रा न होने के कारण अधिकगर्मी व अधिक सर्दी पड़ती है। सामान्य रूप से देखा जाय तो मेवाड़ के लोगों के लिए मेवाड़ की जलवायु स्वास्थ्य प्रद ही है।

स्थापत्य कला व मार्ग

मेवाड़ का भौगोलिक वर्णन करते समय हमें वहाँ कि स्थापत्य कला पर दृष्टिपात करना समीचीन होगा–

लिपिबद्ध स्थानों से जिस प्रकार हम साधनों के माध्यम से इतिहास के सांस्कृतिक पक्ष का निर्माण कर सकते हैं। स्थापत्य कला के साधनों में दुर्ग, जलाशय, सार्वजनिक भवन, मन्दिर और मूर्तियाँ, राजप्रासाद आदि हैं। राजस्थान में स्थापत्य कला का विकास सांगा के पूर्व महाराणा कुम्भा के समय से ही होता है। उनके समय में प्रसिद्ध शिल्पशास्त्री मण्डन हुआ, जिससे वस्त शिल्प कला पर पाँच ग्रन्थ लिखे जिनमें 'प्रासाद मण्डल', रूपावतार व रूपमण्डन अधिक प्रसिद्ध हैं।[9] चित्तौड का कीर्तिस्तम्भ मण्डन की शिल्पकला का अद्वितीय उदाहरण है।

साहित्य वर्णित लेख के अनुसार मेवाड़ के मुख्य मार्गों का उल्लेख किया जाता है–

मन्दसौर व बागड़ होकर अहमदाबाद से चित्तौड़ आने का एक रास्ता था। गुजरात से देहली जाने वाला मार्ग ऋषभदेव जी, आहाड़, एकलिंग जी, देलवाड़ा, मोही, भीलवाड़ा, अजमेर होकर के जाता था।[10] मालवा के उ0 पूर्वी भाग एक रास्ता माडलगढ़ होकर चित्तौड़ आता था मंडोर से चित्तौड़ जाने का रास्ता पाली, मदारिया, व बागोर होकर जाता था।

नदियाँ

मेवाड़ प्रदेश के भू–भाग को सिंचित करके उपजाऊ बनाने में सहायक नदियों में सोम नदी, खारी, वाकल, आहाड़ की नदी आदि हैं। मेवाड़ प्रदेश के जनजीवन को समृद्धि व खुशहाल करने इन नदियों का संक्षिप्त वर्णन अधोलिखित है–

सोम नदी मेवाड़ की प्रमुख नदियों में से एक है। जाकम नदी इसकी सहायक नदी है। यह छोटी सादड़ी से अवतरित होकर प्रतापगढ़ भू–भाग में प्रवेश करती है।

खारी नदी मेवाड़ के उत्तर की ओर बहती है, इसका उद्गम दिवेर है। मेवाड़ के कुछ भागों से होकर बनास में जाकर मिलती है।

बाकल नदी गोगून्दा के पश्चिम से खाना होकर दक्षिण की ओर ओगुमा भानपुर के पास होकर गुजरात में प्रवेश करती है, जहाँ यह साबरमती में गिर जाती है।[11]

आहाड़ की नदी मेवाड़ की प्रमुख नदियों में से एक है, इसे बेड़च नदी भी कहते हैं। इसका उद्गम स्थल 'गिरवा' पर्वतमाला है और यह उदयपुर नगर से होते हुए उदयसागर में गिरती है। गंभीरी, कदमाली आदि नदियाँ भी इसमें मिलती हैं। यह मेवाड़ में लगभग 210 किमी0 बहती है।

मेवाड़ की सबसे मुख्य नदी बनास है इसका उद्गम स्थल 'जरगा' पर्वतमाला है। यह मेवाड़ में कुरज, गिलूँड, हमीरगढ़ आदि के पास बहकर टौंक जिले में प्रवेश करती है और मध्य प्रदेश के निकट चम्बल में मिलती है। इस नदी का प्राचीनतम उल्लेख नासिक के शक क्षत्रय नहपान के दामाद उषवदात् के लेख में है।[12] मेवाड़ में इसका प्रवाह क्षेत्र 290 किमी0 है।

2. मेवाड़ का केन्द्रीय भाग या मैदानी भाग–

मेवाड़ के केन्द्रीय या मध्य भाग मैदानी भाग कहलाता है। छोटी–छोटी पहाड़ियों के होते हुए भी यह भाग सूखा हुआ है। और जंगलों से

रिक्त है। बनास और उसकी सहायक नदियों के द्वारा यह जनजीवन को शीतलता प्रदान करती है। चित्तौड़ जिले का कुछ भाग, भीलवाड़ा का भाग, फतह नगर, रेलभगरा, आमेट, राजसमेद तहसीलों के भाग मैदानी भागों में मिलाया जा सकता है, यहाँ अधिकांशतः नहरों व तालाबों द्वारा सिंचाई होती है। यहाँ की मिट्टी काली है जो कि उपजाऊ है। उपजाऊ क्षेत्र होने के कारण वर्ष मे तीन फसलें भी ली जा सकती हैं। चाही, नगरी, बारानी, माल और खेड़ा मध्यकाल में भी प्रत्येक गाँव में तालाब होने के प्रमाण मिलते हैं।[13] असिंचित भूमि को बारानी भूमि कहा जाता है। माल जमीन में फसल अच्छी होती है। शहर के पास की भूमि को खेड़ा कहते है।

अधिकांश भाग पहाड़ी होने के कारण बचे हुए मैदानी भाग में कृषि कार्य किया जाता था। नदियों की पर्याप्त मात्रा होने के कारण भू–भाग समय–समय पर सिंचित किया जाता था, फलतः उपज अच्छी होती थी।

भाग 'ब': मेवाड़ का प्राचीन इतिहास

किसी भी देश अथवा प्रदेश विशेष का गौरव उसका इतिहास का निर्माण बीती हुई घटनाओं के आधार पर होता है जो विभिन्न स्रोतों में वर्णित होती है। इन ऐतिहासिक स्रोतों में शिलालेख, दानपात्र, सिक्के और विभिन्न भाषाओं में लिखित ऐतिहासिक साहित्य एवं चित्रकला के नमूने आदि होते हैं।

मेवाड़ राज्य, राजस्थान के विशाल प्रदेशों में एक था। पूर्व मेवाड़ काल के इतिहास को उजागर करने का मुख्य श्रेय मध्य मेवाड़ काल के

बाद में जो घटनाएं घटित हुईं तथा वीरता का जो उत्कृष्ट उदाहरण जन प्रचलित हुआ, उसका विशेष स्थान है। यहाँ यह बात उदाहरण है कि जिस प्रकार मुगल काल का संस्थापक बाबर था, यदि उसे अकबर जैसा श्रेष्ठ पौत्र न प्राप्त हुआ होता तो शायद बाबर का इतिहास में वह स्थान न होता जो आज है। ठीक इसी प्रकार मध्य मेवाड़ काल में महाराणा हम्मीर, कुम्भा, रायमल व राणा सांगा जैसे श्रेष्ठ योद्धा व पराक्रमी शासक न होते ते मेवाड़ का नाम भी राजस्थान के अन्य राज्यों की तरह ही लिया जाता। मेवाड़ का नाम लेते ही मन रोमांचक हो उठने का कारण वहाँ की वीरता का प्रदर्शन ही है।

प्रागैतिहासिक काल में चित्तौड़ जिले की मध्यमिका नगरी सम्पन्न नगर था। मेवाड़ में हुए विभिन्न सर्वेक्षणों से ज्ञात होता है कि ताम्राश्मकाल में मेवाड़ में बनास और उसकी सहायक नदियों का क्षेत्र बहुत ही उन्नत था। गंभीरी, बांगी, कदमाली नदियों के तटों से प्राप्त सामग्री के अवलोकन एवं आहड़, गिलूंर एवं बागोर क्षेत्रों मे हुए उत्खनन से यह प्रमाण भी मिलता है। गिलूंड आदि क्षेत्रों में उत्खनन से प्राप्त अवशेष एवं सामग्रियों से वहाँ के निवासियों की संस्कृति का ज्ञान होता है और साथ ही साथ वहाँ के पड़ोसी अन्य छोटे राज्यों के रहन सहन की स्थिति एवं संस्कृति की भिन्नता का स्पष्ट परिचय देते हैं। महेश्वर, नाबदा–टोडी आदि स्थानों से कुछ पात्र भी मिले हैं जो इसकी अपनी अलग ही विशेषता बताते हैं। उत्खनन से यही भी ज्ञात हुआ है कि यहाँ के राज्य मध्य में व्यवधान में रहे थे। बागोर में पूर्व पाषाण काल से ऐतिहासिक काल तक की सामग्री बिना व्यवधान के मिली है, जिससे इस क्षेत्र के निरन्तर आबाद होने की

पुष्टि होती है। उपहाड़ में 2000 ई0पू0 1200 ई0पू0 तक बसने और फिर ऐतिहासिक काल के प्रारम्भ मे आबाद होने की पुष्टि यहाँ के उत्खनन से होती है।[14]

ऐतिहासिक साहित्य एवं पुरातात्विक सामग्री से ज्ञात मेवाड़ का इतिहास

ऐतिहासिक साहित्य एवं पुरातात्विक सामग्रियों से मेवाड़ के इतिहास का कुछ ज्ञान हमे अवश्य होता है लेकिन लेखकों और इतिहासवेत्ताओं की रचनाओं में सम्पूर्ण ऐतिहासिक सामग्रियों का समुचित उपयोग नहीं हो पाया है फिर भी ज्ञात साधनों से मेवाड़ के इतिहास के जो भी लिखित तथ्य हैं वे अधोलिखित हैं–

ऐतिहासिक साहित्यों से उद्धृत मेवाड़ का इतिहास

अपनी उत्कृष्ट विशेषताओं में भारत, साहित्य रचना व साहित्य सृजन की भी विशेषता उस श्रृंखला में रहता है। भारत के प्रदेशों में राजस्थान ने भी साहित्य रचना के क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है और इन्हीं रचनाओं के माध्यम से उस प्रदेश या राज्य की तत्कालीन आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जनजीवन की व्यापक जानकारी मिलती है।

(अ) राजस्थानी साहित्य से प्राप्त इतिहास

राजस्थानी भाषा का साहित्य प्राचीन एवं समृद्ध है, इस भाषा में रची गयी उत्कृष्ट रचनाएं इनकी समृद्धता का स्पष्ट प्रमाण देती हैं। मेवाड़ के श्रृंखलाबद्ध इतिहास को वर्णित करने में अनेकानेक लेखकों व इतिहासविदों

ने सफलता अर्जित की है। राजस्थानी भाषा व साहित्य की रचनाएं नौवीं शताब्दी से ही देखने को मिलती है।।

राजस्थानी साहित्य में मेवाड़ के इतिहास को वर्णित करने में मेवाड़ के महाराणा राजसिंह के समकालीन कवि मान का वर्णन मिलता है। इनके द्वारा रचित ''राजविलास'' में महाराणा राजसिंह के कृत्यों व उनकी उपलब्धियों का विवरण मिलता है।

उपर्युक्त ग्रन्थ से हमें वहाँ की भौगोलिक जानकारी, महाराणाओं द्वारा जनरक्षा में किये गये कार्यों आदि का विवरण मिलता है। मेवाड़ के प्राचीन इतिहास की जानकारी के लिए ''खुमान रासो'' का भी महत्वपूर्ण स्थान है।

फारसी भाषा में लिपिबद्ध इतिहास

फारसी भाषा में लिपिबद्ध साहित्य ज्यादातर मुगल शासकों ने या तो स्वयं लिखा है या फिर राज्य के अधिकारियों व स्वतन्त्र साहित्यकारों ने लिखा है। इस भाषा के साहित्य में मुगल शासकों व उनकी जीवनियाँ ही हमें मिलती हैं। फिर भी, मुगलों के राजपूतों से जो सम्बन्ध रहे हैं उनकी जानकारी हमें इन रचनाओं में पर्याप्त मात्रा में मिल जाती हैं।

काजी मिनहाज–उस–सिराज द्वारा लिखित ग्रन्थ ''तबकाते नासिरी'' से ज्ञात होता है कि इस समय तक उत्तर–पूर्वी राजस्थान को 'मेवात' के नाम से पुकारा जाता था। संस्कृत ग्रन्थ प्रबन्ध चिन्तामणि में भी इसका नाम ''मेदपाट'' दिया गया है जो कि मेरुतुंग द्वारा लिखित है। बाद में यही मेवाड़ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। एकलिंग माहात्म्य में भी यह मिलता है कि प्राचीन में मेवाड़ को मेदपाट कहा जाता था।

अमीर खुसरो द्वारा लिखित खजाइनुलफतुह में राजस्थान मे अलाउद्दीन खिलजी द्वारा चित्तौड़ रणथम्भौर के आक्रमण का वर्णन मिलता है। इस ग्रन्थ की रचना उसने 1311 ई0 में की थी।

अकबरनामा के लेखक अबुल फजल ने मेवाड़, कोटा आदि राज्यों की भौगोलिक जानकारी दी है।

मुगल सम्राट् बाबर द्वारा लिखित उसकी आत्मकथा तुजुक–ए–बाबरी (बाबरनामा) में राजस्थान के इतिहास की जानकारी जो अवश्य मिलती है लेकिन उसका यह लिखना कि उसे राणा सांगा ने भारत पर आक्रमण करने के लिए आमन्त्रित किया था, आज भी विवाद का विषय है। पानीपत युद्ध के बाद खानवा युद्ध तक की विस्तृत जानकारी इस ग्रन्थ से मिलती है। बाबर ने उत्तर–पूर्वी राजस्थान की जलवायु, वर्षा, रेगिस्तान, सिंचाई के साधन इत्यादि का भी विस्तार से वर्णन किया है।

हुमायूँनामा की लेखिका गुलबदन बेगम द्वारा हुमायूँ के मारवाड़ के शासकों के साथ सम्बन्धों की जानकारी मिलती है।

मुहम्मद कासिम हिन्दूशाह द्वारा रचित तारीख–ए–फिरिश्ता में महाराणा कुम्भा तथा रायमल की गतिविधियों, ईडर और मेवाड़ के सम्बन्धों आदि का विशद वर्णन मिलता है।

इकबालनामा के लेखक मोतविदखाँन ने शाहजादे खुर्रम द्वारा मेवाड़ में की गयी हत्याएं तथा मेवाड़ की आर्थिक बर्बादी के विवरण को प्रस्तुत करता है।

संस्कृत साहित्य से प्राप्त इतिहास

संस्कृत साहित्य से हमें राजस्थानी इतिहास की महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। महाराणा कुम्भा द्वारा रचित ''नृत्यरत्नकोष'' से भारतीय नृत्य तथा नृत्यकक्षों की जानकारी मिलती है। एकलिंग माहात्म्य नामक ग्रन्थ से मेवाड़ के शासकों की वंशावली का ज्ञान होता है। इस ग्रन्थ से यह भी जानकारी मिलती है कि मध्यकाल के प्रारम्भ में मेवाड़ को मेदपाट कहा जाता था।

रणछोड़ भट्ट द्वारा रचित अमरकाव्य वंशावली में बापा से लेकर राणा राज सिंह तक का मेवाड़ का इतिहास मिलता है।

संस्कृत साहित्य में अभी तक ऐसे ग्रन्थ हैं जिनसे मेवाड़ के प्राचीन इतिहास की जानकारी हमें मिल सकती है। आवश्यकता इस बात की है कि उन ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद कराया जाय और साक्ष्यों और तथ्यों का अन्य ऐतिहासिक ग्रन्थों से मिलान कराया जाय।

मेवाड़ का प्राचीन इतिहास– गुहिलोतों के अधिकार के पूर्व

1,20,000 ई0पू0 बैडजर गम्भीरी नदी के किनारे बस्तियाँ बसी थीं।[15] यह चित्तौड़ जिले में है। अब विकास का क्रम निरन्तर अग्रसर हो रहा है। राजस्थान प्रदेश के महत्वपूर्ण राज्य मेवाड़ में प्रारम्भिक समय में छोटी–छोटी शक्तियाँ राज्य कर रहीं थी। वर्गीकृत समाज व राज्यों में स्थायित्व नहीं रह पाता, इसी का लाभ गुहिलोतों ने उठाया और उन छोटी–छोटी शक्तियों का अन्त करके अपनी मजबूत सत्ता की स्थापना की।

तत्पश्चात् गुप्त शासकों ने मेवाड़ में अपनी सत्ता बनाए मालवों को पराजित करके उनके शासन का अन्त किया था। अपनी पराजय के बाद मालवा वर्तमान मालवा की ओर बढ़ने लगे। 490 ई0 के लगभग तत्कालीन मालवा के शासक महाराजा गौरी थे, यह छोटी सादड़ी के वि0सं0 5417 के शिलालेख से मिलता है।

गुप्त शासकों में स्कन्दगुप्त के बाद इनकी शक्ति का ह्रास होने लगा। इस कमजोरी का लाभ उठाते हुए गुप्त शासकों पर हूणों ने आक्रमण कर अपने प्रभाव को कायम किया। हूणों की मेवाड़ में सत्ता रहने का प्रमाण 'हूड़–मण्डल' है। 'हूड़–मण्डल' के अन्तर्गत पूर्वी मेवाड़ के कुछ गाँव थे। अभिलेखों से पता चला है कि कुछ हूण यहीं पर बस गये थे। 10वीं शताब्दी में मेवाड़ में राज्य करने वाले गुहिकवंशी शासक उल्लट एक हूण राजकुमारी हरिया देवी से विवाह भी किया था।

हूणों की सत्ता का अन्त मालवा के शासक यशोवर्मन ने किया। यशेधर्मन के पश्चात् उत्तरी मालवा और मेवाड़ में मौर्यों का अधिकार हो गया। मौर्य शासकों में मानमोरी बड़ा प्रतापी व उल्लेखनीय शासक था। चित्तौड़ में मिले मनमोरी के लेख[18] का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि इस वंश में 4 शासक हुए थे–

1. महेश्वर 2. भीम 3. भोज 4. मान।

आगे की लेखो में मौर्यवंशजों का पता नहीं चलता है। संभवतः इसके राज्य को विदेशी आक्रमणकारियों ने नष्ट कर दिया।

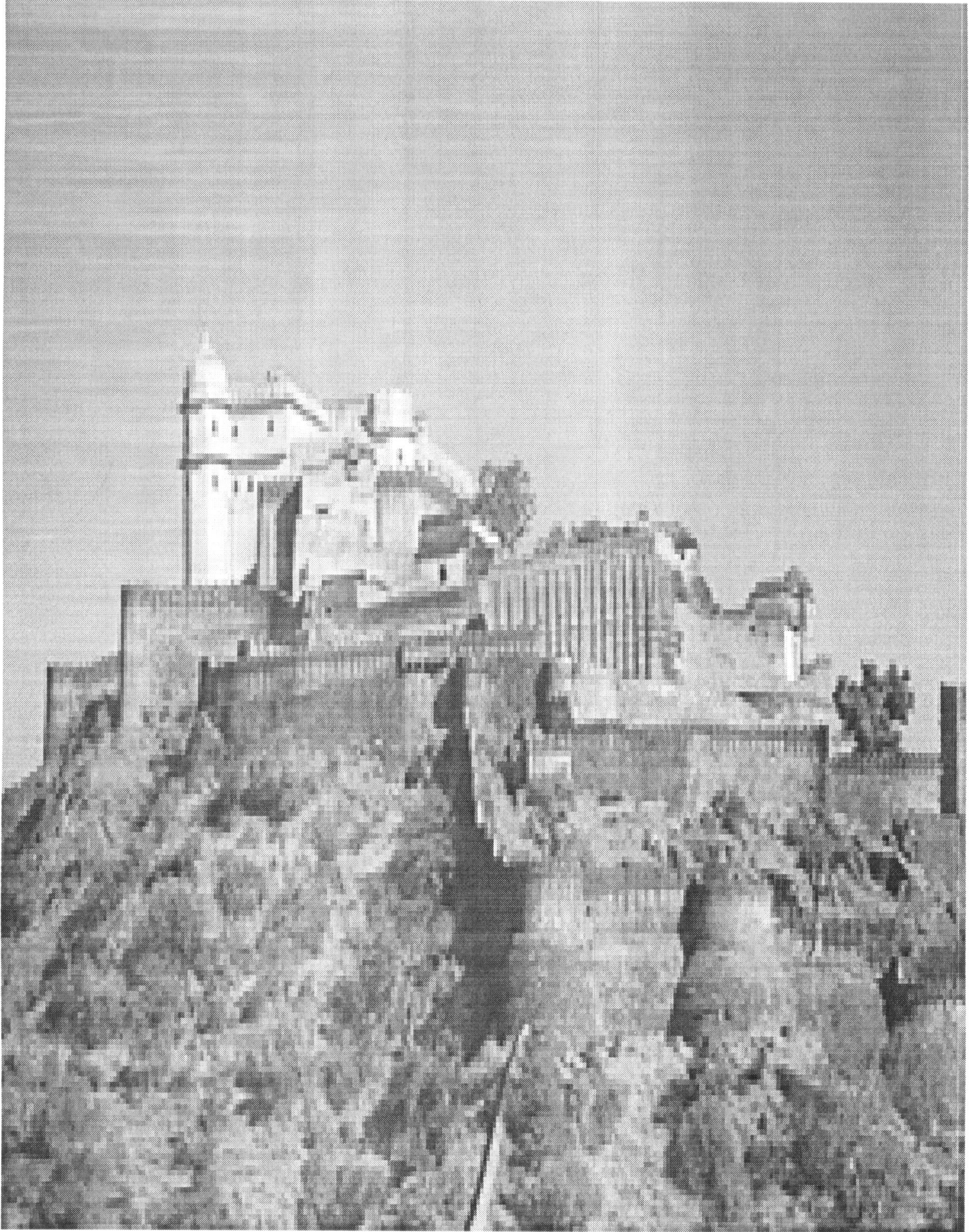
गुहिलोतों के अधिकार के बाद मेवाड़

मेवाड़ में गुहिलोत राज्य की स्थापना छठीं शताब्दी में गुहिल नामक व्यक्ति ने की। गुहिलोत शासकों की वीरता व शौर्य के परिणामस्वरूप भारतीय इतिहास में मेवाड़ का नाम बड़े ही आदर से लिया जाता है। प्रारम्भ से रायमल तक के इतिहास का हम संक्षिप्त वर्णन करना चाहेंगे–

मेवाड़ राज्य के नरेश (कालक्रमानुसार)[19]

	नरेश	ई0 सन्
1.	गुहिल	536
2.	भोज	
3.	महेन्द्र	
4.	नाग (नागादित्य)	
5.	शील (शीलादित्य)	646
6.	अपराजित	661
7.	महेन्द्र द्वितीय	
8.	कालभोज (बापा)	734–753
9.	खुम्माण	753
10.	मत्तट	
11.	भर्तभट	
12.	सिंह	
13.	खुम्भाण (द्वितीय)	
14.	महायक	

15.	खुम्भाण (तृतीय)	942 – 951
16.	भर्तभट्ट (द्वितीय)	951
17.	अल्कट	971
18.	नरवाहन	
19.	शालिवाहन	977
20.	शक्तिकुमार	
21.	आम्बा प्रदसा (आम्रप्रसाद)	
22.	शुचि वर्मा	
23.	नरवर्मा	
24.	कीर्तिवर्मा	
25.	योगराज	
26.	वैराट	
27.	हंसयान	
28.	वैरी सिंह	1107–1117
29.	विजय सिंह	
30.	अरि सिंह	
31.	चोड सिंह	
32.	विक्रम सिंह	1149
33.	रणसिंह	
34.	क्षेम सिंह	
35.	कुमार सिंह	
36.	मथन सिंह	



कुंभलगढ़ का किला

37.	पद्म सिंह	
38.	तैत्र सिंह	1213–1253
39.	तेज सिंह	1253–1273
40.	समर सिंह	1273–1302
41.	रतन सिंह	1302–1303
42.	हमीर	1314–1378
43.	क्षेत्र सिंह	1378–1405
44.	लक्ष सिंह	1405–1420
45.	मोकल	1420–1433
46.	कुम्भा	1433–1468
47.	उदयकर्ण	1468–1473
48.	रायमल	1473–1509

मेवाड़ के गुहिलवंशी नरेश

छठीं शताब्दी के लगभग गुहिलवंश के महान् पराक्रमी शासक गुहादत्त ने मेवाड़ में गुहिलोत राज्य की स्थापना कर गुहिलवंश की नींव सृजित की। प्रारम्भिक गुहिलवंशीय शासकों की निश्चित तिथि एवं वंश परम्परा की सम्यक् व पूर्ण सामग्री की अनुपलब्धता से इतिहासकारों में मतभेद की स्थिति बनी हुई है। गुहिलोतों को ब्राहमण स्वीकार करने में डॉ0 डी0आर0 भण्डारकर का चाटसू अभिलेख[20], कुम्भा के कुम्भलगढ़ का वि0सं0 1517 का अभिलेख तथा इनके साथ–साथ अपने मत की पुष्टि

करने हेतु वेदशर्मा व भण्डारकर ने चित्तौड़ के वि0सं0 1331 और अचलेश्वर के वि0सं0 1342 का शिलालेख अग्रणीय है।

गुहिलोतों को क्षत्रिय स्वीकार करने में तेरहवीं शताब्दी के पहले के लेख विशेष महत्वपूर्ण रहे हैं। वि0सं0 1557 का नाडलाई अभिलेख, विं0सं0 1083 के नागदा के लेख में इन्हें क्षत्रिय कहा गया है। इस तथ्य को और भी पुष्ट करने के में प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ0 गौरीशंकर हीराचन्द ओझा जी का मत कुछ अधिक ही मान्य सिद्ध होता है। श्रृंगी ऋषि के वि0सं0 1485 के अभिलेख में खेता को क्षत्रिय कहा गया है ओर नागूपुर म्यूजियम के लेख में भी गुहिलोतों को क्षत्रिय बताया गया है।[21]

गुहिलोतों को ब्राह्मण स्वीकार करने वाले भण्डारकर, वेद शर्मा और क्षत्रिय मानने वाले श्री ओझा जी के प्रामाणिक तथ्यों का अध्ययन करने से यह प्रतीत होता है कि दोनों ही अपने स्थान पर सही हैं क्योंकि उदाहरणों से पता लगता है कि कई शासक जो ब्राह्मण थे लेकिन परिस्थितिवश शस्त्र धारण किये, इसलिए वे क्षत्रिय कहलाये। शायद इसीलिए गुहिलवंश के संस्थापक गुहा के लिए ब्रहम क्षत्रिय शब्द का प्रयोग हुआ है।

गुहिल लोग शरीर से बलिष्ठ और स्वभाव से अत्यन्त ही चतुर थे, अपनी इसी चतुराई और पौरुष के बल पर छठीं शताब्दी के बाद उत्तरी भारत में जो शिथिलता आई उसका उन्होंने लाभ उठाया। फलतः, काफी क्षेत्रों पर इनका अधिकार स्थापित हो गया। बहुत ही तेजी के साथ इनके साम्राज्य का विस्तार हुआ और इनकी शाखायें भी विस्तृत हुईं। जिनमें

चाटसू, नगर, धोड़ा के गुहिलोत, आहाड़ नागदा के गुहिलोतों के मूल निवास स्थान के बारे में कोई विशेष जानकारी नहीं उपलब्ध हुई है लेकिन इनके रचनात्मक कार्यों व युद्धों तथा साम्राज्यों पर दृष्टिपात करने से यह अनुमान लगाया जाता है कि सम्भवतः इनका मूल निवास स्थान गुजरात था।

वि0सं0 1140 (1083 ई0) के कदमाल अभिलेख[22] में गुहिल वंशीय प्रारम्भिक शासकों का उल्लेख मात्र ही है। इन शासकों के बारे में कोई पर्याप्त जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

ये प्रारम्भिक शासक सम्भवतः मेवाड़ के पश्चिमी सीमित पहाड़ी भागों के ही शासक थे। मेवाड़ राज्य के संस्थापक (536 ई0) गुहिल ने ही सर्वप्रथम अपने वंश की आधारशिला रणभूमि में स्थापित की, गुहिलोत वंश के इस प्रथम शासक को वंश प्रदीप (वंश का दीपक) कहा जा सकता है। गुहिल के उपरान्त भोज नामक विराट् व्यक्तित्व मेवाड़ का शासक हुआ, इनके लिए लिखा गया है कि उन्होंने एकलिंगजी के निकट भोजसर नामक तालाब बनावाया था।[23] महेन्द्र नामक शासक के लिए कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। 'नाग' को नागदा नगर बसाने वाला कहा गया है। नाग के बाद शील (शीलादित्य) (646 ई0) नामक शासक हुआ। इसके कृतित्व को देखने से ज्ञात होता है कि यह बड़ा ही शूरवीर और प्रतापी शासक था। सामोली (भीमट) से वि0सं0 703 का एक शिलालेख इसके राज्य का मिलता है।[24] भीमट का एक बड़ा भू–भा इसे अपने राज्य के विस्तार करने में ही मिला था। सामोली से जो शिलालेख प्राप्त हुआ है

उसमें वटनगर से आये श्रेष्ठी द्वारा अरण्यवासिनी देवी के मन्दिर को बनाने का उल्लेख है। राज्य की आर्थिक स्थिति भी इसके समय में सुधरी थी क्योंकि इसने जावर का क्षेत्र अपने अधिकार में करके जिंक एवं ताबें की खानों को खोदना शुरू किया था।

शीलादित्य के कार्यकाल के उपरान्त इसके उत्तराधिकारी अपराजित ने कदम से कदम मिलाया था। नागदा के समीप कुण्डा ग्राम से मिले एक शिलालेख (वि0सं0 718)[25] में वर्णित है कि एक सेनापति पत्नी ने भगवान् विष्णु का मन्दिर बनवाया था। तत्कालीन लोगों के लिए जहाँ वह मन्दिर धर्म और आस्था का केन्द्र था वहीं वर्तमान में उस समय की कलाकृतियों का एक सुन्दर नमूना देखने को मिलता है। शीलादित्य का उत्तराधिकारी महेन्द्र हुआ, इसका ज्यादातर समय अपने को सुरक्षित रखने में ही व्यतीत हुआ। भीलों से हो रहे निरन्तर संघर्ष से राज्य की न तो आर्थिक उन्नति हो पाई और न ही किसी प्रकार की सांस्कृतिक प्राप्ति।

कालभोज (बप्पा रावल) :

महेन्द्र का उत्तराधिकारी कालभोज हुआ, यह तत्कालीन शासकों में अपने व्यक्तित्व व कृतित्व के कारण बड़ा ही उल्लेखनीय रहा। इतिहासकारों में इस बात को लेकर गहन मतभेद व्याप्त है कि अद्भुत क्षमता और अदम्य साहस का प्रदर्शन करने वाले इसी शासक को बप्पा रावल की उपाधि दी गई है लेकिन कुछ इतिहासकारों ने दूसरे शासक को बप्पा रावल माना है। कालभोज की सबसे बड़ी उपलब्धि अरब आक्रमणकारी से संघर्ष करना रही है। जिस समय चित्तौड़ पर मौर्यों का

शासन था, अरब आक्रमणकारी जुनैद ने पश्चिमी राजस्थान पर आक्रमण किया। मौर्यों को शक्तिहीन होते देख बप्पा रावल ने चित्तौड़ पर आक्रमण करके उसे हस्तगत कर लिया। यद्यपि बप्पा रावल के उत्तराधिकारी चित्तौड़ को अधिक समय तक अपने पास नहीं रख सके। क्योंकि अभिलेख के साक्ष्य से ज्ञात होता है कि चित्तौड़ पर क्रमशः परमारों व प्रतिहारों का राज्य बना रहा और 1213 ई0 में जैत्र सिंह ही इसे प्रतिहार शासक देवपाल से लेने में सफल हुआ।

वस्तुतः कालभोज नामक शासक ही बप्पा रावल था या नहीं, इस विषय में कोई प्रमाणित जानकारी उपलब्ध नहीं हुई है। इतना तो जरूर है कि बप्पा रावल किसी शासक का नाम नहीं बल्कि उनकी उपाधि थी। डॉ0 गौरीशंकर, हीराचन्द ओझा जी ने इसे ही बप्पा रावल माना है। अपने मत की पुष्टि में कहा है कि– अचलेश्वर के अभिलेख मे बप्पा को गुहा का पिता माना गया है लेकिन इन दोनों अभिलेखों में पहले के वि0सं0 1028 (971 ई0) के एकलिंगजी के शिलालेख (नाथप्रशस्ति) में बाप्पा को 'गुहिलवंशियों में चन्द्रमा के समान बताया गया है। इससे भी इसकी विश्वसनीयता सिद्ध होती है।

वि0सं0 1507 (1460 ई0) के कुम्भलगढ़ अभिलेख में शिलादित्य के नाम के स्थान पर बाप्पा के नाम का उल्लेख है लेकिन यह नाम शायद गलती से लिख दिया गया है क्योंकि एकलिंग महात्म्य में वि0सं0 810 (753 ई0) में बाप्पा का सन्यासी बनना लिखा है, जबकि किसामोली अभिलेख के आधार पर शीलादित्य बाप्पा से 100 वर्ष से भी अधिक समय पूर्व शासक हो चुका था।[27]

विद्वानों के तर्क और इतिहासकारों तथ्यों का अवलोकन करने पर यह तथ्य दृष्टिगोचर होता है कि अपने बाहुबल, व्यक्तित्व व कृतित्व से जो ख्याति कालभोज नामक शासक ने अर्जित की वह प्रसिद्धि बाप्पारावल की उपाधि का कारण बनी। दूसरा तथ्य यह भी है कि यह गुहिलवंशी शाखा के अतिरिक्त अन्य कोई शाखा थी या फिर रावल शाखा का उदय अदम्य साहस और वीरता को देखकर हुआ लेकिन उनके पश्चात् ऐसा अद्‌भुत साहस और पराक्रम दिखाने वाला कोई नहीं हुआ।

यद्यपि वि0सं0 1034 के आटपुर अभिलेखों[28] से भी एक तथ्य उजागर होता है जिसमें कालभोज का पुत्र खुम्भाण को बताया गया है।

बाप्पारावल (कालभोज) के उत्तराधिकारी

कालभोज के विशिष्ट क्षमता प्रदर्शन के उपरान्त उनके काल को उत्कृष्ट बनाने के लिए खुम्माण उत्तराधिकारी नियुक्त हुआ। पिता के तेज और यश को शिखर पर पहुँचाने के लिए तथा अपनी महत्वाकांक्षा को नया आयाम देने के लिए खुम्माण ने सीमावृद्धि हेतु दक्षिण के राष्ट्रकूट राजा गोविन्द तृतीय को अपना निशाना बनाया।[29] युद्ध कौशल व विशिष्ट क्षमता का प्रदर्शन करने में असमर्थ खुम्भाण को चित्तौड़ से हाथ धोना पड़ा फलस्वरूप राष्ट्रकूटों का अधिकार हो गया। परिणामतः गुहिलोत शासकों की शक्ति को काफी आघात पहुँचा जिससे वे कमजोर पड़ने लगे अब इनका अधिकार क्षेत्र भी सीमित हो गया। खुम्भान के उत्तराधिकारी उत्तरोत्तर क्षीणता को प्राप्त होते गए जिसमें मत्तट, मर्तभट्‌ट, सिंह,

खुम्भाण द्वितीय, महायक, खुम्भाण तृतीय (942–951), भर्तभट्ट द्वितीय (951) शासक हुए लेकिन ये सभी अत्यन्त कमजोर सिद्ध हुए।

उपर्युक्त तथ्यों को देखने से यह स्पष्ट होता है कि काल भोज ने अपनी शक्ति और पराक्रम से जो कीर्तिमान स्थापित किया था और उत्कृष्टता के उच्च शिखर पर पहुँच कर बप्पा रावल की उपाधि प्राप्त की थी, वह सब इनके उत्तराधिकारियों ने अपनी विलासिता और क्षीणता से समाप्त कर दी। अब यहाँ यह बात और स्पष्ट हो जाती है कि बप्पा रावल किसी शासक का नाम न होकर बल्कि वीरता और पराक्रम की प्रतीक एक उपाधि ही थी।

अल्लट (951–971)

कालभोज के बाद उनके उत्तराधिकारियों ने अपनी गरिमा को समाप्त करने में जिस विलासिता का प्रदर्शन किया था एवं मेवाड़ को हिस्सों में बाँटने और उसे खोने में जो भूमिका अदा की थी उसे पुनः सृजित करके मेवाड़ को पुनः गौरवमयी बनाने के लिए अल्लट नामक शासक ने विशेष यत्न किया। उत्कृष्टता की श्रृंखला को मजबूत बनाने के लिए इसने प्रतिहार शासक देवपाल से संघर्ष किया जिसमें इसने विजयश्री भी प्राप्त की। अल्लट में कुशल कूटनीतिज्ञ, राजनीतिज्ञ एवं मैत्री स्थापित करने में निपुण तथा वीरता के गुणों का प्रचुर समावेश दिखाई पड़ता है। मैत्री सम्बन्ध का एक उत्कृष्ट उदाहरण हूणों के साथ सम्बन्ध के रूप में देखने को मिलता है।

उल्लट के समय में मेवाड़ की आर्थिक समृद्धि और उन्नति में भी उत्तरोत्तर वृद्धि हुई। विविध क्षेत्रों से व्यापार करने वाले लोगों का

आवागमन मेवाड़ प्रदेश में बढ़ा फलतः मेवाड़ की उत्कृष्टता का मार्ग प्रशस्त हुआ।

अल्लट की श्रेष्ठता का अवलोकन करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती हैं कि इनके पूर्व के शासकों ने जिस मेवाड़ की गरिमा को कम करने में कोई कसर नहीं छोड़ी, उसी की महिमा को विस्तृत कर ख्याति प्राप्त करने में अल्लट नामक शासक ने भी कोई कमी नहीं होने दी।

नरवाहन और शालिवाहन

मेवाड़ की खोई हुई ख्याति को पुनः अर्जित करने में सफल शासक अल्लट का उत्तराधिकारी नवाहन हुआ। यद्यपि इसने भी पूर्व ख्याति प्राप्त शासक अल्लट के नक्शे कदम पर चलने का प्रयास किया लेकिन क्षेत्रवृद्धि में पूर्ण सफलता अर्जित नहीं कर सका। धार्मिक क्षेत्र की प्रगति से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यह धर्मपरायण और नीति कुशल शासक था। इसके समय के एक शिलालेख से पता चलता है कि वहाँ लकुलीश सम्प्रदाय को बहुत बड़ा केन्द्र था।

नरवाहन के उपरान्त इसका उत्तराधिकारी शालिवाहन हुआ। शालिवाहन का कार्य क्षेत्र भी अति सामान्य रहा।

शक्ति कुमार (977 ई0)

शालिवाहन के बाद शान्ति कुमार मेवाड़ की सत्ता में अपना स्थान कायम किया। नरवाहन और शालिवाहन के काल में मेवाड़ की ख्याति का जो ह्रास हुआ था उसकी क्षतिपूर्ति शक्ति कुमार ने दिया। अपने गुणों और बाहुबल तथा बुद्धि के बल पर मेवाड़ पर लम्बे समय तक शक्ति कुमार ने

राज्य किया, अपने नाम के अनुरूप गुण को दिखाने में भी वह कामयाब रहा। इसके समय में नगरों की श्री सम्पन्नता दर्शनीय थी, आहाड[30] से एक लेख मिलता है जिससे इसकी पुष्टि होती है कि वास्तव में शक्ति कुमार का समय विकास और समृद्धि का समय था। शक्तिकुमार के समय में ही आहाड़ नगर को क्षति पहुंचाने में सफल मालवा का शासक मेवाड़ में अपने प्रभुत्व को स्थापित किया। लोगों का यथोचित सहयोग न मिल पाने के कारण मेवाड़ नगर मे उथल–पुथल का साम्राज्य बना रहा। यद्यपि शक्ति कुमार ने राष्ट्रकूट राजा धवल की सहायता प्राप्त की, जिससे उसका काफी राज्य खण्डित होने से बच गया और आगे की पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रह सका।

आम्बा प्रसाद (आम्र प्रसाद)

शक्ति कुमार का उत्तराधिकारी आम्बा प्रसाद हुआ, गद्‌दी पर बैठने के कुछ ही समय पश्चात् चौहान शासकों ने अपनी कुदृष्टि मेवाड़ पर डालनी शुरू कर दी। अभी जबकि यह नया शासक अपने आपको पूर्ण रूप से नियोजित व व्यवस्थित भी न कर सका था। आम्बा प्रसाद के काल में यद्यपि परमार मेवाड़ की ओर ताकने का साहस नहीं कर सके, शायद पूर्व के शक्तिशाली शासक शक्तिकुमार से करारी शिकस्त (टक्कर) भी इसका कारण रहा हो। ठीक इसके विपरीत चौहान शासक मेवाड़ पर अपनी शक्ति की परख व मेवाड़ के शासक के हौंसले की परख हेतु मेवाड़ पर आक्रमण किए और दुर्भाग्यवश अव्यवस्थित शासक आम्बाप्रसाद इनका डटकर मुकाबला करने में असमर्थ रहा और चौहान शासक बापतिराज

द्वितीय से पराजित हुआ और काल के कराल गाल में समाहित हो गया। परिणामस्वरूप मेवाड़ का अत्यधिक भू–भाग चौहानों और परमार शासकों के हाथ में आ गया जिससे मेवाड़ के क्षेत्रफल में तो कमी हुई ही इसके साथ–साथ मेवाड़ की शक्ति में भी ह्रास हुआ।

शुचिवर्मा

आम्बा प्रसाद की मृत्यु के पश्चात् मेवाड़ राज्य की कमान उसके छोटे भाई शुचिवर्मा ने संभाली। शुचिवर्मा की रगों में मेवाड़ के उन्हीं वीर सपूतों का रक्त प्रवाहित हो रहा था जिनके समक्ष बड़े–बड़े योद्धाओं के छक्के छूट जाते थे। अपनी इसी गुण के फलस्वरूप मेवाड़ में बहुत उपलब्धि इस शासक ने प्राप्त की। शुचिवर्मा में शासक की वीरता, दानशीलता, उदारता जैसे गुणों का समावेश था। साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि शत्रु सदैव इस शासक से पराजित होकर भयभीत रहे।

नरवर्मा

शुचिवर्मा के पश्चात् उसका छोटा भाई नरवर्मा मेवाड़ की गद्दी पर आसीन हुआ, इसके पश्चात् कीर्तिवर्मा मेवाड़ की कमान संभालने के लिए आगे आया। क्रमशः अनन्त वर्मा और यशोवर्मा मेवाड़ की सत्ता में आये। इन सभी शासकों को कुम्भलगढ़ अभिलेख में आम्बा प्रसाद का भाई बताया गया है।

परमार राजा भोज

मेवाड़ की आंतरिक कमजोरी और आपसी फूट परमार राजा भोज के लिए सकारात्मक कारण सिद्ध हुई थी। यही कारण था कि चित्तौड़ और

पूर्वी मेवाड़ जो वीरों का गढ़ माना जाता था पर भोज की प्रभुता स्थापित हो गयी। मेवाड़ के शक्ति सम्पन्न शासक शक्ति कुमार के उत्तराधिकारियों से इसका निरन्तर संघर्ष चलता रहा था। यह भी एक कारण राजा भोज के मेवाड़ में लम्बे समय तक रहने के लिए उत्तरदायी सिद्ध हुआ। भोज के मेवाड़ में लम्बे समय तक रहने की पुष्टि अनेक साधनों से होती है। वि0सं0 1278 (1221 ई0) के लेख[31] में वि0सं0 1088 में भोज के चित्रकूट में रहने की जानकारी प्राप्त होती है।

अभिलेखों से ज्ञात होता है कि भोज ने लम्बे समय तक मेवाड़ की आन्तरिक सत्ता में हस्तक्षेप किया और यही कारण रहा कि मेवाड़ की शक्ति का पतन हुआ और इसके विपरीत परमार राजा भोज का उत्कर्ष हुआ।

बैरट व हंसपाल

मेवाड़ की शासन सत्ता कभी भी स्थायी न रह सकी थी यद्यपि यहाँ कभी शासक आए तो राज्य की शक्ति मजबूत हुई लेकिन फिर अयोग्य और कमजोर तथा शक्तिहीन राजकुमारों के आने के शासन सत्ता फिर दुर्बल हो गयी। मेवाड़ के बारे में यह कहा जा सकता है कि ''यहाँ की नींव को जैसे ही मजबूत बनाकर भवन की तैयारी शुरू की जाती थी वैसेही उस भवन पर भूचाल (भूकम्प) आ जाता था जो उसकी नींव तक को हिला देता था।''

इस तथ्य से यह स्पष्ट है कि मेवाड़ की शक्ति में कभी उछाल आता था तो कभी गिरावट आ जाती थी जिससे सत्ता की कमान स्थायी और

मजबूत नहीं बन सकी। इसी का एक उदाहरण लघुशाखा का मेवाड़ का स्वामी बैरट का भी रहा। बैरट की उपलब्धियों की कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है।

बैरट के बाद उसका उत्तराधिकारी हंसपाल हुआ। इसके बारे में भी कोई तथ्य स्पष्ट नही है लेकिन इतना जरूर स्पष्ट है कि इन उत्तराधिकारी शासकों ने केवल अपने पूर्वजों के बल पर गद्दी प्राप्त करके आसानीसे उस पर सुशोभित रहे और संकट की घड़ी में उसे उतनी ही आसानी से छोड़ भी दिए।

बैरी सिंह व विजय सिंह

उत्तराधिकार की श्रृंखला में गद्दी प्राप्त करने वाला अगला शासक हंसपाल के बाद बैरी सिंह हुआ। इसने अपने अन्य पूर्वजों से हट कर थोड़ा कार्य सम्पन्न किया। कुंभलगढ़ प्रशस्ति में लिखा है कि इसने आहाड़ नगर का कोट बनवाया।

बैरी सिंह के उपरान्त उसका उत्तराधिकारी विजय सिंह हुआ। इस शासक का भी कोई विशेष वर्णन देखने को नहीं मिलता है।

विजय सिंह के उत्तराधिकारी

इसके पूर्व वर्णित है कि उत्तराधिकार के नियमानुसार आने वाले शासक राज्य के किसी झंझावात का सामना करना उचित न समझकर उससे हट जाना ही अधिक उपयुक्त समझते थे यही कारण था कि इतिहास में उनके नामों की श्रृंखला ही हमें देखने को मिलती है। विजय

सिंह के उत्तराधिकारियों में अरि सिंह, चौड़ सिंह, विक्रम सिंह का उल्लेख मिलता है, परन्तु उपलब्धियों की जानकारी शून्य ही है।

रण सिंह (रावल और राजा का उदय) या गुहिल वंश का विभाजन

विक्रम सिंह के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र रण सिंह (कर्ण सिंह) मेवाड़ का शासक बना। एकलिंग माहात्म्य[33] के अनुसार इसके समय में पारिवारिक कलह के कारण फूट पड़ते गुहिल दो भागों में वर्गीकृत हो गए। महल सिंह, क्षेत्र सिंह, माहप और राहप नामक 4 पुत्र रण सिंह को उत्पन्न हुए जिसमें महण सिंह पिता के सामने ही परलोक सिधार गया था। इसके चलते क्षेत्र सिंह उत्तराधिकारी हुआ। यहीं से गुहलियों की दो शाखायें विभाजित हो गयीं। क्षेत्र सिंह के वंशज चित्तौड़ के शासक रहे और वे रावल कहलाए। रण सिंह के तृतीय पुत्र माहप को सीसोदा गाँव जागीर में मिला। वे राणा कहलाए। रावल शाखा के शासक रावल रत्न सिंह तक चित्तौड़ पर राज्य करते रहे। रत्न सिंह के कोई भी वंश न होने से सीसोदा का वंशज हम्मीर चित्तौड़ का स्वामी बना। अन्य अभिलेखों में ऐसे विभाजन का कोई उल्लेख नहीं मिलता है।

चालुक्य और मेवाड़ के गुहिलोत से संघर्ष

चालुक्य नरेश जयसिंह सिद्धराज ने अपनी कर्मठता और बाहुबल से राज्य का विस्तार किया जिसमें उन्होंने अवन्तिनाथ की उपाधि धारण की। जय सिंह के बाद कुमार पाल उसका उत्तराधिकारी हुआ। कुमार पाल ने भी अपनी सीमा विस्तार के लिए अपना सैन्य अभियान अजमेर के चौहानों के विरुद्ध, चित्तौड़ के मेवाड़ की ओर कूच किया। सफलता की ओर

अग्रसर कुमार पाल पाली नगर को अपने अधिकार में करके अजमेर को भी अपने कब्जे में कर लिया। जीत के जश्न में डूबा वह चित्तौड़ के समिधेश्वर मन्दिर का दर्शन प्राप्त किया[34] और कुछ गाँव उसे दान में दे दिया।

चालुक्य नरेश और गुहिलोतों का आमने–सामने होना इस बात की पुष्टि करता है कि दोनो में साहस, वीरता और महत्वाकांक्षा जैसे गुण विद्यमान थे। ऐसे में यह बात एक म्यान में दो तलवार की भाँति ही थी। कुमार पाल के शीघ्र बाद गुजरात में अजयपाल शासक हुआ। इसका संघर्ष मेवाड़ के वीर शासक सामन्त सिंह के साथ हुआ। सामंत सिंह अपने पराक्रम के बल पर चौलुक्य नरेश को बुरी तरह परजित किया और युद्ध में घायल कर दिया। अजय पाल अपनी हार का बदला लेने के लिए आबू के शासक धारावर्ष से सहायता प्राप्त किया और उसके भाई प्रहलादन् ने अजय पाल को बचाया। उधर मेवाड़ का शासक सामन्त सिंह अब गृहयुद्ध में फंस गया था। स्थानीय सामन्तों के साथ इस शासक का संघर्ष इतने चरम पर पहुँचा गया कि इसे मेवाड़ छोड़ना पड़ा। गृह युद्ध की जानकारी मिलते ही सीमावर्ती राज्यों के शासक सक्रिय हो उठे और फलस्वरूप नाडोल कीतू चौहान ने स्थिति का लाभ उठा लिया कुछ समय पश्चात् सामन्त सिंह का छोटा भाई कुमार सिंह चालुक्यों की सहायता से मेवाड़ पुनः हस्तगत कर लिया। चालुक्य राजा भीम द्वितीय के सामन्त के रूप में कुमार सिंह अपना जीवन व्यतीत कर रहा था। कुमार सिंह के उत्तराधिकारी भी अधिक सफल न हो सके और चालुक्यों के सामन्त ही बने रहे। कुमार सिंह के पश्चात् मथन सिंह व पदम सिंह दो शासक हुए

किन्तु ये अधिक शक्तिशाली नहीं थे। इनके किसी भी युद्ध व राज्य विस्तार की कोई जानकारी प्राप्त नही हुई है। इन बातों से स्पष्ट है कि शासक होते हुए भी ये शासित के रूप में रहे और चालुक्यों के सामन्त के रूप में अपना समय व्यतीत किया।

पद्म सिंह के उत्तराधिकारी (जैत्र सिंह)

मेवाड़ की गृह कलह से मची उथल–पुथल और 13वीं शताब्दी के कुछ शासकों का शक्तिहीन होना मेवाड़ जैसे राज्य के लिए बहुत शर्म की बात थी। पद्म सिंह के उत्तराधिकारी के रूप में उसके पुत्र जैत्र सिंह को सिंहासनासीन किया गया। उसके व्यक्तित्व एवं कर्तव्यनिष्ठा से लोग एक बार फिर मेवाड़ के उत्कर्ष का स्वप्न देखने लगे। अभी तक के कुछ पूर्वज जो गुजरात के शासक भीम द्वितीय के सामन्त के रूप में रहे थे या जो अपने अस्तित्व को भूलकर कस्तूरी ढूंढने वाले हिरन की तरह भटक रहे थे अब मेवाड़ का वही वंशज अपनी शक्ति को पहचान गया था। हमीर मदमर्दन[35] नामक कृति से भी इस बात का प्रमाण मिलता है कि जैत्र सिंह को अपनी शक्ति तथा तलवार पर बड़ा अभिमान था। इसी बल पर उसने गुजरात को अपने अधीन करने के लिए पूरा प्रयत्न किया।

जैत्र सिंह ने अपनी सीमा वृद्धि के लिए जो सैन्य अभियान चलाया उसमें वह सफल भी हुआ। उसने गुजरात के शासकों से बागड़ा का क्षेत्र मुक्त करवाकर अपने पुत्र सीहड़ को वहाँ का शासक नियुक्त किया। बागड़ के कुछ क्षेत्र पर परमारों का अधिकार था अतः परमारों से भी जैत्र सिंह का संघर्ष चला था। जैत्र सिंह ने अपनी विजय पताका को चहुँओर

फहराने के लिए शासन के अन्तिम काल तक प्रयत्न करता रहा। चीखा के शिला लेख[36] में इस बात का जिक्र है कि उसने अपनी शक्ति के बल पर नाडोल के चौहानों से मेवाड़ अधिकार का बदला लिया। आक्रमण के समय नाडोल पर कीतू का उत्तराधिकारी उदय सिंह शासन कर रहा था। इसका वर्णन अन्य अभिलेखों से भी मिलता है। नाडोल के उदय सिंह चौहान ने पुराने द्वेष भाव को समाप्त करने के उद्देश्य से और इस द्वेष को रिश्ते में बदलने के लिए जैत्र सिंह के पौत्र तेज सिंह से अपनी पौत्री का विवाह कर दिया।

सुल्तान इल्तुतमिश और राजपूत

सुल्तान इल्तुतमिश ने राजपूतों के गढ़ मेवाड़ के नागदा नामक नगर पर आक्रमण किया और जमकर कहर बरसाया। इसके आक्रमण का सविस्तार वर्णन जयसिंह सूरि द्वारा रचित हम्मीरमद मर्दन नामक नाटक में है। ग्रन्थ में इल्तुतमिश के सैनिकों द्वारा मेवाड़ के नागरिकों की नृशंस्ता पूर्वक हत्या का बखूबी वर्णन किया गया है। दूसरे ग्रन्थ में वर्णित है कि इल्तुतमिश की सेना का राजपूतों से युद्ध हुआ जिसमें इल्तुतमिश को हार का मुँह देखना पड़ा और उसे विवश होकर मेवाड़ से हटा कर चित्तौड़ कर लिए।

सुल्तान इल्तुतमिश का राजपूतों पर आक्रमण और उनके नागरिकों की नृशंसतापूर्ण हत्या इस तथ्य को भी उजागर (स्पष्ट) करता है कि राजपूतों की सैन्य व्यवस्था, गुप्तचर व्यवस्था व संगठन लचर था। सुल्तान

की सेना का संगठन निश्चित तौर पर बेहतर था तभी वह राजपूतों के सामने कुछ समय तक टिक सका।

महारावल जैत्र सिंह के उत्तराधिकारी (तेज सिंह व समर सिंह)

महारावल रत्न सिंह जैत्र सिंह के उपरान्त तेज सिंह मेवाड़ का उत्तराधिकारी बना। नामानुरूप तेज सिंह में गुण भी विद्यमान थे वह वीर, साहसी, चतुर एवं क्रियाशील था इसके शासन काल की प्रभुख घटनायें गुजरात के चालुक्यों से संघर्ष था। सामान्यतः इसके समय में मेवाड़ में शान्ति भी बनी रही, शान्ति का सबसे बड़ा कारण मुखिया की बुद्धिमत्ता होती है। सम्भवतः मेवाड़ की शांति और विकास का कारण उसके वर्तमान शासक तेज सिंह ही था। इसके समय किसी की लिखी कई प्रशस्तियाँ व लेख मिला है।

तेज सिंह के पश्चात् इसका पुत्र समर सिंह मेवाड़ की गद्‌दी पर आसीन हुआ। समर सिंह के समय भी मेवाड़ में शान्ति बनी रही और छिटपुट संघर्ष के बाद राज्य की सीमावृद्धि भी हुई अभिलेखों से ज्ञात होता है कि समर सिंह ने गुजरात के शासक सारंगदेव बघेला को तुरुष्क शासक के विरुद्ध सहायता दी थी। इसने आबू के आचलेश्वर मन्दिर के मठ पर स्वर्ण कलश चढ़ाया था और आबू का भू–भाग परमार शासक महारावल पट्‌ट से छीना था। यद्यपि समर सिंह का कार्यकाल भले ही शान्तिपूर्ण रहा हो फिर भी पूर्वजों जैसी राजनीति व युद्धप्रियता इसमें नहीं थी।

समर सिंह का उत्तराधिकारी उसका पुत्र रत्न सिंह हुआ। महारावल रत्न सिंह के समय में ही मेवाड़ राज्य पर अलाउद्‌दीन खिलजी का

आक्रमण हुआ, जिसने महारानी पद्मिनी को प्राप्त करने के लिए अपने छल–बल का पूरा प्रयोग किया था। इस प्रकरण में मेवाड़ के राजपूत वीरों और वीरांगनाओं की अद्भुद वीरता व शौर्य तथा साहस का परिचय मिलता है। राजपूतों ने यद्यपि वीरता का परिचय देकर राजस्थान के इतिहास में गौरवशाली स्थान प्राप्त किया है लेकिन खिलजी के छल और बल ने मेवाड़ का पूर्वी भाग अपने अधिकार में करने में सफलता प्राप्त कर लिया और यहीं से मेवाड़ की महारावल शाखा का अन्त हो गया।

मेवाड़ के विजित भाग पर अलाउद्दीन ने अपने पुत्र खिज्र खाँ को नियुक्त किया इसके समय में आवागमन की सुविधा को देखते हुए गंभीरी नदी (मेवाड़) का पुल बना। चित्तौड़ में प्राप्त शिलालेखों में कुछ खिलजी शासक के हैं व कुछ तुगलक सुल्तानों के समय के हैं। इनसे यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि सुल्तानों का अड्डा मेवाड़ में जम गया था, मेवाड़ के राजा उस समय तक मेवाड़ को हस्तगत नहीं कर सके थे।

चित्तौड़ दुर्ग का हस्तान्तरण

अलाउद्दीन खिलजी की हुजूरी करने वाला जालोर का शासक मालदेव सोनगरे मेवाड़ दुर्ग को हस्तगत करने में सफल रहा। अलाउद्दीन अपने पुत्र खिज्र खाँ को मेवाड़ से हटा दिया अपनी कृपा दृष्टि मालवेद के ऊपर डाल दी। मालदेव 7 वर्षों तक मेवाड़ पर अपना अधिकार जमाये रहा। यद्यपि इस बीच उसे अनेकों आक्रमणों का सामना करना पड़ा। सम्भवतः चित्तौड़ पर मालदेव का अधिकार (1311–18) के मध्य रहा। इसके बाद पुनः मेवाड़ पर खिलजी व तुगलक सुल्तानों का अधिकार हो गया।

हम्मीर और मेवाड़

सीसोदिया वंश के सामन्त लक्ष्मण सिंह का पोता हम्मीर अपने बाहुबल एवं राजनीतिक प्रयासों से विषम परिस्थितियों से जूझते हुए चित्तौड़ को हस्तगत करने में और सुल्तानों के शासन का अन्त करने में सफलता प्राप्त किया।

अलाउद्दीन खिलजी की मृत्यु (1316) के बाद दिल्ली की उथल–पुथल का लाभ उठाकर तुगलक शासकों ने इस अधिकृत कर लिया इन्हीं तुगलक शासकों से हम्मीर ने मेवाड़ को अपने अधिकार में किया। हम्मीर का प्रारम्भिक समय कठिनाई से भरा था लेकिन इसके बावजूद हम्मीर सीसोदे का हीरा था। वह कठिनाइयों से कभी निराश न होकर सदैव अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर रहा। परिणामतः वर्षों से खोया हुआ चित्तौड़ अब हम्मीर के कब्जे में आ गया। अलाउद्दीन के साथ युद्ध में राजपूत वीरगति को प्राप्त हुए थे। उस समय लक्ष्मण सिंह का एक पुत्र अजय सिंह घायलावस्था से निकलकर केलवाड़ा की पहाड़ियों में शरण लिया था।[38] हम्मीर पनिहाण में रहता जब अजय सिंह को यह पता लगा तो उसने हम्मीर को अपने पास के लवड़ा की पहाड़ियों में बुला लिया। हम्मीर यहाँ आकर मूंजा बालिया नामक राजपूत को मौत के घाट उतार दिया जो अजय सिंह का काफी दिनों से तंग करता आ रहा था। इस घटना से प्रसन्न होकर अजय सिंह ने हम्मीर को अपना उत्तराधिकारी बना दिया। हम्मीर के दुर्दिन से अब अच्छे दिनों की शुरुआत हो चली थी।

हम्मीर की वह उत्कण्ठा जो वर्षों से उसके मन पर कब्जा किए थी उसे पूरा करने के लिए वह प्रयास करने लगा। चित्तौड़ दुर्ग पर मालदेव के शासन काल में हम्मीर ने कई आक्रमण किये लेकिन सफल न रहा। मालदेव सोनगरे के बाद उसका पुत्र वनवीर चित्तौड़ की गद्दी पर बैठा पर बैठा। इसी समय अपने प्रयास में हम्मीर सफल हो गया। यह तिथि लगभग 1335–37 के की मानी जाती है।

केलवाड़ा की पहाड़ियों में रहते हुए हम्मीर निरन्तर अपनी शक्ति में वृद्धि करता रहा। उसने जीलवाड़ा के ठाकुर राघवदेव, पहाड़ी भीलों के दल, ईडर के राजा तेत्रमल आदि को पराजित किया जो उस समय अपने चरमोत्कर्ष पर थे। हम्मीर की एक अन्य बड़ी उपलब्धि में बूंदी के शासक राव देवा को राज्यारोहण में सहायता दिया था। इस प्रकार हम्मीर को चित्तौड़ का सूर्य कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगा, क्योंकि चित्तौड़ को रात्रि की कालिमा से मुक्त कराने के लिए सूर्य के रूप में हम्मीर का उदय हुआ। धार्मिक क्षेत्रों में भी हम्मीर ने ख्याति प्राप्त की है। निश्चयेन हम्मीर एक श्रेष्ठ, वीर, योग्य एवं कुशल शासक था। इसी के बल पर मेवाड़ पुनः गौरव को प्राप्त हो सका था।

हम्मीर के उत्तराधिकारी (खेता, लाखा व मोकल)

हम्मीर का उत्तराधिकारी खेता (क्षेत्र सिंह) मेवाड़ की गद्दी पर आसीन हुआ। यह भी अपने पिता के समान बहादुर, निर्भीक एवं महत्वाकांक्षी था और इन्हीं गुणों के चलते इसने ऊपरमाल के क्षेत्र को जीत कर ईडर के शासक रणमल्ल को बन्दी बनाकर एवं मालवा के सूबेदार अमीशाह को हराकर महत्वपूर्ण ख्याति अर्जित की।

हम्मीर के समय से ही ईडर राज्यसे संघर्ष चल रहा था। खेता ने ईडर के शासक को हराकर बन्दी बना लिया। यद्यपि ईडर के शासक रणमल्ल की वीरता का उल्लेख भी कई युद्धों में मिलता है। इस प्रकार खेता मेवाड़ के गौरव में वृद्धि करता रहा और अपने पूर्वजों की प्रतिष्ठा को बनाये रखा।

महाराणा खेता का उत्तराधिकारी उसका ज्येष्ठ पुत्र लाखा हुआ। लाखा को अपने कार्यकाल में राज्यवृद्धि ओर सीमा रक्षा के लिए युद्ध करने पड़े। अनेको भ्रान्तियों से युक्त गुजरात के सूबेदार जफर खाँ के साथ हुए युद्ध का उल्लेख मिलता है।[39] महाराणा लाखा ने बदनोर के मेरों की साथ संघर्ष कर के पोड़वाड़ को अपने अधीन कर लिया। मेवाड़ के राज्य वृद्धि की एक बड़ा प्रयास सफल हुआ। इसी समय एक अन्य घटना मंगरा जिले के जाखर गाँव में चाँदी की खान का निकलना है।[40] इससे मेवाड़ राज्य का धन व समृद्धि में अप्रत्याशित वृद्धि हुई। लाखा के काल में ही मारवाड़ का युवराज रावरणमल्ल मंडोर से मेवाड़ आया वह अपने पिता रावचूड़ा से उत्तराधिकार को लेकर रुष्ट हो गया था और मेवाड़ चला गया। महाराणा लाखा ने इसे सरदार बना दिया। महाराणा लाखा के पुत्र कुंवर चूड़ा से रणमल्ल अपनी बहन का विवाह करना चाहता था लेकिन विनोद (मजाक) की किसी बात को लेकर वह (चूड़) इस सम्बन्ध को स्वीकार नहीं किया और अन्ततः महाराणा लाखा को ही विवाह करना पड़ा और शर्त रखी गयी कि हंसा बाई का पुत्र ही मेवाड़ का उत्तराधिकारी होगा। कालान्तर में हंसा बाई के मोकल नामक पुत्र हुआ जो मेवाड़ का उत्तराधिकारी नियुक्त

हुआ। महाभारत काल में देवव्रत और उनके पिता शान्तनु की कुछ ऐसी ही घटनाएं घटित हुईं थी।

महाराणा लाखा की मृत्यु के बाद उसका कनिष्ठ पुत्र मोकल उनका उत्तराधिकारी हुआ। मोकल के राज्याभिषेक और उसकी आयु के सम्बन्ध में इतिहासकारों में मतभेद है लेकिन उसके राज्याभिषेक के उपरान्त ही घटनाओं पर दृष्टिपात करने से यह ज्ञात होता है कि राज्यारोहण के समय वह पूर्ण वयस्क था। मोकल के कार्यकाल में नागौर एवं गुजरात के शासकों के साथ इसका संघर्ष हुआ। इस संघर्ष का परिणाम मेवाड़ के अभिलेख में मोकल की विजय में है तो फारसी तवारीखाँ में पराजय का। इसके अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि एक बार दोनों की विजय हुई होगी। मेवाड़ के शिलालेखों से महाराणा मोकल की अन्य विजयों की जानकारी भी होती है। कुम्भलगढ़ के शिलालेख[42] में महारणा मोकल की सपालदक्ष देश की विजय, जालोर, शाकेभरी को जीतने का उल्लेख है। मोकल के जहाजपुर युद्ध और उस पर विजय का उल्लेख भी मिलता है।

मोकल के शासन काल के अन्तिम समयों में मेवाड़ की वाह्य दशा के साथ–साथ आन्तरिक स्थिति भी कमजोर हो गयी। सिरोही एवं हाड़ोती के शासकों ने अपनी शक्ति में वृद्धि कर ली और दूसरी तरफ राव चूड़ा मेवाड़ पर अधिकार का स्वप्न देखने लगा। हंसाबाई ने चूड़ा को मेवाड़ से हटने के लिए विवश कर दिया। वह मांडू के सुल्तान की शरण में चला

गया फिर भी षड्यन्त्रकारियों की गतिविधि अपने चरम पर रही। निष्कर्षतः मोकल को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा।

महाराणा मोकल के सात पुत्र व एक पुत्री थी। सबसे ज्येष्ठ पुत्र कुम्भा था और वही मेवाड़ का उत्तराधिकारी मोकल के बाद बना। महाराणा मोकल स्वभाव से बड़ा उदार, दयालु और धार्मिक प्रवृत्ति का था, जिसके अनेकों उदाहरण मेवाड़ में मिलते हैं और इससे यह बात भी स्पष्ट होती है कि मोकल के समय में मेवाड़ उन्नतिशील और सम्पन्न नगर था। निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि मोकल ने महत्वपूर्ण उपलब्धि अर्जित कर मेवाड़ की गरिमा में अभूतपूर्व वृद्धि की।

महाराणा कुम्भा का उत्कर्ष

महाराणा मोकल की मृत्यु के पश्चात् महारणा कुम्भा मेवाड़ का उत्तराधिकारी बना। जिस समय में कुम्भा मेवाड़ की गद्दी पर विराजमान हुआ उस समय सम्पूर्ण परिस्थितियाँ प्रतिकूल थीं। धाराओं का प्रवाह उल्टा था। मेवाड़ में वाह्य और आन्तरिक कलह मची हुई थी। ऐसे में एक योग्य नेतृत्वकर्ता ही अपने आपको मजबूत बनाते हुए विषम परिस्थितियों से सामना कर सकता था और कठिनाई से जूझ रहे मेवाड़ को शक्ति सम्पन्न बना सकता था।

कुम्भा का प्रभावशाली व्यक्तित्व मेवाड़ को फिर से शक्ति सम्पन्न एवं विशाल साम्राज्य बना दिया। कुम्भा अपनी छोटी अवस्था से ही शूरवीर और प्रतापी था। राज्य में अनेकों कमजोरियों और विषमता के रहते हुए भी उसने बड़े साहस से काम लिया। विरोधी परिस्थितियों को दरकिनार करते हुए उसने शक्तियों का संगठन किया। परिणामस्वरूप मेवाड़ ने बड़ी तेजी

से उन्नति की। थोड़े ही दिनों के भीतर मेवाड़ की निर्बल शक्तियाँ सबल बन गईं, जो विरोधी राज्य चित्तौड़ को अपमान की दृष्टि से देखते थे वे सब सम्मान की दृष्टि से देखने लगे। यद्यपि कुम्भा ने विपरीत परिस्थितियों का अत्यन्त धैर्य, सूझबूझ एवं कुशलता से सामना किया। सर्वाधिक शक्ति आन्तरिक स्थिति पर नियंत्रण करने में लगी।

कुम्भा का राज्याभिषेक ई0 1433 में हो चुका था। तब से लेकर वह आन्तरिक एवं वाह्य संकटों से मुक्त होने के लिए मेवाड़ को उन्नति के शीर्ष पर पहुंचाने के लिए आजीवन संघर्षरत रहा। कुम्भा के साथ दुर्भाग्य इतना ही रहा कि उसके जिगर का टुकड़ा उसका पुत्र ऊदा ही पितृहन्ता हो गया जिसने वृद्धावस्था में अपने पिता कुम्भा की हत्या कर दी और अपनी अयोग्यता का परिचय देकर मेवाड़ की गद्दी पर आसीन हो गया। कुम्भा की प्रारम्भिक विजयों में नागौर, आक्रमण विशेष महत्वपूर्ण है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि कुम्भा ने विषम परिस्थितियों से लड़ते हुए अपने व्यक्तित्व व कृतित्व के बल पर मेवाड़ राज्य की उन्नति व यश में अपार वृद्धि की। 1468–69 ई0 में कुम्भा की मृत्यु हुई।

पितृहन्ता ऊदा

राणा कुम्भा ने बड़ी योग्यता के साथ मेवाड़ में 50 वर्षों तक राज्य किया। बुढ़ापे में उसके पुत्र ने उसका वध किया। उस अधर्मी पुत्र का नाम ऊदा (उदय सिंह) था। इतिहास के अनेकों ग्रन्थों में इसकी घोर निन्दा की गयी है। ऊदा के इस व्यवहार से मेवाड़ के लोग उससे बहुत ही घृणा करने लगे। ऊदा पहले से ही अयोग्य और अकर्मण्य था। पिता की हत्या के बाद वह अब और भी खुल गया था और जमकर अपनी अयोग्यता का

परिचय दे रहा था। ऊद ने आबू पर्वत पर रहने वाले देवड़ा नामक सरदार को खुश करने के लिए अपनी अधीनता से उसे स्वतन्त्र कर दिया। जोधपुर के राजा साँमर, अजमेर और कुछ अन्य इलाके उपहार में दे दिए। ऊदा का मानना था कि मित्रता व व्यवहार धन से ही खरीदा जाता है लेकिन अपने इन कुकृत्यों से मेवाड़ को उन्नत के शिखर पर पहुँचाने वाले कुम्भा की आशाओं पर अयोग्य पुत्र ऊदा ने पानी फेर दिया। इन कार्यों से मेवाड़ का पतन प्रारम्भ हो गया था। मैत्री सम्बन्ध बनाने वाले लोग भी ऊदा का सम्मान नहीं करते थे। पिता की हत्या करने के बाद वह भयभीत रहता था। निराश होकर वह दिल्ली के मुसलमान बादशाह के पास गया और उसके साथ अपनी लड़की का विवाह कर देने का वादा करके उससे सहायता माँगी।[43] दिल्ली के बादशाह से मिलकर जब वह बाहर निकला तो अचानक उसके मस्तक पर बिजली गिरी और उसका प्राणान्त हो गया। ऊदा के कुकृत्यों का घड़ा शायद भर गया था और जगतनियन्ता भी उसके प्रतिकूल हो गये। पिता की हत्या का पूरा दंश उसने सहन किया और आजीवन राजा की तरह नहीं वरन् हत्यारे की तरह रहा। इस प्रकार बाप्पारावल के वंश की ईश्वर ने रक्षा की।

रायमल

राणा कुम्भा के सिंहासन का राजकुमार रायमल उत्तराधिकारी था। परन्तु राणा कुम्भा ने अपने जीवनकाल में ही उसे राज्य से निकाल दिया था जिससे रायमल ईडर चला गया था। राणा कुम्भा की मृत्यु के 5 वर्ष बाद 1474 ई0 में रायमल चित्तौड़ के सिंहासन पर आसीन हुआ और ऊदा

के अपराध का दण्ड देना शुरू किया। ऊदा इस बात से भयभीत हुआ और सहायता के लिए दिल्ली के बादशाह के पास गया जहाँ बिजली गिरने से उसका प्राणान्त हो गया। ऊदा की मृत्यु के बाद दिल्ली के बादशाह ने अपने वायदे के मुताविक ऊदा के दोनो पुत्र सिंहेशमल और सूरजमल को लेकर मेवाड़ पर आक्रमण किया। इस समाचार को पाकर चित्तौड़ में युद्ध की तैयारी होने लगी। मेवाड़ राज्य के सरदार, सामन्त के साथ आबू और गिरनार के नरेश भी चित्तौड़ में अपनी सेनाओं के साथ पहुंचे। उन सबके साथ ग्यारह हजार पैदल और अट्ठावन हजार सवारों की सेना लेकर राणा रायमल दिल्ली के बादशाह के साथ युद्ध करने के लिए चित्तौड़ रवाना हुआ और धारा नामक स्थान पर दोनो ओर की सेनाओं का मुकाबला हुआ।[44] युद्ध आरम्भ हुआ और थोड़ी ही देर में वह युद्ध भयानक हो उठा। फलतः बादशाह की फौज पराजित हुई और ऊदा के दोनो पुत्रों ने रायमल की अधीनता स्वीकार कर ली। राणा ने उन्हें क्षमा कर दिया। बादशाह की बची हुई सेना भाग खड़ी हुई।

रायमल की पाँच सन्तानें थीं। दो लड़कियाँ ओर तीन लड़के। राणा ने अपने जीवन के अन्त तक मेवाड़ की ख्याति को बढ़ाने की चेष्टा की और पूर्वजों के गौरव को कायम रखा। मालवा के बादशाह गयासुद्दीन ने भी राणा से बैर भाव रख रहा था। अन्त में निराश होकर सन्धि के लिए याचना की, जिसे राणा ने स्वीकार कर लिया। इसके बाद राणा ने सुख और शान्ति का जीवन बिताना आरम्भ किया।

सन्दर्भ–ग्रन्थ सूची

1. महाराणा कुम्भा और उनका काल, अध्याय 01, पृष्ठ 05,
2. वहीं पर।
3. वहीं पर।
4. वहीं पर।
5. वहीं पर।
6. वहीं पर।
7. वहीं पर।
8. वहीं पर।
9. राजस्थान का इतिहास, अध्याय 01, पृष्ठ 32
10. महाराणा कुम्भा और उनका काल, अध्याय 01, पृष्ठ 08
11. वहीं पर।
12. एपिग्राफिया इंडिका, भाग–8, पृष्ठ 82
13. एपिग्राफिया इंडिका, भाग–27
14. महाराणा कुम्भा और उनका काल, अध्याय 01, पृष्ठ 09
15. राजस्थान का इतिहास, सुखवीर सिंह गहलोत, पृष्ठ 1
16. एपिग्राफिया इंडिका, पृष्ठ 124–26
17. महाराणा कुम्भा और उनका काल, अध्याय 01, पृष्ठ 14
18. एनल्स एण्ड एंटीक्विटीज ऑफ राजस्थान, भाग–1, पृष्ठ 625
19. राजस्थान का इतिहास, सुखवीर सिंह गहलोत, पृष्ठ 149–51
20. एपिग्राफिया इंडिका, भाग–12, पृष्ठ 13

21. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग–6, नं0 1, पृष्ठ 4
22. एपिग्राफिया इंडिका, भाग–31, पृष्ठ 241
23. कुम्भा का शिलालेख, विं0सं0–1517, श्लोक सं0 25
24. एपिग्राफिया इंडिका, भाग–20, पृष्ठ 99
25. एपिग्राफिया इंडिका, भाग–04, पृष्ठ 31, 32
26. उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग–1, पृष्ठ 102–03, 109–10
27. महाराणा कुम्भा और उनका काल, भौगोलिक पर्यावरण और ऐतिहासिक पीठिका पृष्ठ 20
28. आटपुर का शक्तिकुमार का विक्रम संवत् 1034 का लेख इण्डियन एंटीक्वेरी भाग 39, पृष्ठ 181
29. इण्डियन एंटीक्वेरी भाग 6, पृष्ठ 62–63
30. इण्डियन एंटीक्वेरी भाग 39, पृष्ठ 191
31. वीर विनोद भाग–2, पृष्ठ 11, शेष संग्रह–13
32. एपिग्राफिया इंडिका, भाग–24, पृष्ठ 325
33. एकीलिंग माहात्म्य, श्लोक सं0 50
34. एपिग्राफिया इंडिका, भाग–2, पृष्ठ 521
35. महाराणा कुम्भा और उनका काल, अध्याय 01, पृष्ठ 27
36. वहीं पर।
37. हम्मीर मद मर्दन, पृष्ठ 25–33
38. महाराणा कुम्भा और उनका काल, अध्याय 01, पृष्ठ 32
39. महाराणा कुम्भा और उनका काल, अध्याय 01, पृष्ठ 37
40. उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग–2, पृष्ठ 572

41. वहीं पर।

42. एपिग्राफिया इंडिका, भाग–24, पृष्ठ 314–18

43. टॉड लिखित राजस्थान का इतिहास, 17वां परिच्छेद, पृष्ठ 167

44. वहीं पर।

****

द्वितीय अध्याय

रायमल की मृत्यु के समय मेवाड़

द्वितीय अध्याय

रायमल की मृत्यु के समय मेवाड़

वीरों का निवास और रणभूमि कहे जाने वाले मेवाड़ में रायमल नामक शासक का अभूतपूर्व योगदान मेवाड़ के विकास में रहा। सन् 1474 ई0 में रायमल चित्तौड़ के सिंहासन पर आसीन हुए और विषम परिस्थितियों से जूझना शुरू किये। राणा रायमल अपने व्यक्तित्व व कृतित्व के बल पर ऊदा द्वारा मेवाड़ की हानि की क्षतिपूर्ति किये और मेवाड़ को समृद्धिशाली बनाने में अपना योगदान किए। रायमल से युद्ध में मालवा का सुल्तान गयासुद्दीन खिलजी पराजित हुआ और भाग खड़ा हुआ। रायमल के तेरह पुत्र व दो पुत्रियाँ थीं।[1] तीनों पुत्र प्रारम्भ में बहुत ही तेजस्वी व शूरवीर थे उनमें आपसी द्वेष व झगड़ा हमेशा होता रहता था। धीरे–धीरे यह कलह अपने चरम पर पहुंच गयी और आपसी कुमति और मतभेद के चलते सभी एक दूसरे से अलग हो गए। फलतः मेवाड़ की स्थिति रायमल की मृत्यु के समय फिर दयनीय हो गयी। जयमल और सांगा के अलग होने के बाद पृथ्वीराज की मृत्यु रायमल की मृत्यु का तात्कालिक कारण साबित हुआ।

रायमल का प्रारम्भिक काल

1. रायमल के पुत्रों में उत्तराधिकार का युद्ध

रायमल के तीन पुत्र सांगा, पृथ्वीराज और जयमल प्रारम्भ से ही अत्यन्त शूरवीर, तजस्वी और एक दूसरे से अद्वितीय थे। उनकी वीरता की अनुपम छवि देखकर रायमल प्रसन्न हुआ करते थे लेकिन ये तीनों पुत्र जैसे–जैसे शैशवावस्था और बाल्यावस्था को पार करके किशोरावस्था की

दहलीज पर कदम रखे वैसे–वैसे इनका आपसी झगड़ा और उत्तराधिकार का संघर्ष भी अपनी युवावस्था पर पहुंच गया। किशोरावस्था में बालक नये–नये सपने देखता है और वह सपनों की दुनिया में ही खोया रहता है। इसमें शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और संवेगात्मक परिवर्तन बड़ी तीव्र गति से होता है।[2] इसलिए वर्तमान और भविष्य के उत्कर्ष हेतु तथा समाज की प्रगति के लिए सही मार्गदर्शन व दिशा निर्देश की आवश्यकता होती है। मनोवैज्ञानिक क्रो और क्रो ने कहा है– ''किशोर ही वर्तमान की शक्ति और भावी आशा को प्रस्तुत करता है।'' यह अवस्था निर्भरता की भी मानी जाती है।

इस प्रकार से इसी किशोरावस्था से तीनों पुत्रों में शुरू होने वाला आपसी संघर्ष रायमल की चिन्तावृद्धि का एक बहुत बड़ा कारण सिद्ध हुआ और अब तीनों पुत्रों की सिंहासन प्राप्त करने की अभिलाषा और भी बलवती हो गयी। सांगा और पृथ्वीराज झाला वंश की माता से पैदा हुए थे जयमल सौतेला भाई था। रायमल का पुत्रवत प्रेम तीनों के प्रति अविरल और निष्पक्ष था लेकिन उनके आपसी संघर्ष को देखकर रायमल ने तीनों को राज्य से निकाल देने का विचार किया क्योंकि इससे रायमल को अत्यधिक पीड़ा थी।

2. जयमल, साँगा और पृथ्वीराज का देशनिकाला

रायमल का अपने पुत्रों से प्रेम करना, उनके पराक्रम को देखकर प्रसन्न होना बालकों की बाल्यावस्था तक ही सीमित रह गया, किशोर होते ही बालकों का वह पराक्रम, वीरता, आपसी युद्ध में परिवर्तित हो गया

जिससे व्यथित होकर रायमल ने तीनों पुत्रों को अपने यहाँ से निकाल दिया।

3. जयमल की मृत्यु

अरावली पर्वत के नीचे बेदनौर नामक नगर में शूरथान राव रहा करता था। किसी समय वह अपने राज्य का उत्तराधिकारी था लेकिन अब उसके स्थान पर मुसलमानों का शासन हो गया था।[3] शूरथान के ताराबाई नाम की एक पुत्री थी जिसे वह बहुत स्नेह करता था वह अनुपम सुन्दरी थी। शूरथान ने इस बात की घोषणा की कि जो हमारे राज्य का उद्धार करेगा उसी के साथ मैं अपनी पुत्री का विवाह कर दूँगा। राजकुमार जयमल ने भी शूरथान की घोषणा को सुना और ताराबाई के साथ विवाह की उत्कट अभिलाषा लेकर बेदनौर आया उसने पहले ही ताराबाई से अशिष्ट व्यवहार किया जिससे क्रुद्ध होकर शूरथान ने जयमल को मार डाला। रायमल के बाद होने वाले उत्तराधिकार में एक प्रतिद्वन्दी या उत्तराधिकारी का अन्त हो गया।

4. सांगा व पृथ्वीराज में युद्ध और सूरजमल का षड्यन्त्र

सांगा और पृथ्वीराज के आपसी द्वेष से चाचा सूरजमल को आत्मशान्ति मिलती थी और मेवाड़ राज्य को हस्तगत करने की अभिलाषा भी पूर्ण होते दिखाई देती थी। सूरजमल की षड्यन्त्रकारी गतिविधियाँ चरमोत्कर्ष पर थी। सांगा और पृथ्वीराज इस बात से अभी तक अनभिज्ञ थे कि सूरजमल भी मेवाड़ के सिंहासन का इच्छुक है दोनों भाई उसी से अपने–अपने सिंहासनासीन होने की बात ऊपर रख रहे थे। सांगा का

कहना था कि मैं बड़ा पुत्र हूँ इसलिए सिंहासन पर निष्कंटक रूप से हमें ही बैठना चाहिए, पृथ्वीराज इसे सुनकर असन्तुष्ट हो गया और अपनी तलवार से बड़े प्रबल वेग से सांगा पर वार कर दिया। जिससे सांगा की एक आँख सदा के लिए विलुप्त हो गयी।[4] सांगा के शरीर में अन्य घाव भी हो गए, पृथ्वीराज भी जख्मी हुआ।

सांगा अपने आपको बचाकर शिवान्ती नामक स्थान पर पहुँचे।[5] वहाँ पर वीदा नामक राजपूत मिला जो उदावत वंश में पैदा हुआ था। वह कहीं बाहर जाने को तैयार था लेकिन रक्त से डूबे हुए शरणागत को देखकर वह रुक गया। इधर पीछे से जयमल ने पहुंचकर सांगा पर वार कर दिया, शरणार्थी की रक्षा के लिए राजपूतों की उत्कृष्टता के गुणों से परिपूर्ण वीदा राजपूत ने सूरजमल का सामना किया जिसमें उसे अपने प्राणों से भी हाथ धोना पड़ गया। वह जयमल के हाथ मारा गया। इसके बाद सांगा वहाँ से चले गए। पृथ्वीराज के शरीर में भी बहुत जख्म हो गये थे। उनके ठीक होने पर वह पुनः सांगा की खोज करने लगा। यह जानकारी पाकर सांगा राज्य से दूर निकल गये।

5. पृथ्वीराज का मीनों से युद्ध और विजय

दोनों भाइयों की आपसी रक्त पिपासुता का समाचार सुनकर रायमल बहुत क्रोधित हुए उन्होंने पृथ्वीराज को राज्य से बाहर निकल जाने का आदेश दिया। अपने पाँच सवारों के साथ पृथ्वीराज गोदवार राज्य के बालिओ नामक स्थान पर चला गया। गोदवार अरावली पर्वत पर बसा हुआ है।

जंगली मीन लोग गोदवार पर आकर तरह–तरह के उपद्रव करने लगे, गोदवार की राजधानी नादौल में थी। नादौल के सैनिकों की परवाह न करते हुए अपनी वृहद् संख्या के चलते मीनों का उपद्रव चरम पर पहुंच गया था। पृथ्वीराज ने मीनों के दमन का निश्चय किया और मीन राजा के यहाँ नौकरी करने वाले राजपूतों को उसके खिलाफ भड़का कर आक्रमण करवा दिया। लड़ाई भयानक होने पर मीनों के राजा ने भागने की कोशिश की परन्तु पृथ्वीराज ने उसे पकड़ लिया और भाले से मार डाला। इसके बाद पृथ्वीराज ने मीनों पर भयानक अत्याचार किया और निर्दयता के साथ उनका सर्वनाश किया। पृथ्वीराज ने तेसौड़ी नामक दुर्ग, जिस पर चौहान माद्रैचा का शासन था, को छोड़कर मीनों के सभी पहाड़ी इलाकों पर अधिकार कर लिया जिसे बाद में सद्दा नामक सोलंकी राजपूत को सौंप दिया। उसने सोदगढ़ पर भी अपना अधिकार कर लिया। सद्दा का विवाह माद्रैचा चौहान की लड़की से हुआ था जो बाद में पृथ्वीराज से मिल गया।

6. पृथ्वीराज का चित्तौड़ आना और ताराबाई से विवाह

पृथ्वीराज का मीनों से युद्ध और उन पर विजय का समाचार सुनकर रायमल बहुत प्रसन्न हुए और पृथ्वीराज को चित्तौड़ बुला लिये। चित्तौड़ आकर पृथ्वीराज ने जयमल के मारे जाने की घटना को सुना और कुछ दिनों के बाद ताराबाई के सौन्दर्य की प्रसंशा भी सुनी। उसके मन में उसे देखने की सहज ही अभिलाषा हुई। वह बदनौर जाकर शूरथान से मिला। मीनों को जीतकर पृथ्वीराज ने बड़ी ख्याति अर्जित कर ली थी इससे शूरथान ने भी उसका बड़ा सम्मान किया। पृथ्वीराज ने शूरथान के राज्य का उद्धार करने की प्रतिज्ञा की और तोड़ांतक के अफगान बादशाह को

युद्ध में मार गिराया जिससे शूरथान ने प्रतिज्ञा के अनुसार अपनी पुत्री ताराबाई का विवाह पृथ्वीराज से कर दिया।

7. सूरजमल के षड्यन्त्र का खुलासा

पृथ्वीराज जब अपने पिता के राज्य से चला गया था, जयमल मर चुका था और सांगा का कहीं पता न था ऐसे में सूरजमल आराम से चित्तौड़ में रह रहा था और स्वयं को मेवाड़ का उत्तराधिकारी समझ रहा था। पृथ्वीराज के वापस आने पर उसके मन का भाव बिगड़ने लगा और इधर यह रहस्य भी खुल गया कि तीनों भाइयों को आपस में लड़ाने वाला यही था। सूरजमल नये षड्यन्त्र की खोज में लगा था और सारंगदेव राजपूत से मिलकर चित्तौड़ पर आक्रमण करने के लिए तैयारी करने लगा।

8. मालवा के बादशाह से रायमल व पृथ्वीराज का युद्ध

सूरजमल और सारंगदेव भागकर मालवा के बादशाह से सहायता की याचना किए। याचना को स्वीकार कर वह मेवाड़ को विजित करने के उद्देश्य से निकल पड़ा। राणा रायमल भी गम्भीरी नदी के पास उसका सामना किए। चूंकि रायमल की अब वृद्धावस्था थी जिससे वह निराश हो रहे थे, तभी पृथ्वीराज अपने एक हजार सवारों के साथ रणक्षेत्र में आ गया और रायमल को हटाकर स्वयं लड़ने लगा। फलस्वरूप मालवा की फौज युद्ध छोड़कर भाग गयी। सारंगदेव जख्मी हुआ, चित्तौड़ के राजपूत भी कुछ मारे गये और पृथ्वीराज विजयी हुआ। सूरजमल अन्त तक निराश नही हुआ, सभी युद्धों में वह पराजित हुआ।

पृथ्वीराज की मृत्यु और रायमल की निराशा

चित्तौड़ में कुछ दिनों तक रहने के बाद पृथ्वीराज अपनी पत्नी ताराबाई के साथ कमलमीर के दुर्ग में रहने के लिए चला गया। सूरजमल के षड्यन्त्रों को जानकर वह अपने भाई सांगा से मिलने की इच्छा करने लगा। इन्हीं दिनों सिरोही के राजा को व्याही गयी उसकी बहन का कष्ट भरा पत्र उसके पास आया। पति के व्यवहारों से ऊबकर उसने यह पत्र लिखा था। पृथ्वीराज अपनी बहन के पास गया और अपने नेत्रों से उसकी स्थिति देखी और सिरोही के राजा से बड़ी कठोरता से बातें की। अन्त में उसके बहनोई ने पृथ्वीराज से क्षमा मांगी। चलते समय उसके बहनोई ने पृथ्वीराज को कुछ लड्डू रास्ते में खाने के लिए दिए। कमलमीर के निकट पहुंचकर क्षुधा के कारण पृथ्वीराज ने लड्डू खाया जिससे उसका सिर चकराने लगा, विषयुक्त लड्डू ने पृथ्वीराज के प्राणों को समेट लिया। ताराबाई उसे लेकर चिता में बैठी। इस घटना से रायमल पर हृदयाघात हुआ। सांगा और जयमल की अनुपस्थिति में पृथ्वीराज को पाकर उनके मन में कुछ आशाएं जगी थीं लेकिन पृथ्वीराज की मृत्यु से उनकी आशाएं निराशा में बदल गईं और उस आघात को वह सह न सके और कुछ ही समय बाद मृत्यु को प्राप्त हो गये।

रायमल का उत्तरकाल

रायमल के अन्तिम दिनों में मेवाड़ की समृद्धता और खुशहाली का भी अन्त हो गया था। आपसी द्वेष, परस्पर संघर्ष आदि मेवाड़ की आन्तरिक कमजोरी का महत्वपूर्ण कारण बन गया था। जिससे न केवल

उत्तराधिकारियों का पतन और अन्त हुआ बल्कि मेवाड़ राज्य की उन्नति में भी बाधा उत्पन्न हो गयी। रायमल की मृत्यु के समय मेवाड़ की स्थिति दयनीय हो गयी थी। एक छोटी सी भूल (उत्तराधिकारियों की नियुक्ति) रायमल की व्यापक चिन्ता और घोर निराशा का महत्वपूर्ण कारण सिद्ध हुई।

1. रायमल के पुत्रों में आपसी द्वेष

रायमल के तीन पुत्र थे। उनमें वैमनस्य की भावना बड़ी प्रबल थी जिसके चलते वे आपसी द्वेष के शिकार हो गए थे और यह आपसी द्वेष इतना प्रबल हो गया कि जन्मदाता पिता की मृत्यु का कारण बन गया। अपने पुत्रों के आपसी झगड़ों से रायमल में निराशा आ गयी थी और पर्याप्त दूरदर्शिता व मार्गदर्शन के अभाव में उनके पुत्र दूर हो गये और आपसी सम्भाषण के न रहने से उनकी कटुता निरन्तर बढ़ती ही गई।

2. सूरजमल की षडयन्त्रकारी गतिविधियाँ

सूरजमल चित्तौड़ में रहता था और देखने में तो वह राणा रायमल का भक्त हो गया था लेकिन अन्दर ही अन्दर वह अपने पिता ऊदा का उत्तराधिकारी स्वयं को समझता था उसकी इस मनोभावना को रायमल के तीनों योग्य एवं वीर पुत्र तब तक नहीं समझ पाये थे जब तक कि वह विरोध में खुलकर सामने नहीं आ गया था। यद्यपि उसके विरोधी होने पर पूर्व की सारी गतिविधियाँ षड्यन्त्रकारी ही सिद्ध हो रही थीं। सूरजमल के षड्यन्त्र का परिणाम ही था कि जयमल, पृथ्वीराज और सांगा तितर–बितर हो गए थे और उनके न रहने पर रायमल की वृद्धावस्था में वह अपना

भाग्य तलाश रहा था तथा स्वयं को मन ही मन मेवाड़ का स्वामी समझ बैठा था। उसकी गतिविधियों पर लगाम कसने वाला कोई नहीं था। फलतः वह अबाध गति से षड्यन्त्रों में तल्लीन था।

3. रायमल के काल में पड़ोसी देश और उनकी स्थिति

राणा कुम्भा की मृत्यु के उपरान्त मेवाड़ के आन्तरिक कलह का लाभ उठाकर पड़ोसी मुल्क क्षेत्रीय संसाधनों से अपनी स्वतन्त्र सत्ता को कायम करने में लगे हुए थे। पितृहन्ता ऊदा अपनी अयोग्यता का परिचय देते हुए विरोधियों को जागीर प्रदान कर उन्हें अपना बनाने में लगा हुआ था। स्वदेश में अपनी स्थिति कमजोर देखकर अपनी स्थिति बनाए रखने के लिए बाहरी सहायता खोजने लगा। उसने सिरोही के देवड़ा सरदार को आबू दे दिया और अपने सगोत्रों के विरुद्ध राठौर सहायता निश्चित करने के लिए सांभर, अजमेर तथा निकटवर्ती क्षेत्र जोधपुर के शासक को दिया।[7]

1474 ई0 में रायमल के सिंहासनासीन होने पर मेवाड़वासियों में उत्साह का संचार हुआ था लेकिन उनके तीन योग्य पुत्रों का आपसी द्वेष व संघर्ष लोगों के आशा और उत्साह को पानी में डुबो दिया। रायमल के अन्तिम दिनो में षड्यन्त्रकारी सूरजमल पड़ोसी देशों मालवा आदि के सुल्तानों से मिलकर अपनी सत्ता को कायम करने में लगा हुआ था।

महाराणा रायमल ने 1473 ई0 से 1509 ई0 तक शासन किया उनमें सिसोदियों की परम्परागत शूरवीरता एवं कूटनीतिज्ञता का अभाव था। परिणामस्वरूप उनके शासनकाल में मेवाड़ के बहुत से क्षेत्रों पर पड़ोसी राज्यों ने अधिकार जमा लिया। आबू तारागढ़ और सांभर तोकुम्भा की मृत्यु

के बाद ऊदा के शासन काल में ही मेवाड़ के अधिकार से जाते रहे थे। रायमल पुनः इन क्षेत्रों को अपने अधिकार में नही ला पाये। रणथम्भौर टोंडा और बूंदीपर मालवा के सुल्तान ने अधिकार जमा लिया।[8]

राजनैतिक दशा

1. मालवा

पितृघाती ऊदा ने मेवाड़ से भागकर मालवा के सुल्तान गयासुद्दीन खिलजी के दरबार में आश्रय लिया उसने सुल्तान से सहायता की याचना भी की। ऊदा की बिजली गिरने से मौत होने के बाद भी सुल्तान ने मेवाड़ को विजित करने का विचार नहीं त्यागा और ऊदा के दोनो पुत्रों के साथ मेवाड़ को जा घेरा। रायमल ने वीरतापूर्वक शत्रु का सामना किया और प्रबल प्रतिरोध के कारण सुल्तान को वापस लौटना पड़ा।

मालवा का सुल्तान मेवाड़ की आन्तरिक स्थिति से अवगत हो गया था इसलिए उसने मेवाड़ के आसपास के क्षेत्रों को हस्तगत कर उन्हें विजित करने में लग गया। हाड़ौती क्षेत्र पर मालवा का अधिकार बना रहा। पृथ्वीराज के आक्रमण से क्षुब्ध होकर मालवा के सुल्तान ने चाकसू, सीकर, नरेना, सांभर, आमेर, अजमेर आदि पर आक्रमण कर काफी लूटपाट की।

2. टोडा

मेवाड़ के राज्य टोडा पर शासन कर रहे राव सुल्तान पर मालवा के सुल्तान ने अपना अधिकार जमा लिया। टोडा का शासक राव सुल्तान सहायता की उम्मीद लिए मेवाड़ चला आया और निश्चित किया कि जो

भी हमें टोडा राज्य दिलायेगा उसी से मैं अपनी अद्वितीय सुन्दरी और वीरांगना पुत्री का विवाह कर दूंगा। इस प्रकार मेवाड़ में संकट के बादल चारों ओर से उमड़–घुमड़ कर वर्षा करने को आतुर थे। ऐसी परिस्थिति में रायमल की चतुराई और बुद्धिमत्ता ही उन संकटरूपी बादलों को हटा सकती थी।

3. दिल्ली

रायमल के काल में दिल्ली पर लोदी वंश का शासन चल रहा था। जहाँ तक लोदी वंश से रायमल के सम्बन्ध की बात आती है उसकी उत्तरी सीमा पर कुछ झड़पें हुई थीं। किन्तु मेवाड़ की विदेशी प्रतिष्ठा बनी रही क्योंकि भारत में कोई सर्वशक्तिमान सत्ता नहीं थी और न कोई विकट शत्रु था जो या तो प्रभावशाली हस्तक्षेप कर सकता था। राज्य के अतिरिक्त मतभेदों को लाभ उठा सकता। सिकन्दर लोदी अपने वृहद्कार्यक्रमों में व्यस्त था उसे भी राजस्थान में हस्तक्षेप करने का समय न था। बहलोल लोदी से कुछ झड़पें रायमल की अवश्य हुईं।

बागड़

मेवाड़ के पड़ोसी राज्यों में बागड़ राज्य उन्नति पर था वहाँ के शासकों ने रावल की उपाधि धारण की। रायमल के काल (1473–1509) में बागड़ राज्य पर सोमदास का (1447–80), रावल गंगादास (1480–97), उदयसिंह (1497–1527) का शासन था। उनमें उदयसिंह अपने वंश का सबसे प्रसिद्ध रावल था। उसमें शूरवीर योद्धा, राजा और प्रशासक के गुण विद्यमान थे। अभिलेखों से ज्ञात होता है कि उदय सिंह ने मेवाड़ के राणा

को युद्ध में सहयोग दिया था। अपने राज्य को अखण्ड बनाये रखने के लिए इसने गुजरात तथा मांडू के सुल्तानों के विरुद्ध निरन्तर युद्ध करके अपने अदम्य साहस का परिचय देता रहा।[10] उदय सिंह एक उदार राजा भी था जिसके अनेकों उदाहरण उसके जीवनकाल में मिलते हैं, सामान्यतः मेवाड़ राज्य से बागड़ राज्य के सम्बन्ध अच्छे थे। समानता की दृष्टि से पड़ोसी राज्य की गरिमा को बनाये रखने के लिए बागड़ राज्य प्रतिस्पर्धी बना रहा।

बीकानेर के राठौर

बीकानेर राजस्थान का उत्तरतम और सबसे बड़ा क्षेत्र है। यहाँ के शासक राजपूतों के राठौर वंश के थे। महत्वाकांक्षी और उद्यमी जोधा के पाँचवें पुत्र बीका ने स्वेच्छा से 1465 ई0 में पिता के घर को छोड़ दिया और कुछ विश्वसनीय योद्धाओं के साथ क्षेत्र को विजित करने चला।[11] 1488 ई0 में इसने बीकानेर नगर बसाया और उसका नाम तथा यश चिरस्थायी कर दिया। रायमल द्वारा पितृहन्ता ऊदा को राज्य निकाले जाने पर इस (बीका) शासक ने ऊदा का हार्दिक स्वागत किया था और कुछ समय तक बीकानेर में रहने की अनुमति दे दी थी। बीका के 1504 ई0 में मृत्यु के पश्चात् इसका बड़ा पुत्र रावनारा उत्तराधिकारी हुआ लेकिन दुर्भाग्यवश एक वर्ष के भीतर ही इसकी मृत्यु हो जाने से इसका छोटा भाई रावलूणकर्ण 1505 में उत्तराधिकारी हुआ। यह एक शक्तिशाली शासक था। रायमल से इसके सम्बन्ध सामान्यतः ठीक थे। इसकी बढ़ती हुई शक्ति से निकटवर्ती राज्यों के सरदार इससे ईर्ष्या करने लगे। फलतः एक

वीर, दानी, सत्यनिष्ठ, कला और साहित्य के संरक्षक का अन्त हो गया। इन्हीं परिस्थितियों ने मुस्लिम आक्रान्ता बाबर को भारत जैसे विशाल और सम्पन्न देश में आने के लिए विवश किया।

सिरोही के चौहान और रायमल

सिरोही नगर की स्थापना 1425 ई0 में रणमल के उत्तराधिकारी शिवभान के पुत्र सहसमल ने की। अपनी महत्वाकांक्षा को गति देने के लिए वह सोलंकी राजपूतों के क्षेत्र को विजित किया और इसी कड़ी में उसने राणा कुम्भा के समय में मेवाड़ की सीमाओं को लांघना प्रारम्भ किया किन्तु राणा के सामरिक अभियान में उसे हार का मुँह देखना पड़ा। इसी तरह से उतार–चढ़ाव की स्थिति रहने के मध्य रायमल के गद्दी पर बैठने के बाद लाखा के महत्वाकांक्षी पुत्र जगमल ने 1474 ई0 में दिल्ली के सुल्तान बहलोल लोदी के विरुद्ध राणा रायमल का साथ दिया। इन परिस्थितियों के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि रायमल की योग्यता और वीरता से प्रभावित होकर ही पड़ोसी शासकों ने मित्रवत् व्यवहार किया।

रायमल के समय में हाड़वती के चौहानों ढुंढार के कछवाहे, करावली के यादव, धोलपुर के तंवर और मेवातियों से सामान्य सम्बन्ध रहा।

गयास शाह और रायमल

सुल्तान महमूद के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र गयासुद्दीन शाह मालवा के सिंहासन पर आसीन हुआ। यह अपनी योग्यता और प्रतिभा के बल पर प्रजा और राज्य में सुख समृद्धि तथा शान्ति का वातावरण बनाए रखा। 1473 ई0 में इसने मेवाड़ पर आक्रमण किया। लेकिन रायमल के योग्य

सैनिकों और उत्साह के चलते वह पराजित हुआ इसके परिणामस्वरूप रायमल ने भी मालवा पर आक्रमण किया जिससे मालवा राज्य को छति उठानी पड़ी।[12]

बहलोल लोदी और रायमल

दिल्ली के सिंहासन पर बहलोल के उत्थान की कथा अफगान गुटबंदियों और उनके विश्वासघात के खिलाफ संघर्ष की कहानी है। सिंहासनासीन होने के कुछ ही समय पश्चात् वह राज्य की पुनः व्यवस्था में लग गया। अपने राज्य की सीमा विस्तार के क्रम में वह मेवाड़ भी पहुँचा। मेवाड़ नरेश के खिलाफ लोदी अभियान की किसी समकालीन इतिहासकार के द्वारा विशेष उल्लेख नहीं मिलता है। मेवाड़ में लोदी अभियान के बारे में अहमद यादगार की तारीखें सलातीन अफागिना में ही उल्लेख है लेकिन इसमें न तो किसी राजा के नाम का उल्लेख है और न ही किसी अभियान की तिथि का।[13]

राजपूत इतिहास के अनुसार मेवाड़ पर आक्रमण का मौका बहलोल को इसलिए मिला क्योंकि इस राजपूत रियासत में आंतरिक मतभेद फैले हुए थे। 1468 ई0 में ऊदा गद्दी पर बैठा और अगले 05 वर्षों तक मेवाड़ में जो आतंक का साम्राज्य बनाये रखा उसी का प्रतिफल यह निकला कि मेवाड़ वाह्य आतंकियो की आगोश में आ गया। रायमल द्वारा ऊदा को निष्कासित कर दिये जाने पर उसने बहलोल की मदद मांगा और बदले में अपनी बेटी उसे देने की पेशकश की। टाड के अनुसार इसके तुरन्त बाद ऊदा की बिजली गिरने से मौत हो गयी।[14]

ऊदा की मौत हो जाने पर भी बहलोल अपने अधिकारियों कुतुबखाँ और खानखाना फरमूली को लेकर ऊदा के पुत्रों सहसमल और सूरजमल के साथ आया। मेवाड़ पहुंचकर शाही सेना ने नाथद्वारा के निकट सियाढ़ में पड़ाव डाल दिया।[15] यहाँ पर रायमल ने अपने जागीरदारों के साथ 58 हजार घुड़सवारों और 11 हजार पैदल सैनिकों की सेना एकत्र कर लोदियों से टक्कर ली। लड़ाई के आरम्भिक दौर में राणा के भतीजे छत्रसाल के नेतृत्व में राजपूतों ने तेजी से हमला करके अफगान शिविर को भारी छति पहुंचायी और सैनिकों को हताहत कर दिया लेकिन बाद में अफगानों की कूटनीतिक चाल के अनुसार युद्ध का रंग बदल गया और राजपूतों सहित छत्रसाल वीरगति को प्राप्त हुआ। युद्ध में इस विशेष परिवर्तन से हताश राणा ने संधि तो कर ली लेकिन जैसे ही बहलोल ने पीठ फेरी राजपूतों ने उसके शासन को जुए की भांति भार समझकर उतार फेंका। उधर बहलोल की अपनी आंतरिक समस्याएं थीं जिनके रहते हुए उसे कभी समय नहीं मिला कि वह फिर मेवाड़ की ओर अपना ध्यान केन्द्रित कर सके।[16]

रायमल के काल में दक्षिण भारत की स्थिति

राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक रूप से पतनोन्मुख मेवाड़ राज्य को उन्नति के मार्ग पर ले जाने के लिए सामन्तों ने ऊदा को हटाकर रायमल को मेवाड़ के सिंहासन के लिए उपयुक्त समझा उनकी मंशा और इच्छा को फलीभूत करने में रायमल भी पूरे मनोयोग से लगा रहा।

1473 ई0 में रायमल के समय दक्षिण भारत के राज्यों में सीमा वृद्धि के लिए द्वन्द्व मचा हुआ था। प्रशासनिक परिषद के सदस्य एवं सुल्तान

हुमायूँ के शासन काल में प्रधानमंत्री के रूप में महमूद गवाँ बहमनी सम्राज्य की समस्याओं को भली–भांति समझ चुका था। सम्राज्य के उत्तर में मालवा, उत्तर पूर्व में उड़ीसा, दक्षिण–पश्चिम में तेलंगाना और दक्षिण में विजयनगर साम्राज्य था।[17] ऐतिहासिक स्रोतों में इन राज्यों में मालवा के बादशाह गयासुद्दीन से रायमल के संघर्ष का उल्लेख मिलता है।[18] अन्य राज्यों से तत्काल मेवाड़ के सम्बन्ध सामान्य रहे।

रायमल वैसे तो अपनी वंश–परम्परा के अनुकूल मांडू के सुल्तानों तथा अन्य शत्रुओं से संघर्ष करते रहे परन्तु उनके पुत्रों तथा भाई–भतीजों के पारस्परिक विरोध से राज्य की स्थिति निर्बल सी होती रही जिसका यथोचित लाभ उठाकर पड़ोसी राज्यों ने अपने पैरों को जमाने की भरपूर कोशिश की। इस स्थिति से मेवाड़ की आन्तरिक सुरक्षा और आर्थिक व्यवस्था को बड़ा आघात पहुंचा। इन सभी प्रकार की अव्यवस्थाओं के प्रति रायमल को ही जिम्मेदार सिद्ध करना उचित प्रतीत होता है। अपने जीवन के अन्तिम क्षण में भी यदि रायमल सूझबूझ से कार्य करते और अपने किसी सुयोग्य राज्य के अधिकारी का चयन कर लिए होते तो रायमल के पश्चात् मेवाड़ की स्थिति का इतिहास बहुत अच्छा होता और किसी प्रकार से कहीं कोई संघर्ष की परिस्थिति ही न बनती किन्तु रायमल ने अपने जीवन के चलते किसी भी उचित राज्य के उत्तराधिकारी का चुनाव नहीं किया जिसके चलते उनके पुत्रों में एक दूसरे को नीचा दिखाने की स्थिति मजबूत हो चली थी। एक दूसरे को अपनी राह का कांटा मान बैठे थे और उस प्रकार के दूषित विचार का कारण वह हुआ कि सभी के

सभी अपने को राज्य का उत्तराधिकारी माना करते रहे और संघर्ष का दौर अनवरत चलता ही रहा। पृथ्वीराज, संग्राम सिंह (सांगा) और जयमल हर समय मेवाड़ राज्य के उत्तराधिकारी बनने की ताक में ही रहा करते थे। आपस में सम्बन्ध बहुत कटु और विपरीत हो चले थे। यदि समय रहते रायमल उचित उत्तराधिकारी का चुनाव कर उसे अपने ही सामने प्रस्तुत कर चले होते तो मेवाड़ को बुरे दिन देखने नहीं पड़ते। अतः रायमल की उस अतिदुर्बल निर्णायक वृत्ति का दुष्परिणाम बहुत अनिष्टकारी रहा। जब पिता रायमल ही कोई उत्तराधिकारी अपने राज्य के चलते नहीं चुन पाए तब रायमल की मृत्यु के समय मेवाड़ के समक्ष एक कष्टकारी राष्ट्रीय संकट खड़ा हो गया था। यद्यपि पृथ्वीराज, संग्रामसिंह (राणा सांगा) और जयमल अनिश्चितता के माहौल में हो गए फिर भी 14 पुत्रों के मध्य किसी एक का राजा के रूप में स्वीकृत होना बहुत कठिन था। स्वयं सभी अपने–अपने पक्ष में प्रयास जारी रखे थे जिनमें उपरिलिखित तीनों की लालसा उत्तराधिकारी बनने की बराबर रहती थी। इतना ही नहीं संग्राम सिंह के चाचा स्वयं उस मेवाड़ के उत्तराधिकारी बनने का सपना बराबर देखा करते थे।

उपरिलिखित अनिश्चितता के माहौल के चलते अपने–अपने को उत्तराधिकारी की सिद्धि के लिए ज्योतिषियों के यहाँ जाना आरम्भ हुआ। उतना ही नहीं उसी प्रकार की अनिश्चितता के दौर में जब उपरिलिखित तीनों भीमट गाँव की एक वृद्ध पुजारिन के पास गये तब उस पुजारिन ने भी बहुत दूर बैठे सांगा को ही उत्तराधिकारी के प्रबल पुरुष के रूप में बताया जिसका दुष्परिणाम वह हुआ कि सांगा पर तुरन्त पृथ्वीराज ने

हमला कर डाला। बचाव के प्रयास के बावजूद भी सांगा की एक आँख में पूरे जोर से तलवार लग गयी और सांगा को अपनी एक आँख से हाथ धोना पड़ा। उस समय उन सबों में उम्र में अधिक सारंगदेव थे। उन्होंने नाटकीय ढंग से बीच बचाव किया तो किन्तु उनकी भी नियति साफ नहीं थी। वह भी अन्दर ही अन्दर चाह रहे थे कि किसी प्रकार से उसे उस समय मेवाड़ का शासक बनने का अवसर प्राप्त हो जाता तो बहुत ही अच्छा उनके हित में हो जाता।

इस प्रकार रायमल की मृत्यु के पश्चात् मेवाड़ अनिश्चितता के माहौल का गढ़ बन चुका था। कोई भी सांस्कृतिक उचित राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक उन्नति करने की ओर किसी का ध्यान जाने का प्रश्न ही नहीं था क्योंकि आपसी कलह और संघर्ष के चलते राजपरिवार में पूरे जोरों पर उस समय अन्तर्द्वन्द्व चल रहा था। यद्यपि राजपूताने का अपना विशेष महत्व था। यह राजपूत वंश राजपूतों को नहीं अपितु अन्य राजाओं के लिए भी उत्तम प्रेरणा का स्रोत हुआ करता था। अपनी परम्परा, उत्तम इतिहास, सामाजिक स्थिति तथा अनेकानेक उपलब्धियों के कारण सम्पूर्ण मेवाड़ उस समय राजपूताने का प्रधान एवं प्रमुख राज्य था। इस प्रकार के भाव की पुष्टि राजेन्द्र शंकर भट्ट[19] ने व्यक्त किया है।

राजा रायमल के काल में सामाजिक दशा

पुरातन काल से ही हमारा हिन्दू समाज मुख्यतः चार वर्णों में ब्राहम्ण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण में बंटा हुआ था। इन चार वर्णों से ही राजवर्ग,

व्यापारी वर्ग, खेतिहर, कलाबाज, कारीगर, मजदूर वर्ग, राजाश्रित विद्वान वर्ग, निम्न वर्ग व साधु वर्ग का उदय हुआ था।

राजवर्ग के अन्तर्गत आने वाले नागरिकों को कुछ विशेषाधिकार प्राप्त थे, ये साधारण लोग से अलग थे। इनमें मुख्यतः मंत्री, राजा, सेनापति आदि आते थे।

व्यापारी वर्ग के अन्तर्गत वैश्य लोग आते थे। खेतिहर वर्ग में जो लोग आते थे अहीर लोग थे। ये खेती करते थे, पशुपालन करते थे।

सुनार, लुहार, कुम्हार, धोबी, माल आदि कारीगर वर्ग में आते थे। दिन प्रतिदिन के कार्यों में इनका बहुत योगदान रहता था।

राजकवि, ज्योतिषी, वैद्य आदि राजाश्रित विद्वान वर्ग में आते थे।

नट, कालबोलिया (संपेरा) आदि लोग विभिन्न प्रकार की कलाओं का प्रदर्शन कर अपना जीवन यापन करते थे।

निम्न वर्ग के अन्तर्गत कसाई, बधिक, भील, बाबरी, धोबी, कोरी, अहेरी इत्यादि थे। ये लोग जंगल में रहते थे और यात्रियों से कर लेते थे।

साधु वर्ग में हिन्दू और मुसलमान दोनो ही वर्ग के साधु थे।

राजा रायमल के समय में जाति प्रथा बहुत अधिक थी। मुसलमान जिस भाग में जाते थे वहां की जनता को मुसलमान बना देते थे। हिन्दू स्वाभाविक रूप से दब गये थे। मुसलमानों के जाने के हजार वर्षों बाद भी हिन्दू अपना धर्म पुनः परिवर्तन नहीं कर पाये।

मुसलमानों के आधिपत्य के बाद स्त्रियों की दुर्दशा शुरू हो गयी। औरतें गृहकार्य करने वाली मात्र रह गयीं थी। वह जन्मना पुरुष के अधीन थीं। जन्म के समय पिता, विवाह के समय पति, बुढ़ापे में पति के सहारे

थीं। पर्दा प्रथा व्यापक रूप से चलन में आ गयी थी। स्त्रियों को प्रायः पति की सम्पत्ति में हिस्सा नहीं मिलता था। समाज में बहु विवाह प्रथा भी प्रचलित थी। एक राजा के कई–कई रानियाँ होती थीं।

रायमल के समय में वैदिक काल की प्रचलित रीति से ही विवाह होते थे, स्वयंवर नहीं होता था। पिता अपनी पुत्री के लिए वर खोजता था। अपने गोत्र में विवाह नहीं होता था, जो आज भी प्रचलित है।

एक महत्वपूर्ण घटना सती प्रथा की है। पति के मर जाने पर पत्नियाँ सती हो जाती थीं। सती का बहुत ऊँचा स्थान होता था। सती प्रथा के साथ–साथ जौहर प्रथा भी प्रचलित थी। युद्ध में पराजय की सम्भावना को देखते ही स्त्रियां सामूहिक रूप से प्राण दे देती थीं। इस प्रथा को ही जौहर प्रथा कहते हैं। ताकि विजेता के हाथों अपमान न हो।

वेश्यावृत्ति की प्रथा का भी बोलबाला था। वेश्याओं को घर में रखना गौरव की बात मानी जाती थी। सम सामयिक शिल्प कला के अध्ययन से इस बात की पुष्टि होती है।

हिन्दू ग्रन्थों के अनुसार मनुष्य जीवन कई संस्कारों से युक्त था। जन्म से मृत्यु तक सोहल संस्कारों का चलन था, जिसमें जन्मदिवस, नामकरण, अन्नप्राशन, कर्णछेदन आदि था।

उस समय वस्त्र और आभूषणों का रिवाज था। छपे हुए रंगे मोटे का प्रचलन था। सूतीवस्त्र गाँव में बनते थे। पुरुष धोती पहनते थे, स्त्रियाँ घाघरा चोली ओढ़नी पहनती थीं।

गले में कंठी, माला, हंसुली और माथे पर बोस राजड़ा, कानों में हीरे जड़ा लोंग, पांव में चांदी की कड़िया, कमर में करधनी पहनी जाती थी।

आम आदमी का भोजन शाकाहारी था। मांस, मछली आदि का सेवन सम्भवतः क्षत्रिय और निम्न वर्ग द्वारा होता था।

सांस्कृतिक स्थिति

महाराणा रायमल का समय विषम परिस्थितियों पर नियंत्रण करने वाला और उसे समयानुकूल करने वाला था। रायमल के सिंहासनासीन होने के बाद एक लम्बा समय मेवाड़ को सुदृढ़ दशा और पुनः सुनियोजित करने में ही व्यतीत हो गया। उस समय मेवाड़ की दशा वीरान खण्डहर की भांति हो गयी थी। जिसे उपजाऊ बनाकर रहने योग्य बनाया जाय, ऐसी स्थिति को लाने में रायमल को लम्बा समय लग गया और जैसे ही दशा सुधरने लगी वैसे ही उनके पुत्रों में आपसी संघर्ष छिड़ गया जिसके चलते मेवाड़ में तत्कालीन कोई सांस्कृतिक उन्नति नहीं हो पायी।

मेवाड़ की समग्र स्थितियों पर दृष्टिपात किया जाय और कुछ दशकों का अध्ययन किया जाय तो यह ज्ञात होता है कि यहाँ के कुछ शासक मेवाड़ को बसन्त ऋतु की तरह सजाकर संवार दिये, चारों ओर हरियाली हो गयी। वहाँ के पौधों को अपने परिश्रम के पसीने से सींचकर बड़ा किए और कुछ शासक गर्म लू के विकराल थपेड़ों से उसको मुरझा दिये। वहीं कुछ शासक बादल बनकर मेवाड़ में प्रेम, स्नेह की वर्षा किये जिसमें कुछ मुरझाये पौधों में जान आ गयी और कुछ सदा के लिए पतन की गहरी गर्त में समाहित हो गये।

इस प्रकार से बदलती हुई परिस्थिति में किसी प्रकार की उन्नति और विकास का होना तथा उसमें स्थायित्व आना बड़ा ही दुष्कर प्रतीत होता है। इन्हीं कारणों के फलस्वरूप मेवाड़ में रायमल के समय कोई

सांस्कृतिक उन्नति नहीं हो पायी। जबकि इसके पूर्व महाराणा कुम्भा और इनके उपरान्त महाराणा संग्राम सिंह ने अपनी समरवीरता, रणकुशलता का परिचय देकर यह सिद्ध कर दिया कि विषम परिस्थितियों में भी व्यक्ति अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।[20]

धार्मिक एवं आध्यात्मिक स्थिति

रायमल के लम्बे कार्यकाल (1473–1509) में आपसी द्वन्द्व, उत्तराधिकारियों का चुनाव, आन्तरिक एवं वाह्य संकटों के चलते धार्मिक उन्नति की ओर कोई भी कदम उठाना उचित नहीं समझा गया। जबकि उस काल में अनेकों विदेशी व मुस्लिम आक्रान्ता अपनी निगाह गड़ाए बैठे थे और अपने–अपने धर्म के प्रति पूरी तरह से सजग थे, लेकिन यहाँ के राजपूत वैसे ही रह गए थे जैसे हजार वर्ष पहले उने पूर्वज थे। उनके जीवन की नैतिकता और सामाजिकता आज भी वही दीन–दुर्बल पुरानी दिखाई देती है जो बहुत प्राचीन काल में इस वंश लोगों में पायी जाती है।[20]

समीक्षात्मक अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि किसी भी क्षेत्र मे उन्नति के लिए आवश्यक है कि दूरगामी सोच के साथ निरन्तर सही दिशा में एकजुट होकर कार्य किया जाय जबकि इसी चीज को अपनाकर आक्रान्ता अपनी विजय पताका फहरा दिये और आपसी फूट तथा स्वयं को ही सर्वेसर्वा दिखाने की चाहत में राजपूत अपने संघर्ष को अधिक कठिन बनाकर पराजय का मुँह ताकने लगे। इन सभी कारणों के चलते रायमल

के समय विशेषरूप से धार्मिक उन्नति प्रकट नहीं हो पाई। आपसी कलह में लोग इतने व्यस्त थे कि अध्यात्म से उनका लगाव कोसों दूर रहा।

राजपूतों के काल में शिक्षा के स्तर पर भी कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया। ठीक इसके विपरीत विदेशी आक्रान्ताओं ने युद्ध के कला–कौशल, सूझ–बूझ, कूटनीतिक चाल को सीखने के लिए शिक्षा को जीवन का एक अंग माना था। रायमल के समय सबसे दुःखद स्थिति सम्भवतः इसलिए बन गयी क्योंकि उनके पुत्रों में बड़े–छोटे और सुमति को पूर्णतः अभाव था। रामचरित मानस में भी आपसी सम्मति को महत्व दिया गया है।[21]

प्राचीन से वर्तमान तक शिक्षा को प्रथम दर्जा प्रदान किया गया है और शिक्षा के अभाव में व्यक्तिगत विकास असम्भव है। ऐतिहासिक स्रोतों में इस बात का स्पष्ट संकेत मिला है कि बड़े–बड़े दुर्गम और दुष्कर कार्य को सम्पन्न करने में विद्वानों और विचारकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। ऐसे में रायमल के समय में शैक्षिक स्थिति का दुर्बल होना ही इस बात का परिचायक है कि वह समय कितने विकास का था। निष्कर्षतः इस तथ्य को स्वीकार करना ही पड़ेगा कि शैक्षिक स्थिति यदि सुदृढ़ होती तो रायमल के वास्तविक उत्तराधिकारी राणा संग्राम सिंह को सिंहासनारोहण के पूर्व ही इतना अथक संघर्ष आपस में नहीं करना पड़ता।

आर्थिक स्थिति

रायमल की मृत्यु के समय मेवाड़ की आर्थिक स्थिति शोचनीय हो गयी थी। आपसी खींचतान के चलते और आन्तरिक तथा वाह्य संकटों से

जूझने में आर्थिक स्थिति को मजबूत करने के लिए कोई मजबूत प्रयास नहीं हो सका। यहाँ की अपार धन–सम्पदा विदेशियों के आँखों की किरकिरी बनी रही। उद्योग व व्यापार पर भी कोई ध्यान नहीं दिया गया।

यूनानी इतिहासकारों ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि जिस समय सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया था, केवल पंजाब में छोट–छोटे बहुत से राजा थे। सिकन्दर के बाद ईरान के लोगों ने भारत पर आक्रमण किया। सम्राट डैरियस ने अपने अधिकृत राज्यों में भारत को सबसे अधिक सम्पन्न और समृद्धिशाली पाया था।[22] तक्षक, जित, पारद हूण, यूनानी आदि अनेक जातियों ने समय–समय पर इस देश पर आक्रमण कर यहाँ की अपरिमित और अमूल्य धन–सम्पदा को लूट कर ले गये थे।

देश की आर्थिक स्थिति की मजबूती का कारण यहाँ की सम्पत्तिशीलता थी और कमजोरी का कारण यह था कि इस देश में अगणित राजा और नरेश थे, जिनमें परस्पर खूब फूट थी और उनका पूरा प्रयत्न एक दूसरे को ही नींचा दिखाने में ही था। परिणामस्वरूप यहाँ की अपार धन–सम्पदा समय–समय पर आक्रमणकारी ले गये और यह देश खोखला बनता चला गया।

रायमल की मृत्यु के समय मेवाड़ की अन्तर्दशा

महाराणा कुम्भा के स्वर्णिम काल के बाद पितृघाती ऊदा के शासन आते ही मेवाड़ की अन्तर्दशा निरन्तर बिगड़ती ही चली गयी। उसने अपने पाँच वर्षों के शासनकाल में मेवाड़ में आतंक का राज्य स्थापित कर दिया

जिससे ऊबकर दरबारी सामन्तों ने रायमल को गद्दी पर आसीन किया लेकिन रायमल में भी दूरदर्शिता का अभाव था। 1473 ई0 में रायमल के गद्दी पर बैठने के समय जो स्थितियाँ थीं यद्यपि उन सभी विषमताओं पर रायमल ने विजयश्री प्राप्त कर लिया था लेकिन रायमल के योग्य व साहसी पुत्र जैसे–जैसे बड़े होते गये और जिम्मेदारियों की दहलीज पर कदम रखते गये वैसे–वैसे मेवाड़ पर संकट के बादल छाते गये। यह संकट के बादल दिनोंदिन घने होते गये और रायमल के ऊपर इस तरह से आंसुओं और दुःख की बौछार किये कि उनका प्राणान्त ही हो गया।

इस प्रकार से मेवाड़ की आन्तरिक दशा अत्यन्त निम्न हो गयी थी। आगे के तथ्यों को देखते हुए निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि यदि राणा सांगा में वह अपरिमित बल व साहस तथा धैर्य न होता तो मेवाड़ को विजित करने में इतने धैर्यशाली व तत्कालीन अत्याधुनिक उपकरणों से लैस होने वाले मुस्लिम आक्रान्ता जहीरुद्दीन मुहम्मद बाबर को इतना अधिक संघर्ष कतई न करना पड़ता। दूसरी तरफ यह भी कहा जा सकता है कि मेवाड़ में यदि आन्तरिक द्वन्द्व न होता और पृथ्वीराज, जयमल, सांगा आदि राजपूत वीर मिलकर एकजुट होकर विरोध में मैदान में उतरते तो आज भारत का इतिहास कुछ दूसरा ही होता। राजपूतों की वीरता की गाथाओं से सम्पूर्ण इतिहास भरा रहता।

इन तथ्यों से यह बात भी निश्चयेन सिद्ध होती है और भविष्य के लिए हम शोधकर्ताओं के माध्यम से लोगों को आगाज करती है कि जिन गलतियों को इतिहास के पन्नों में अंकित किया गया है और जिन

गलतियों से इतिहास ही बलद गया उनकी दोबारा पुनरावृत्ति न हो सके तभी स्वर्णिम भविष्य और सुनहरे भारत का सपना सच हो सकता है।

मेवाड़ की वाह्य स्थिति (दशा)

मेवाड़ राज्य की तत्कालीन आन्तरिक स्थिति का फायदा उठाने के लिए तमाम वाह्य शक्तियाँ अपना भाग्य और भविष्य तलाशने लगीं। वाह्य शक्तियों को मजबूती देने में पितृघाती ऊदा जैसे तमाम लोगों का योगदान अधिक रहा है।

रायमल की वृद्धावस्था के समय अरावली पर्वत पर बसे गोदवार में जंगली मीनों का उपद्रव तीव्र हो गया और वहाँ के निवासियों के समक्ष अनेकों संकट मुँह बाये खड़े थे। गोदवार की राजधानी नादौल में थी।[23] इस संकट (मीनों के) से उबारने में रायमल के पुत्र पृथ्वीराज ने राणा का सहयोग किया। इसने मीनों का दमन कर उनके राजा को भी मार डाला।[24]

पृथ्वीराज ने तोड़ांतक के अफगानों से भी युद्ध किया। अपने पाँच सौ सवार सैनिकों के साथ पृथ्वीराज तोड़ांतक की ओर चला और मोहर्रम के अवसर पर तोड़ांतक के बादशाह को बाण से मार डाला। यह राज्य शूरथान राव को पुनः दिलाया और शर्त के अनुसार शूरथान राव की रूपवती पुत्री ताराबाई से इसका विवाह हो गया।

सूरजमल और सारंगदेव ने मिलकर मालवा के बादशाह से सहायता लेकर मेवाड़ के दक्षिणी इलाकों पर आक्रमण किया।[25] रायमल की बुढ़ापे की अवस्था के चलते वे निराश हो गये तभी एक हजार सैनिकों के साथ

पृथ्वीराज के युद्धभूमि में आ जाने से युद्ध का रुख बदल गया। पृथ्वीराज की मार से बादशाह की फौज के बहुत से आदमी जख्मी हो गये। सूरजमल भी जख्मी हो गया लेकिन इसकी महत्वाकांक्षा मेवाड़ की गद्दी को प्राप्त करने के लिए अभी भी जागृत थी अन्ततः इसके सारे प्रयास विफल हो गये और सांगा के आते ही ये सभी छिटपुट विद्रोही चूहे की भांति भीतर हो गये।

मालवा और गुजरात के बादशाह ने भी रायमल के काल में अनेकों बार विफल प्रयास किया, जिसके परिणामस्वरूप मेवाड़ की उन्नति में बाधा बनी रही। मेवाड़ राज्य में उतार–चढ़ाव की स्थिति बनने से कोई विशेष उत्कृष्ट कार्य सम्पन्न नहीं हो पाया। मालवा के बादशाह महमूद खिलजी और गुजरात का कुतुबशाह प्रतापी शासक कुम्भा के काल से ही षड्यन्त्रों की रचना कर युद्ध कर चुके थे।[26] वे यथोचित क्षति भी अपने राज्यों को पहुंचा चुके थे लेकिन इसके बावजूद उनका संघर्ष रायमल के समय तक भी जारी रहा। सांगा का समय आते ही ऐसे लोग स्वतः ही दब गये और सिर उठाने की हिम्मत भी न जुटा पाये।

मेवाड़ के सिंहासन के लिए उत्तराधिकार संघर्ष व परिणाम

रायमल के शासन काल में ही मेवाड़ की गद्दी प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा इनके पुत्रों में व ऊदा के पुत्र सूरजमल में तीव्र रूप से जागृत हो उठी थी। जबकि अभी रायमल शासन सत्ता में बने हुए थे।। सिंहासन के लिए पुत्रों में जो आपसी द्वन्द्व छिड़ा हुआ था और जो दिनों दिन प्रबल हो रहा था इसके लिए उत्तरदायी रायमल को ही मानना

उचित प्रतीत होता है। वास्तव में जब तक रायमल सत्ता में थे तब तक तो गद्दी के लिए युद्ध होना मूर्खतापूर्ण निष्प्रयोजन ही लगता है और यदि परिस्थितियाँ प्रतिकूल हो रही थीं तो इसमें रायमल को एक पथप्रदर्शक की भाँति निश्चल होकर पुत्रों की योग्यता का मूल्यांकन करते हुए बाबर की भांति अपने जीवनकाल में ही उत्तराधिकारी घोषित कर देना चाहिए था। बाबर ने भी दूरदर्शिता से उत्तराधिकार के संघर्ष को भवष्यि में दुष्कर देखते हुए हूमायूँ को उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था, जिसका वर्णन उसने अपनी आत्मकथा तुजुक–ए–बाबरी में किया है।[27]

उत्तराधिकारी को घोषित करके बाबर ने जिस योग्यता और दूरदर्शिता का परिचय दिया था उसी का यह परिणाम था कि मुगलों का शासन दीर्घकाल तक बना रहा जबकि राजपूतों जैसी वीरता, साहस व योग्यता मुगलों में दर्शनीय नहीं होती है। मुगलों की अधिकतर विजयों का कारण कूटनीतिक चाल व परस्पर एकता की भावना ही रही है। वास्तव में यदि रायमल ने भी अपनी मृत्यु के बाद शासन को संभालने के लिए किसी योग्य उत्तराधिकारी को घोषित कर देते तो जिन परिस्थितियों का सामना उन्हें करना पड़ा और जिनसे वह हताश, निराश होकर असमय में ही काल के गाल में समा गये शायद इससे बचकर वह दीर्घकाल तक जीवित रहते। उत्तराधिकार के संघर्ष में अपनी विशेष योग्यता व साहस का परिचय देने वाले पुत्रों में एकता की भावना रही होती तो कुशल, योग्य तथा वीरता की भावना से परिपूर्ण राणा संग्राम सिंह को पराजित करने वाले का इस धरा पर नामोनिशान तक नहीं आता।

परिणाम

उत्तराधिकार के संघर्ष का यह परिणाम निकला कि रायमल के तीनों योग्य पुत्र अलग–अलग छिन्न–भिन्न दशा में हो गए। जयमल अल्पायु में ही ताराबाई से विवाह करने के सन्दर्भ में मौत की गोद में सो गया। पृथ्वीराज जो अपनी वीरता का परिचय रायमल के साथ कई युद्धों में दे चुका था वह भी बहन के घर से आते समय विषयुक्त लड्डू खाने से इस संसार सागर से विदा हो गया। वर्तमान में सांगा ही गद्दी के लिए यथेष्ट साबित हुए। यही नहीं सांगा भी भाइयों के साथ युद्ध करते हुए अपनी एक आँख खो चुके थे। निष्पक्ष रूप से यदि उत्तराधिकार के युद्ध का अवलोकन किया जाय तो निश्चय ही यह लगता है कि रायमल को निःसंकोच अपनी मृत्यु के बाद सिंहासनासीन होने के लिए अपने तीनों पुत्रों की योग्यता पहचानकर उन्हें सिंहासन का उत्तराधिकारी अपने जीवनकल में ही कर देना था। रायमल के पुत्रों में उत्तराधिकार का संघर्ष ही भविष्य में मुगलों के आगमन का सूचक बन चुका था। आन्तरिक सत्ता यदि मजबूत रही होती तो कोई भी वाह्य सत्ता अपना स्थान न बना पाती। यह भी कहा जा सकता है कि राणा संग्राम सिंह यदि गद्दी पर न बैठे होते तो 1527 ई0 में होने वाले खानवा के युद्ध में राजपूतों को जो पराजय का मुँह ताकना पड़ा वह दो दशक पहले ही सम्भव हो जाता। राणा संग्राम सिंह की वीरता व युद्ध कला–कौशल से आक्रान्ता बाबर व उसकी सेना भी विचलित हो गई थी। यहाँ तक कि उसके सैनिक निराश होकर लौट जाना चाहते थे तो उसी समय बाबर ने एक आक्रमक भाषण दिया था

जिसका वर्णन उसने अपनी आत्मकथा बाबरनामा में किया है।[28] उसने यह भी स्वीकार किया है कि राणा सांगा एक कुशल, योग्य, वीर व साहसी नेता था उसमें नेतृत्वकर्ता के सारे गुण विद्यमान थे।

रायमल की मृत्यु के समय मेवाड़ की समीक्षा

महाराणा कुम्भा के स्वर्णिम काल के बाद पितृहन्ता ऊदा ने जो विषम परिस्थितियाँ मेवाड़ में उत्पन्न कर दी उसका मेवाड़ में ही नहीं अपितु समूचे भारतवर्ष में दुष्प्रभाव हुआ। रायमल के गद्दी पर बैठने के उपरान्त यद्यपि विषमताएं फैली हुई थीं लेकिन उसके बावजूद सहयोग से उनका यथासम्भव निवारण हुआ।

रायमल के अन्तिम दिन कष्ट में व्यतीत हुए, सर्वप्रथम उसके कष्ट और दुःख का प्रमुख कारण स्वयं उसके अपने पुत्र ही साबित हुए। पुत्रों में संघर्ष के बाद उनकी मृत्यु भी रायमल को आन्तरिक रूप से खोखला बना रही थी। पुत्रों में मतभिन्नता फैलाने वाला सूरजमल भी गद्दी के लिए दूर से अपनी निगाह गड़ाए बैठा था।

इन सभी विषम परिस्थितियों को देखकर पड़ोसी राज्य भी मेवाड़ को ललचायी दृष्टि से देखने लगे। रायमल के अन्तिम दिनों में परिस्थितियाँ दिनोंदिन प्रतिकूल हो रही थी, मेवाड़ में अब लोगों की सारी आकांक्षाएं, इच्छाएं, निराशा में बदल रही थी। पर योग्य नेतृत्वकर्ता राणा संग्रामसिंह के आने से एक नये उत्साह का संचार लोगों में हो गया। राणा संग्राम सिंह एक ऐसे नेतृत्वकर्ता थे जिसमें देश की रक्षा का भाव सर्वोपरि था।

उनके गुणों के कारण ही राजपूतों के अतिरिक्त अन्य जातियाँ भी उनका साथ दे रही थीं।

रायमल अपने अन्तिम दिनों में पुत्र पृथ्वीराज को फिर से पाकर मन में आशाएं जागृत की थीं लेकिन बहनोई के द्वारा उसके भी मारे जाने की सूचना पाकर वह टूट गये अब उनके समक्ष मेवाड़ के भविष्य के लिए अंधेरा ही दिखाई देने लगा लेकिन राणा सांगा के 1509 ई0 में गद्दी पर बैठने के बाद मेवाड़ में एकबार फिर उज्ज्वल भविष्य का सपना लोगों को दिखाई देने लगा। छोटी–छोटी शक्तियाँ उनके तेज और आभा के सामने स्वतः ही बुझ गयीं या फिर फीकी पड़ गयी। राणा सांगा के बारे में निश्चयेन कहा जा सकता है कि वह एक ऐसे तूफानी थे जो सामान्य हवाओं के महत्व को समाप्त कर अपने वेग में शामिल कर ले, जिसमें अपनी इच्छा से न आने वाली हवायें भी मजबूर होकर सम्मिलित हो जाय और तूफानी वेगों को और भी तीव्र व प्रबल तथा प्रलयकारी बना दे। कहा जा सकता है कि रायमल ने अन्तिम दिनों में जो भी खोया था उससे कई गुना बढ़कर सांगा ने पा लिया।

सन्दर्भ–ग्रन्थ सूची

1. राजस्थान का इतिहास, अध्याय 05, पृष्ठ 149
2. शिक्षा मनोविज्ञान, अध्याय 06, पृष्ठ 101
3. टाड लिखित राजस्थान का इतिहास, 17वां परिच्छेद, पृष्ठ 172
4. वहीं पर।
5. टाड लिखित राजस्थान का इतिहास, 17वां परिच्छेद, पृष्ठ 171

6. वहीं पर।

7. दिल्ली सुल्तनत, राजस्थान पृष्ठ 69

8. राजस्थान का इतिहास, अध्याय 5, पृष्ठ 148

9. वहीं पर।

10. दिल्ली सुल्तनत, राजस्थान पृष्ठ 67

11. दिल्ली सुल्तनत, राजस्थान पृष्ठ 83

12. दिल्ली सुल्तान, मालवा, पृष्ठ 172

13. मध्यकालीन भारत, अध्याय 06, पृष्ठ 241

14. वहीं पर।

15. वहीं पर।

16. मध्यकालीन भारत, अध्याय 06, पृष्ठ 242

17. मध्यकालीन भारत– अध्याय 07, पृष्ठ 285

18. टॉड लिखित राजस्थान का इतिहास, 17वां परिच्छेद, पृष्ठ 170

19. राजपूताने के हृदय में अवस्थित मेवाड़ राज्य समस्त राजपूत राजाओं को स्वाधीनता की शास्वत प्रेरणा प्रदान कर सकता था। अपनी उस गौरवशाली परम्परा, अतीतकालीन इतिहास, उच्च सामाजिक सम्मान तथा महान् उपलब्धियों के कारण मेवाड़ वास्तव में राजपूताने का सर्वप्रमुख राज्य था।

20. वह पथ क्या पथिक कुशलता क्या, जिस पथ पर बिखरे शूल न हों,
नाविक की धैर्य परीक्षा क्या, जब धारायें प्रतिकूल न हों।

–जयशंकर प्रसाद

21. टाड लिखित राजस्थान का इतिहास, 17वां परिच्छेद, पृष्ठ 172

22. जहाँ सुमति तँह सम्पति नाना, जहाँ कुमति तहाँ विपति निधाना।

—राम चचरित मानस, सु0का0 दोहा सं0 40 पृष्ठ 735

23. टाड लिखित राजस्थान का इतिहास, 18वां परिच्छेद, पृष्ठ 175

24. टाड लिखित राजस्थान का इतिहास, 17वां परिच्छेद, पृष्ठ 171

25. भीलों के यहाँ नौकरी करने वाले राजपूतों को भड़काकर पृथ्वीराज ने मीनों के राजा को मार डाला। मीनों का राज्य सद्दा नामके सोलंकी को पृथ्वीराज ने सौंप दिया।

26. टाड लिखित राजस्थान का इतिहास, 17वां परिच्छेद, पृष्ठ 173

27. भारत की प्रसिद्ध लड़ाइयाँ, 11वां परिच्छेद, पृष्ठ 197

28. 1. ''हुमायूँ तुम अपने भाईयों में श्रेष्ठ हो, अतः कयामत के दिन भी भाइयों का साथ मत छोड़ना।''

    2. ''मेरी मृत्यु के बाद हुमायूँ ही राज्य का अधिकारी होगा।''

29. 1527 का बाबर का आक्रामक भाषण— ''मेरे साथी सरदारों, क्या तुम जानते हो कि हमारे और हमारी जन्मभूमि, हमारी सुपरिचित नगरी के मध्य कुछ महीनों की यात्रा है ? यदि हमारा पक्ष पराजित होता है (परमात्मा इस कुघड़ी से रक्षा करे) तो हमारी क्या दशा होगी ? कहाँ हमारी जन्मभूमि होगी ? कहाँ हमारा नगर होगा ? हमें अपरिचितों और विदेशियों से जूझना है। लेकिन हर एक आदमी याद रखे कि जो कोई भी इस संसार में आता है उसका विनाश अवश्य होता है। परमेश्वर ही अविनाशी और अविचल है जिसने जीवन के सुख और ऐश्वर्य का भोग किया है, उसको अन्त में मृत्यु का वरण करना

पड़ेगा। कलंकित नाम के साथ जीवित रहने की अपेक्षा शान के साथ प्राण दे देना अधिक अच्छी बात है। अगर मैं शान के साथ मरता हूँ तो यह अधिक अच्छा है। मुझे प्रतिष्ठा छोड़ जाने दो, क्योंकि मेरा शरीर वास्तव में मौत से बचकर नहीं जा सकता। सर्वशक्तिमान परमेश्वर ने हमारे निमित्त उस भाग्य की स्थापना की है और हमारे सम्मुख यह उत्कृष्ट भवितव्यता रख दी है कि यदि हमारी हार होती है तो हम शहीदों की तरह मरेंगे और यदि हम विजयी होते हैं तो समझ लो हमने उस परमात्मा के पवित्र उद्देश्य पर विजय प्राप्त कर ली। इसलिए उस सर्वशक्तिमान के नाम पर हमें शपथ ग्रहण करनी चाहिए कि ऐसी शानदार मृत्यु से मुख नहीं मोड़ेंगे और जब तक हमारी आत्माएं हमारे शरीर से पृथक नहीं हैं, हमारे शरीर संघर्ष के इन खतरों से पृथक नहीं होंगे।'' , मुगलकालीन भारत, अध्याय 02, पृष्ठ 23।

****

तृतीय अध्याय

राणा सांगा का उत्कर्ष, अजमेर और चाकसू से सम्बन्ध

तृतीय अध्याय

राणा सांगा का उत्कर्ष काल उनका अजमेर और चाकसू से सम्बन्ध

उत्तर भारत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर यदि प्रकाश डाल कर अध्ययन किया जाय तब एक प्रधान तथ्य स्पष्ट हो चलता है कि उत्तर भारत के अन्तर्गत राजपूतों ने अपने बाहुबल के चलते जिन–जिन क्षेत्रों को अपने अधिकार में रख लिया था बाद में वे क्षेत्र उन्हीं के नाम से जाने गए थे। अर्थात् राजस्थान तो राजपूतों = राजकुमारों का स्थान हो गया। उसे राजकुमारों के निवास स्थान के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त हो चली थी। उस राजस्थान में दो[1] प्रकार के राज्य उस समय हुआ करते थे। कुछ पर तो किसी का शासन अथवा किसी का दबाव नहीं था। उस प्रकार के राज्य स्वतंत्र राज्य थे और कुछ राज्य स्वतंत्र न होकर दूसरे के निर्देशों पर संचालित थे उस प्रकार के राज्यों को अर्धस्वतन्त्र नाम प्रदान किया गया था। उस प्रकार के राज्यों के नाम क्रमशः मरु, मद, जंगल देश, अजयमेरु, अर्बुद, मेवाड़, बागड़ देवलिया और ढुंढार आदि थे। क्रमशः होने वाली प्रक्रियाओं के फलस्वरूप ये पूर्वोक्त इकाइयाँ अपने स्वतन्त्र अस्तित्व को प्राप्त अवश्य थीं फिर भी यह सभी इकाइयाँ दक्षिण, उत्तर पूर्व और पूर्व में दिल्ली साम्राज्य, दक्षिण पश्चिम में मालवा, दक्षिण में गुजरात और पश्चिम में उच्छदीपालपुर और सुल्तान से घिरे रहे। प्राकृतिक दृष्टि से राजस्थान की आकृति ऊबड़–खाबड़ और समचतुर्भुजाकार रूप में रही उस के कारण क भौगोलिक एकता न होकर अनेक प्रकार की विभिन्नताओं वाला राजस्थान था। राजस्थान में कहीं पर पर्वत, कहीं पर पठार, कहीं पर

रेगिस्तान और कहीं पर उपजाऊ समतल मैदान तथा दक्षिण पश्चिम के समतल पठार के रूप वाला राजस्थान रहा। उसी के दक्षिणी पश्चिमी ढाल की नदियों के द्वारा बने राजस्थान के आबाद और उपजाऊ भाग भी प्रमुख रहे।

इस प्रकार की भौगोलिक विविधताओं ने राजस्थान की राजनैतिक सीमायें और बस्तियों को निश्चित किया है। उपरिलिखित परिवेश ने वहाँ के निवासियों के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक, शैक्षिक और आध्यात्मिक परिस्थितियों को आज भी प्रायः अलग कर रखा है। पर्वतीय भागों ने किसी भी प्रकार के होने वाले आक्रमण से वहाँ के निवासियों को जहाँ सुरक्षा प्रदान कर रखा है। उसी राजस्थान में नदियों ने उपजाऊ भाग भी वहाँ के लोगों को प्रदान किया है। जंगलों ने भी आक्रमण से भयातुरों को बचाव करने की दृष्टि से शरण भी प्रदान कर रखा है। इस प्रकार उस क्षेत्र के प्राकृतिक स्वरूप ने दृढ़संकल्प, अदम्य साहस, निरन्तर क्रियाशीलता और गम्भीर प्रवृत्ति का प्रादुर्भाव वहाँ के निवासियों में भर रखा है। यही कारण था कि वहाँ के निवासियों ने झुकना नहीं अपितु डटकर मुकाबला करने का ही हर समय मन बनाया है। अपनी अपनी मातृभमि की सुरक्षा करना उनके रोम–रोम समाया था और वे समग्र हिन्दुस्तान के प्रति भी समर्पित रूप वाले रहे।

भीषण कठिनाइयों के चलते वे भी वहाँ के स्वभाव में डटकर जूझना ही सदा बना रहा। मातृभूमि की सुरक्षा की भावना राजस्थान की स्वतंत्रता और उसके इतिहास का सत्य रूप हमेशा से रहा है। अनेक प्रकार की विभिन्नताओं ने जहाँ उस क्षेत्र को दुर्गम बना रखा था वहीं पर बाहर की

ओर से होने वाले अनेक आक्रमणकर्ताओं ने या तो हिम्मत हार लिया और यदि आक्रमण किया भी तो वहाँ के सत्ता से पराजित होते रहे और राजस्थान का पवित्र इतिहास प्राचीन काल से सुरक्षित ही रहा है। इस बात का इतिहास साक्षी रहा है कि कोई भी आक्रमणकारी 16वीं शताब्दी के आरम्भ तक राजस्थान को अपने वश में कभी नहीं कर सका था। प्रचुर मात्रा में वनस्पति का होना राजस्थान के सांस्कृतिक समुन्नयन में बहुत योगदान किया है।

16वीं शताब्दी के अन्त तक यद्यपि दिल्ली की सल्तनत अधिक रूप से संकुचित हो चली थी। तत्कालीन प्रान्तीय राज्यपालों ने लाभ लेते हुए अपने–अपने क्षेत्रीय संसाधनों को संगठित कर सवतन्त्र रूप धारण कर लिया था। एक समय ऐसा आ गया था कि एक के पश्चात् दूसरे प्रान्त तत्कालीन दिल्ली सुल्तनत से पृथक होते चले ही गए थे। उस अलगाव और एकीकरण की दिशा में अनेक गुहिलोत, चौहान, राठौर, कछवाहा तथा हाड़ा आदि अग्रगण्य रूप में आज के दिन भी स्वीकार किए जाते रहे हैं।

उस समय राजस्थान के क्षेत्रों में जो स्वाभिमानी और प्रभुत्व की शक्ति से संपन्न थे उन्होंने उस समय दिल्ली, मालवा और गुजरात के विरुद्ध अपने–अपने बिगुल बजा दिये थे। इतना सब होते हुए भी समग्र राजस्थान के ऊपर एक राजवंश अथवा साम्राज्य स्थापित करने वाली कोई भी एक शक्ति उस समय प्रकट नहीं हुई। उसका परिणाम वह हुआ कि अखण्ड राजस्थान के साम्राज्य की स्थापना तो नहीं हो पायी थी फिर भी राणा कुम्भा, राय जोधा तथा राणा सांगा जैसे महापुरुषों ने अपने शक्तिशाली राज्यों की स्वतन्त्र स्थापना कर लिये थे और उनके

अपने–अपने शासन हेतु स्वतन्त्र राज्य हो गये थे। उस प्रकार के महापुरुषों ने केवल अपने राज्यों पर शासन मात्र ही नहीं किया था अपितु उनकी अपनी शक्तियाँ अदम्य थीं, अपार साहस था, डटकर मुकाबला करने की क्षमता रखते थे, स्वप्न में भी पीठ पीछे करने के भाव उनके मन में घुसने का अवसर नहीं पा सके थे। अपने राज्य की प्रभुसत्ता के साथ अखण्ड हिन्दू राष्ट्र बनाने की कोशिश में लगे रहते थे। उसका प्रभाव हुआ कि वह अपने राज्य में कला, साहित्य और सांस्कृतिक उत्थान का प्रयास सदा करते रहे और हर समय सावधान बने रहे जिससे कि पड़ोसी किसी मुगल शक्ति को उन पर विजय प्राप्त करने का अवसर प्राप्त करना तो दूर रहा किन्तु उन स्वतन्त्र शासकों के साथ ऊपरी दृष्टि से तालमेल बनाए रखते थे जबकि राणा कुम्भा और राणा सांगा जैसे शूरवीर शासक उन मुगल शासकों की आन्तरिक भावनाओं की परख बराबर करते रहे और कभी मुगल शासकों के समक्ष उन्होंने विषम से विषम परिस्थिति आने पर भी न तो असावधनी व्यक्ति किया और न ही मुगल शासकों के समक्ष जाकर अपने घुटने ही टेकने का मन बनाया। यद्यपि दोनो पक्षों में एक दूसरे को परास्त करने और स्वस्वराज्य के विस्तार की प्रवृत्ति की कोई सीमा नही थी किन्तु राणा सांगा जैसे शूर अपने अनुसार अपने राज्य का संचालन करते हुए मुगल शासकों के अन्दर भी अपना भीषण दबदबा बनाये रखते थे।

1508 ई0 में महारणा रायमल की मृत्यु हो गयी थी और मेवाड़ का भविष्य संग्राम सिंह (राणा सांगा) के हाथों में जब आ गया तब राणा सांगा के लिए मेवाड़ का सिंहासन कांटों का ताज साबित हुआ। यद्यपि राणा

सांगा को मेवाड़ का सिंहासन बहुत कठिनाइयों से जूझते हुए प्राप्त हुआ था फिर भी वह सिंहासन उस समय राणा सांगा के लिए अनेक चुनौतियों से भरा पड़ा था। कोई भी राज्य का प्राप्त करना जितना महत्वपूर्ण होता है तो उस राज्य की सुरक्षा करना उससे भी अधिक महत्व का हुआ करता है। किसी भी नये शासक का अपने शासन के अन्तर्गत अपनी पकड़ बनाना ही बहुत कठिन कार्य हुआ करता है और यदि वाह्य शत्रु भी उसी पर अपनी कुदृष्टि लगा रखा हो तो राज्य की सुरक्षा करना बहुत ही कठिन से कठिन हुआ करता है। राणा सांगा उसी प्रकार की विषम परिस्थिति के चलते हुए मेवाड़ के शासन को संभालने का अवसर प्राप्त किये थे। राज्य की प्राप्ति की निश्चयता को निर्धारित करने के समय राणा सांगा पर वह विपत्ति आयी कि उन्हीं के भाई पृथ्वीराज ने राणा सांगा के ऊपर तलवार का तीखा प्रहार किया था। बहुत प्रकार से बचाने का प्रयास करने पर भी उसी समय राणा सांगा की एक आँख उस भाई के भीषण आक्रमण का जहाँ पर शिकार हो गयी थी वहीं राणा सांगा को मेवाड़ का सिंहासन प्राप्त करके निश्चित होकर के बैठने का अवसर नहीं प्राप्त हुआ। मुगल शासक बाबर को राणा सांगा का भय बराबर सताया करता था और राणा सांगा भी सब प्रकार से आन्तरिक एकता को भी स्थापित किये थे और बाहरी शत्रुओं पर भी अपनी पैनी दृष्टि लगाकर बहुत कशुलता के साथ मेवाड़ का शासन संचालित कर रहे थे। इतिहासविद्[2] की दृष्टि मे राणा सांगा की बहुत प्रतिष्ठा थी। राणा सांगा ने जब मेवाड़ के शासन की बागडोर संभाली थी तो उन्हें अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना

करना पड़ा। आन्तरिक स्थिति मजबूत करने के लिए उन्हें अनेक प्रकार के संघर्ष को करना पड़ा था। उस समय मेवाड़ राज्य किसी भी सुयोग्य राजा के अभाव में पड़कर अनिश्चितता के माहौल में चारों ओर से अस्त व्यस्त था। सैन्य व्यवस्था उनके अनुकूल नहीं थी। वित्तीय संसाधन राज्य की कलह के चलते चरमरा चुके थे। उनकी स्थिति बहुत खराब हो चुकी थी।

राणा सांगा ने जब मेवाड़ की शासन सत्ता संभाली तब राणा सांगा ने देखा कि उस समय मेवाड़ की स्थिति मात्र आन्तरिक रूप से ही नहीं चरमराई हुई थी अपितु उस समय सम्पूर्ण मेवाड़ चारों ओर से चुस्त और चालाक शत्रुओं से पूर्णतः घिरा हुआ था। उस समय राणा सांगा के तीन प्रबल विरोधी थे–

1. दिल्ली सुल्तान इब्राहीम लोदी।
2. गुजारात के सुल्तान मुजफ्फर द्वितीय।
3. मालवा के सुल्तान महमूद द्वितीय।

महाराणा सांगा ने अलग अलग उपरलिखित तीनों शक्तियों के साथ डटकर मुकाबला किया था। मुकाबला करने के बाद तीनों राणा सांगा के द्वारा पराजित हुए और आखिरकार राणा सांगा के सामने उन सबको झुकना ही पड़ा था। महाराणा सांगा का सबसे अच्छा पक्ष यह रहता था कि जब उनका शत्रु हारा तो उस शत्रु को राणा सांगा ने पराजित करने के बाद गिरफ्तार तो कर लिया किन्तु उसके सम्मान का ध्यान रखते हुए राणा सांगा ने उस अपने शत्रु को भी ससम्मान अपनी गिरफ्त से आजाद कर दिया था। राणा सांगा ने 1519 ई0 में जब मालवा के सुल्तान द्वितीय से युद्ध किया तो उन्हें पकड़कर चित्तौड़ में 6 महीने तक बन्दी बना कर

रखा और उसके बाद राणा सांगा ने उसे एक हजार घोड़ों के साथ उसके घर भेज दिया। उसे किसी प्रकार का नुकसान नहीं पहुँचाया। सम्मानपूर्वक शत्रु को छोड़ देना राणा सांगा का एक महत्वपूर्ण और उच्च आदर्शों की स्थापना[3] करना था।

राणा सांगा ने दिल्ली और मालवा के सुल्तानों के साथ एक या दो बार नहीं बल्कि 18 लड़ाइयाँ लड़ी थी किन्तु वे सुल्तान कभी राणा सांगा के पराजित नहीं कर सके थे। यद्यपि इब्राहिम लोदी की प्रत्येक बार युद्ध में राणा सांगा के आगे मुँह की खानी पड़ी थी फिर भी उसने लड़ने के लिए अपनी सेना को अगली बार भी मेवाड़ की ओर कूच करा दिया। यद्यपि सेना विशाल थी और लड़ाई लड़ी गयी थी किन्तु राणा सांगा का अदम्य साहस ही था कि उस विशाल सेना को भी राणा सांगा ने अपने शौर्य के चलते और अपने सैनिकों के कुशल सहयोग से पराजित कर दिया। इस प्रकार उस दुःसाहस के चलते भी महाराणा सांगा ने लोदी की सेना को बहुत नुकसान के साथ वापस जाने के लिए विवश कर दिया था। इसका उल्लेख डी.आर. मंकेकर ने करते हुए इब्राहीम लोदी के पक्ष को कमजोर बताया और मेवाड़ के भविष्य महाराणा सांगा के शौर्य का वास्तविक चित्रण करते हुए इब्राहिम लोदी के द्वारा किये गये उस घृणित दुःसाहस और महाराणा सांगा के द्वारा किये गये शौर्य के प्रदर्शन का उल्लेख किया है।

इस प्रकार अनेक बार प्रकट और गुप्त रूप से प्रयास जारी रखने पर भी इब्राहिम लोदी महाराणा सांगा से कभी उबर नहीं पाया। प्रत्येक बार

महाराणा सांगा के शौर्य के चलते उस दुःसाहसी इब्राहीम लोदी को आखिरकार अपनी पराजय का मुँख बार–बार देखना ही पड़ा था फिर भी वह महाराणा सांगा के शासन की ओर अपनी कुदृष्टि लगाने से बाज नहीं आ रहा था। उस बार की हार तो उसकी अप्रत्याशित[4] हार थी।

इस प्रकार अनेक बार (दो बार) महाराणा सांगा के साथ इब्राहीम लोदी की सेनाओं का भीषण युद्ध अवश्य हुआ किन्तु महाराणा सांगा थोड़ा सा भी विचलित नहीं हुए उन्होंने अपने अपार शौर्य का प्रदर्शन किया और अपनी एकजुट सेना के मनोबल बहुत उच्च होने और एक लक्ष्य होने के फलस्वरूप प्रत्येक बार राणा सांगा की विजय होती चली गयी और दूसरे पक्ष में यदि अन्वेषण की दृष्टि से विचार किया जाय तो यह तथ्य सामने आ जाता है कि इब्राहीम लोदी के पास भी यद्यपि बहुत बड़ी सेना थी। वह बार–बार राणा सांगा को जीत लेने के उद्देश्य से युद्ध की शुरुआत कर ही दिया करता था किन्तु इस प्रकार की मनमानी हरकतों के करते रहने पर भी इब्राहीम लोदी की राणा सांगा की सेना के सामने बहुत बुरी हार होती चली गयी थी। इतना ही नहीं इब्राहीम लोदी की राणा सांगा से वह कोई सामान्य पराजय नहीं थी अपितु सभी लड़ाइयों में महाराणा सांगा के सैनिकों ने इब्राहीम लोदी की सेना के छक्के छुड़ा ही दिए। उसके साथ–साथ इब्राहीम लोदी की उस प्रकार के युद्धों में अपार रूप से धन और जन की हानि हुई और उस भीषण युद्ध के चलते इब्राहीम लोदी फिर कभी महाराणा सांगा के साथ पुनः युद्ध करने की जुर्रत नहीं किया। इस प्रकार राणा सांगा की दूरदर्शिता और उनका अदम्य साहस ही उस प्रकार

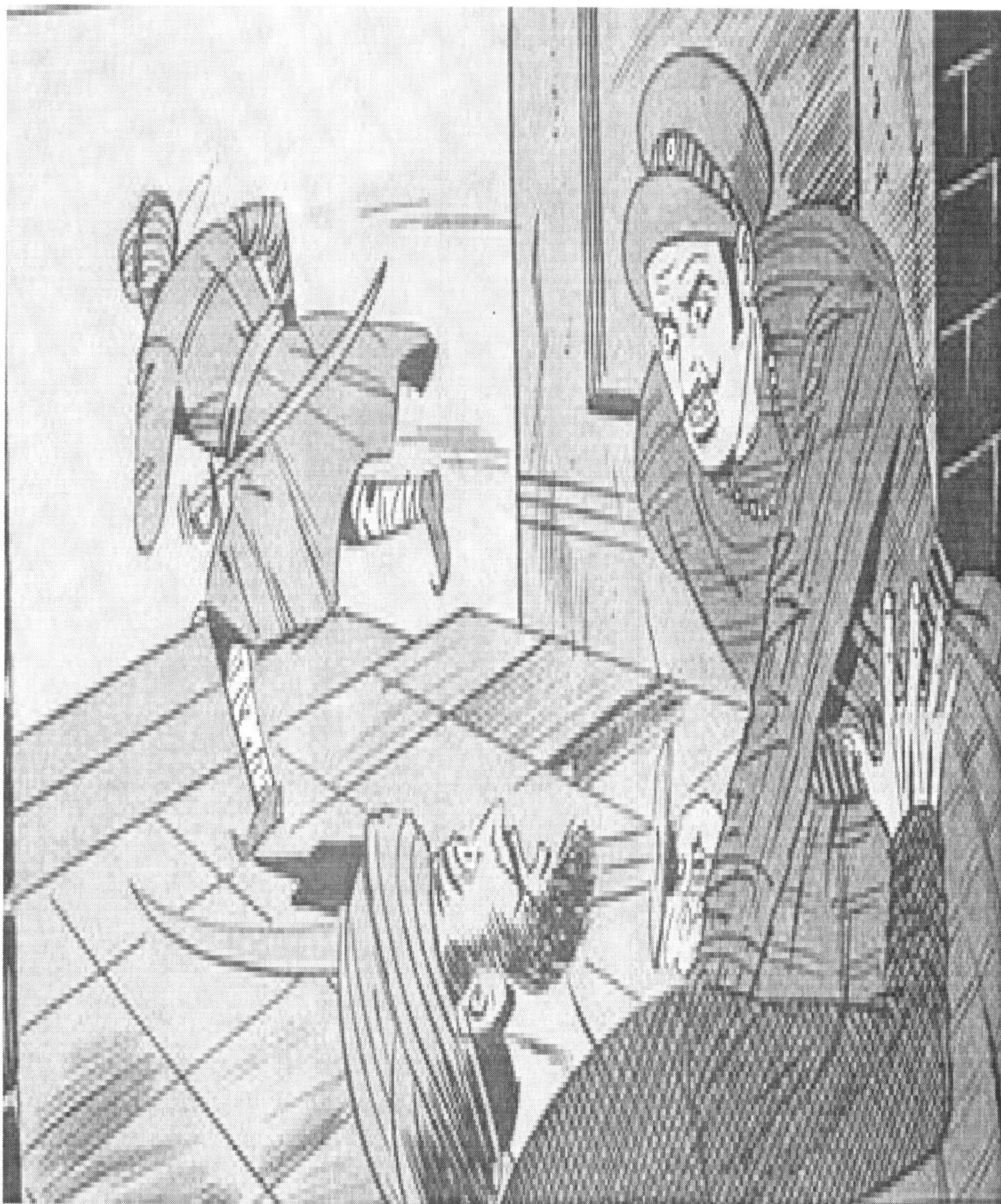
से था कि शत्रु उनके साथ अथवा समक्ष होने पर प्रायः हौंसले को गँवा बैठा करता था। इस प्रकार से राणा सांगा ने प्रत्येक युद्ध में अपने अदम्य साहस का ऐसा स्वरूप प्रस्तुत कर दिया था जो राजपूतानों के लिए आदर्श था।

राणा सांगा का उत्कर्ष

राणा संग्राम सिंह (राणा सांगा) ने बहुत संघर्ष को झेलते हुए मेवाड़ के सिंहासन को प्राप्त किया था। सांगा के समान कष्ट से सिंहासन प्राप्त करने वाले व्यक्ति बहुत ही कम मिलते हैं। सांगा के समान कष्ट से सिंहासन प्राप्त करने वाला व्यक्ति बहुत कम प्राप्त होता है। इसी के साथ एक तथ्य इसी क्रम में और भी चर्चा के योग्य है कि सांगा ने केवल अपने परिवार के सदस्य पृथ्वीराज और जयमल के साथ युद्ध किया अपितु लहूलुहान अवस्था में सांगा को अपने प्राण बचाने की दृष्टि से भाग जाना पड़ा जबकि सांगा पूरी तरह से घायल और अंग भंग हो चुके थे। उस अंग भंग और लहूलुहान होने का कारण यह था कि मेवाड़ के उत्तराधिकारी का निश्चय करने की दृष्टि से पृथ्वीराज, सांगा और उनके चाचा सूरजमल आपस में चर्चा कर ही रहे थे कि पृथ्वीराज ने उत्तराधिकारी का निर्णय करने की जिम्मेदारी अपने चाचा सूरजमल को दे दिया। सूरजमल ने पृथ्वीराज द्वारा अप्रत्याशित फैसला सांगा के पक्ष में दे दिया। उस फैसले के विरोध में पृथ्वीराज अपने को किसी भी प्रकार से सँभाल न सके और सांगा तथा पृथ्वीराज के बीच तलवारें भीषण रूप में चलनी आरम्भ हो गयीं। इस दृश्य का वर्णन कर्नल टोड[5] ने ज्वलन्त रूप में किया है। इसी

क्रम में यह भी कथनीय है कि उस प्रकार की भीषण लड़ाई करते करते पृथ्वीराज, सांगा और जयमल रुकने का नाम नहीं ले रहे थे। सांगा तो अकेले लड़ रहे थे किन्तु जयमल तो पृथ्वीराज की ओर से लड़ता हुआ सांगा को मार डालने का प्रयास कर रहा था। उस लड़ाई में सांगा को उतनी चोटें लग चुकी थीं कि खून बहते रहने के चलते सांगा की हालत बहुत खराब होती चली जा रही थी फिर भी किसी एक की तलवार थमने का नाम तक नहीं ले रही थी। उस प्रकार की भीषण लड़ाई करते तीनों भाई शिवान्ति नगर के पास जा पहुँचे। संयोग की ही बात थी कि वहाँ पर एक राजपूत जिसका नाम बीदा था, अपने हाथ में तलवार लिए एक बहुत अच्छे घोड़े पर चढ़ा हुआ उधर से गुजर रहा था। उसने देखा कि दो लोग एक के ऊपर जानलेवा हमला करते ही जा रहे थे और कुछ भी दया उन लोगों के मन में नहीं आ रही थी। वह राजपूत था और उस प्रकार का अत्याचार उससे देखा नहीं गया। उसने बार–बार उस युद्ध को रोक देने का खूब प्रयास किया किन्तु कोई सुन नहीं रहा था। पृथ्वीराज तो उस राजपूत की बात तक सुनने को तैयार नहीं था। उस समय वह बीदा नामका राजपूत आखिर कब तक व्यर्थ में प्रयास करता ? सारी घटनाएं उस राजकुमार को झकझोरती रहीं।

उस प्रकार की परिस्थिति के चलते फिर उस बीदा नामक राजपूत ने उस समय न तो चुप रहना अच्छा समझा और न ही वहाँ से चुपचाप चला जाना। उस भीषण परिस्थिति में राजपूत बीदा ने अपनी तलवार निकाल ली और राजपूतोचित परम्परा के अनुसार वह भी उस मैदान में उतर कर सांगा की तरफ से लड़ना प्रारम्भ कर दिया। उस राजपूत के साथ देने के



प्राण बचाकर निकलते महाराणा सांगा

फलस्वरूप सांगा भी उस समय दो हो गये थे फिर बहुत देर तक भीषण तलवारें चलने लगीं। बहुत समय तक तो पृथ्वीराज, जयमल की सांगा और बीदा के साथ लपलपाती तलवारें चलती रहीं। फिर जयमल उस लड़ाई में मार डाला गया। उसके कपड़े खून से लथपथ हो चुके थे। शरीर से खून रुकने का नाम नहीं ले रहा था। उस समय कुछ देर तक के लिए लड़ाई रुक गयी। उसी बीच बीदा राजपूत ने अपनत्व वश सांगा को संकेत किया। सांगा संकेत समझ गये और उस लड़ाई के मैदान से बाहर चले गये। उसका परिणाम यह हुआ कि उस समय युद्ध बन्द हो ही गया था और उस युद्ध का परिणाम वह हुआ कि उस युद्ध में एक भाई मार डाला गया और शेष दो भाई पृथ्वीराज और सांगा लगभग–लगभग मरणासन्न अवस्था को प्राप्त हो चले थे। राज्य के प्रायः सभी लोगों ने वह घटना और उसके क्रम को देखा फिर भी कोई किसी से कुछ कहने की हालत में नहीं रहा था। एक दूसरे का मुँह ताकते ही रह गये थे।

सांगा के कष्ट के दिन तब भी नहीं बीत पाये थे उन्हें भाग कर अपनी जान बचाने के लिए मारवाड़ में एक गड़रिया[6] के पास भी रह कर अपना समय व्यतीत[7] करना पड़ा था।

उपर्युक्त सांगा के ऊपर उपस्थित विपत्ति की चर्चा करने का मेरा उद्‌देश्य यह है कि इस गतिशील जगत् के अन्तर्गत प्राणियों के ऊपर विपत्ति का आकर धमक पड़ना स्वाभाविक प्रक्रिया है। हाँ इतना अवश्य है कि प्रायः सबको उन्नति करने का अवसर प्राप्त हुआ करता है। सम्पूर्ण जीवन भर किसी के ऊपर न तो सुख ही उपस्थित रहता है और न ही

किसी के जीवन में दुःख की परिस्थिति बनी रहती है। यह सुख और दुःख की दशा तो किसी चक्के की अरपंक्ति[8] के समान होती है जो ऊपर और नीचे की ओर अपनी स्वाभाविक चाल के अनुसार हुआ ही करती है। उस भाग्य की चाल पर किसी का भी कभी कोई वश किसी भी प्रकार से नहीं हुआ करता है।

जहाँ तक सांगा के विजय की बात है तो सांगा ने अपने समय में बहुत प्रकार के दुःखों को प्राप्त किए। सभी प्रकार के उपस्थित होने वाले दुःखों का और जीवन में आने वाली घातक परेशानियों का सांगा ने बिना किसी भी प्रकार की हिचकिचाहट के साथ मुकाबला करना उन्होंने जैसे सीख रखा था। वे कभी किसी भी परेशानी के चलते भी न तो हिम्मत हारे ओर न ही उन आई हुई परेशानियों के उपस्थित होने पर सांगा ने अपने घुटने टेके थे। साहस और पुरुषार्थ उनके रोम–रोम के अन्तर्गत अनिवार्य रूप से घर कर चुका था। इसी के साथ यह भी मेरे अनुसार विचारणीय है कि जिसका अदम्य साहस उन विपत्तियों के रहने पर बना रहा तो परिस्थिति का साधारणीकरण और अनुकूल भाग्य के हो जाने पर वह पुरुष अपने पुरुषार्थ, साहस, विचारशीलता और दुर्धर्षता में भी द्वितीय नहीं अपितु अद्वितीय और अभूतपूर्व व्यवहार करेगा और उन्नति के मार्ग के प्रशस्त अवश्य करने का मन सदैव बनाने में कोई भी कमी नहीं आने दे सकता है।

किसी के जीवन में आने वाले सुख की शोभा तो दुःख के अनुभव के पश्चात् ही हुआ करती है जिस प्रकार घने अन्धकार के पश्चात् दीपक का

दर्शन सुखकर हुआ करता है। वास्तव में सुख को भोगकर यदि किसी के पास विषम अवस्था आ जाती है तब वह व्यक्तित्व अपनी शरीर मात्र को धारण किए रहता है किन्तु वह मरा होकर जीवित रहता है। इस प्रकार के भाव व्यक्त करने का मेरा आशय यह है कि सांगा का जीवन ठीक इसी वर्णित क्रम के अनुसार पूरा का पूरा खरा उतरा हुआ परिलक्षित होता है। एक सामान्य जन को भी उस प्रकार की परिस्थिति झेलनी पड़ी हो उस प्रकार के उदाहरण बहुत ही कम इस संसार में पाये जाते हैं और राजवंश के अन्तर्गत इस प्रकार की घातक से घातक दशा आ जाय वह तो बहुत बड़े दुर्भाग्य के फल के रूप में स्वीकार करने योग्य तथ्य अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हो सकता है।

सांगा के साथ उसी प्रकार का सब हुआ। एक के बाद एक विपत्ति आती रही। अपनी सुरक्षा, जननीतियों के निर्धारण, राज्य एवं राष्ट्र प्रेम, हिन्दुओं के साथ मैत्री भाव, प्रजा का पालन और शत्रु पर पैनी निगाह रखना उसका परम लक्ष्य था। उनका अपना व्यक्तिगत स्वभाव था कि वे न केवल अपनी प्रजा मात्र के, न केवल अपने अनुयायियों के अपितु समूचे हिन्दुस्तार के उस प्रकार के प्रभावशाली नक्षत्र सिद्ध हुए जिनके आधार पर समूचे हिन्दुस्तान को गर्व था। सभी की निगाहें लगीं थीं कि देर अथवा सबेर सांगा के उस प्रकार के प्रयास के चलते निश्चित रूप में हिन्दुस्तान का इतिहास स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा और एक दिन उस प्रकार भी आ सकता है जब हिन्दुस्तान के ऊपर सांगा की विजय पताका अवश्य फहरायेगी।

रायमल के अन्तिम समय के लगभग मेवाड़ की हर प्रकार की स्थिति बहुत खराब हो चुकी थी। अपने ही समय में किसी सुयोग्य उत्तराधिकारी का न चुनना मेवाड़ के हित में बहुत कष्ट कारक रहा। राजकुल मं उस अनिश्चितता के चलते अन्तः कलह और आपसी विद्वेष की परिस्थिति उत्पन्न हो चुकी थी। मेरे विचार से आपसी कलह का एक कारण था कि रायमल बहुविवाह की प्रथा के पोषक थे। उन्होंने ग्यारह रानियों को रखा हुआ था, जिनके नाम इस प्रकार थेः–

1. Ratan Kanwar, daughter of Jhala Rajdhar
2. Raj Kanwar, daughter of Bisaji Rathor
3. Kumkum Kanwar, daughter of Ram Singh Rathor
4. Bir Kanwar, (Sringar Devi), daughter of Jodha Rathor (King of Marwar)
5. Sagat Devi, daughter of Dalpat Rathor
6. Indra Kanwar, daughter of Rao Maldeva Rathor (King of Marwar)
7. Mahtab Kanwar, daughter of Raja Lal Singh
8. Mahtab Kanwar, daughter of Jhala Bhan
9. Raj Kanwar, daughter of Deora Rao Gopji
10. Champa Kanwar, daughter of Deora Rao Lakhaji
11. Anand Kanwar, daughter of Rao Bajraji Rathor.

इस प्रकार के राज्य परिवार के अन्तर्गत किसी भी प्रकार के विचार और अन्तःकलह का होना बहुत स्वभाविक ही था। उन रानियों से अनेक सन्तानें उत्पन्न होती गयीं और उनके विचार भी अनेक प्रकार के होते गये। अनेक रानियों की सन्तान होने के नाते सभी राजपुत्र मेवाड़ के सिंहासन का अपने को प्रबल दावेदार के रूप में माना करते थे। कोई भी

राजपुत्र किसी से कुछ भी कम अपने को कभी मानने की दशा में नहीं हुआ। उस कलहात्मक दशा में जबकि राजघराना के अन्तर्गत ही अशान्ति रही तब समूचे राज्य के अन्तर्गत शान्त वातावरण की आशा करना संभव नहीं था। पृथ्वीराज से लेकर चौदहवें राजपुत्र बेनीदास तक राज सिंहासन के लिए लालायित हो चुके थे। इस प्रकार पारस्परिक कटुता के चलते सांगा ने अपने जीवन में बहुत कुछ खोया भी और बहुत कुछ पाया भी था। सांगा को मेवाड़ उस दशा में प्राप्त हुआ था जबकि उस मेवाड़ की हालत बहुत खराब हो चुकी थी। अपने भाइयों का सांगा को किसी प्रकार का सहयोग कभी प्राप्त नहीं हुआ।

महाराणा सांगा को अपने जीवन में प्रायः संघर्ष करते ही रहना पड़ा था। उसका परिणाम वह हुआ कि वह अन्य गतिविधियों की ओर अपना विशेष प्रकार का ध्यान नहीं लगा पाये थे। सैन्य व्यवस्था भी चरमरा चुकी थी। किसी एक देश के दूसरे देश के साथ सहयोग करने की प्रवृत्ति नहीं रह गयी थी। राज परिवार के आपसी कलह में लिप्त होने के कारण मेवाड़ की सामाजिक, आर्थिक, सैनिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा अन्य प्रकार की परिस्थितियाँ विपरीत हो चुकी थीं। सभी में बहुत बड़े परिवर्तन और सुधार की आवश्यकता परिलक्षित हो रही थी।

वास्तविकता हो वह थी कि मेवाड़ की सत्ता उस समय प्राप्त हुई जिस समय कि मेवाड़ बहुत ही सुधार और उन्नति के लिए कराह रहा था। आपसी कलह के चलते किसी प्रकार से राज्य के विकास की दिशा में कुछ नहीं किया जा सका था। राणा सांगा के प्राप्त उस राज्य की सीमायें धीरे धीरे संकुचित होती गई थीं। पड़ोसी राज्यों कि निगाहें हर प्रकार से

मेवाड़ के ऊपर लग चुकी थी। उस प्रकार विषम परिस्थिति के चलते मेवाड़ के उन्नति की बात तो दूर रही अपितु मेवाड़ का वह अस्तित्व जो राजपूतोचित रूप में प्रसिद्ध रहा था, बचा पाना बहुत कठिन हो रहा था। अभी तक सांगा अपने आन्तरिक शत्रु (भाइयों) की कुदृष्टि के शिकार थे। अब शासन–सत्ता संभालते ही मेवाड़ के इतर अन्य शासकों की दृष्टि में चुभने लगे थे। उन सभी ने राणा सांगा के शासन संभालने का समाचार सुनकर प्रायः किसी न किसी प्रकार से अनिष्ट करने का मन बना ही लिया था। अतः वह समय राणा सांगा के लिए अनेक प्रकार की चुनौतियों से भरा हुआ था। अतः उन विषम परिस्थितियों के रहते राणा सांगा को हर हालत में उन सभी प्रकार की चुनौतियों को स्वीकार करना ही था। राणा सांगा प्रभावशाली व्यक्तित्व के अत्यधिक धनी एवं कुशल योद्धा थे। उनमें बहुत अधिक रूप में उन्नति कर गुजरने की इच्छाशक्ति विद्यमान थी। वही शक्ति किसी भी प्रकार के कार्य अथवा परिवर्तन के प्रति सर्वथा ही उत्तरदायित्व का निर्वाह करती थी। सभी प्रकार की विषमताओं के रहने पर मेवाड़ से सम्बन्धित सभी चुनौतियों को केवल स्वीकार ही नहीं किया अपने इच्छा बल और अदम्य साहस के चलते राणा सांगा ने सब प्रकार से मेवाड़ को शक्ति से सम्पन्न बनाने का प्रयास किया।

राणा सांगा के राज्य की सत्ता के संभालने के समय मेवाड़ की दशा और दिशा दोनो ही बहुत दुष्प्रभावित हो चुकी थी। अपने ऊपर अनेकों प्रहारों को झेलते हुए राणा सांगा ने जब निर्वासन का समय इधर–उधर बिताया था तो उन्होंने अनेकानेक परेशानियों को झेला था। उतना ही नहीं जब महारणा रायमल के सामने मेवाड़ के उत्तराधिकारी का कोई विकल्प

नहीं प्राप्त हो रहा था। तो महाराणा दुःखी रहने लगे थे। उसी बीच उन्हे यह पता लग गया था कि उनके बहादुर पुत्र संग्राम सिंह का एक निर्वासित जीवन यापन करते हुए विद्यमान है। तब राजा रायमल ने संग्राम सिंह को अपने पास बुलाया और उनका राज्याभिषेक कर दिया था। इस प्रकार राणा रायमल के समक्ष उपस्थित रहा उत्तराधिकारी न होने का संकट तो टल गया। उसका समाधान एक सुयोग्य उत्तराधिकारी संग्राम सिंह के रूप में बहुत समय से प्रतीक्षा करने के बाद मिल गया किन्तु संग्राम सिंह समक्ष समूचे मेवाड़ के अस्तित्व का संकट आखिरकार उपस्थित हो ही गया था। अतः राणा सांगा की जिम्मेदारी बहुत बढ़ गई उन्हें मेवाड़ में शान्ति स्थापित करना था फिर राज्य के उत्कर्ष के लिए सभी प्रकार के प्रयास करने थे। अतः राणा सांगा को आन्तरिक रूप से जहाँ मेवाड़ की उन्नति करने की जिम्मेदारी थी वहीं पर मेवाड़ के बाहर भी अनेक प्रकार के संकट जो पहले उत्पन्न थे किन्तु सांगा के समय सिर उठा सकते थे, मेवाड़ राज्य को ध्वस्त करने की ताक में थे, आपस में एक दूसरे की आक्रमण करने की प्रतीक्षा में थे, को हमेशा के लिए निर्मूल करना और फिर उन्नति करना राणा सांगा के लिए बहुत जरूरी हो गया था। अतः राणा सांगा के राज्यारोहण के साथ ही उनके समक्ष दो प्रकार की परिस्थितियाँ विकराल रूप धारण कर चुकी थीं, जिन्हें अधोलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है–

1. आन्तरिक परिस्थिति
2. बाहरी परिस्थिति।

1. आन्तरिक परिस्थिति

किसी भी देश अथवा राज्य की स्थिति यदि आन्तरिक रूप से बिगड़ गयी हो तो उसे देखना, सामना करना और समाधान करना बहुत ही कठिन हुआ करता है।[11] राणा सांगा को आन्तरिक दशा ठीक करते हुए वाह्य विकट परिस्थिति से भी सावधान होकर उन पर भी बहुत पैनी दृष्टि रखने की नितान्त आवश्यकता थी। अपने निकट के लोगों का सहयोग राणा को मिलना ही नहीं था। उसका कारण था कि भाई लोग उनके प्रबल शत्रु के समान उन राणा सांगा के साथ दुर्व्यवहार और प्राण घातक हमला किये और उस प्रकार के दुष्कृत्य का उन सभी को फल समय आने पर प्राप्त भी हुआ था। उस प्रकार की दशा में राणा सांगा को स्वयं निर्णय लेना था और उस दिशा में समुचित प्रयास करके उन सभी समस्याओं का समाधान प्रस्तुत कर मेवाड़ की जनता को अपने पक्ष में करना था। यही उनका प्रथम कर्तव्य था। उसे राणा सांगा ने अधोलिखित रूप में किया था–

उच्च वर्गीय उत्कर्ष

इस वर्ग के अन्तर्गत कुलीन, राजपरिवार के सभी सदस्य, प्रहरी वर्ग, मन्त्री, सेनानायक (सेनापति) आदि सम्मिलित थे। राणा सांगा ने उन सभी की तत्कालीन आवश्यकताओं और परिस्थितियों पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। इस दिशा में राणा सांगा ने अपने पिता रायमल द्वारा और राणा कुम्भा के द्वारा किये गये सुधारों तथा प्रदत्त सुविधाओं को ध्यान में रखकर

अपनी वंशोचित परम्परा के अनुसार उनका यथोचित समाधान प्रस्तुत किया था।

व्यापारपरक उत्कर्ष

किसी भी शासक अथवा राजा के लिए मात्र शासन करना ही महत्वपूर्ण नहीं होता अपितु आर्थिक सुधार की दृष्टि से व्यापार को पूरा का पूरा बढ़ावा देना भी परमावश्यक रहता है। जनता यदि अपने द्वारा उपार्जित धन्धों पर मन लगाती है तब वहाँ के शासक का दायित्व बनता है कि उन प्रकार के धन्धों के उत्कर्ष के लिए तरह–तरह के अवसर प्रदान करना और उन्हें आगे और बढ़ाने के लिए सुविधाओं को देने की व्यवस्था करे। राजा सांगा ने मेवाड़ के अन्तर्गत अपने–अपने धन्धे चलाने वाले सुनारों, लोहारों, बढ़इयों, राजगीरों, धोबियों, मालियों और चर्मकारों की दशा सुधारी। उन्हें तरह–तरह की सुविधायें देते हुए बिना किसी प्रकार के कर लिए सुनहरे अवसर प्रदान किए जिससे समूचे मेवाड़ में व्यापार की दशा बहुत अच्छी हो चली थी। उन धन्धे वालों के सामने कोई समस्या नहीं रह पायी थी।

बौद्धिक उत्कर्ष

इस श्रेणी में स्वतन्त्र तथा शासक के आश्रित विद्वद्वर्ग आते हैं। इनमें शासक अथवा राजा के आश्रित रह रहे राजकवि, वैद्य, ज्योतिषी, पुरोहित, ब्राहमण और समय–समय पर समुचित विचार प्रकट करने वाले लोग थे। महाराणा सांगा ने इनके सम्मान की ओर पूर्णरूप से ध्यान दिया था। इस बौद्धिक वर्ग में गिने गये विद्वद्वर्ग की ओर राज्य की ओर से पूरा ध्यान दिया गया। इन्हें समाज के अन्तर्गत समुचित सम्मान प्राप्त हो

एतदर्थ इनकी अपनी–अपनी इच्छाओं के अनुसार राणा सांगा की ओर से हर प्रकार की सुख और सुविधाओं की व्यवस्था निश्चित की गयी थी।

कृषि संबन्धी उत्कर्ष

महाराणा कुम्भा के समय से ही इस प्रकार के कार्य में मुख्यरूप से हर वर्ग लगा हुआ था। वह वर्ग खेती का कार्य बहुत परिश्रम से कर रहा था। यह वर्ग इस प्रकार का कार्य महाराणा कुम्भा के समय से ही कर रहा था और राणा रायमल के काल में भी कृषि कार्य जोरों पर होता रहा किन्तु राजपरिवार के आन्तरिक कलह के चलते जो भी कुछ व्यवधान आया था वह राणा सांगा के राज्यारोहण के बाद ही दूर करने की दिशा में राणा सांगा ने ध्यान दिया। उस प्रकार के ध्यान देने के कारण खेती करने वाले जाट समुदाय और अन्य भी कृषकों के मनोबल उच्च हो गये थे और फिर उन सबकी परिस्थिति में सुधार होता चला गया था।

सांस्कृतिक उत्कर्ष

किसी भी देश अथवा राज्य की पहचान उस देश की संस्कृति के द्वारा हुआ करती है।[12] अच्छे शासक अथवा राजा की संस्कृति अच्छी हुआ करती है। वह संस्कृति भविष्य में आने वाली पीढ़ियों के लिए आदर्श हुआ करती है। उसी को प्रमाण और आदर्श मानकर कोई शासक अपनी व्यवस्था का संचालन करता है। उस प्रकार की व्यवस्था से वहाँ की जनता बहुत प्रभावित होती है, शासक के पक्ष में रहा करती है और उसको प्रमाण मानकर शासन करने वाला अपनी प्रिय जनता के हृदय को जीत करके जनता का भी प्रिय बन जाया करता है। राणा सांगा के पिता राणा रायमल

और राणा रायमल के पिता राणा कुम्भा के काल में जो भी संस्कृति के प्रतीक थे उनका राणा सांगा के मन में बहुत स्थान था। अतः राणा सांगा ने उन सभी संस्कृति के प्रतीकों (मन्दिरों, रम्य पर्वतों, सरोवरों, कूपों और अनेक प्रकार के जलाशयों के स्थायित्व और उनकी दर्शनीयता की व्यवस्था पूर्ववत् बनाकर रखा था।

इस प्रकार से उन्होंने अपनी पुरानी संस्कृति को हर प्रकार से आदर्श मानते हुए अपनी शासन–व्यवस्था का कुशलतापूर्वक संचालन किया था। यद्यपि बहुत त्रस्त और परेशानियों को झेलते और सामना करते राणा सांगा के बहुत समय निकल चुके थे फिर भी उन्होंने अपने ऊपर आयी हुई विपत्तियों की झलक भी अपनी जनता के समक्ष उपस्थित नहीं होने दिया। यही कारण था कि राणा सांगा 'हिन्दूपत' के रूप में इतिहास के पृष्ठों पर अंकित होकर अपनी विशेष पहचान विरासत स्वरूप छोड़ चुके हैं।

कलोत्कर्ष

मेवाड़ का इतिहास इस बात का सदा साक्षी रहा है कि वहां पर महाराणा कुम्भा के शासन–काल मे सब प्रकार की कलाओं[13] को उन्नति करने का अवसर प्रदान किया था। यहाँ तक कि मेवाड़ की जनता का एक वर्ग जो मिट्टी के पात्र भी बनाता था वह उस पात्र को भी कलात्मक रूप देकर उसमें जान फूँक दिया करता था। शिल्पकार भी अपनी कला का प्रस्तुतीकरण अपने–अपने शिल्पों में किया करते थे।

कलात्मक रूप से अपनी वस्तुओं को प्रस्तुत करने में वहाँ के लोगों की बहुत रुचि थी। वहाँ पर बनाये गये मन्दिर और किले आज भी वहाँ

की कला का ज्वलन्त रूप प्रकट करते हैं। महाराणा सांगा का अपना स्वयं भी अनेक कलाओं के प्रति अनुराग था। उस अनुराग होने के चलते उन्होंने अपने राज्य मेवाड़ के अन्तर्गत सब प्रकार की कलाओं को एक समान रूप से बढ़ावा दिया था।

सैन्योत्कर्ष

सेना किसी भी देश के लिए परमावश्यक अंग के रूप में हुआ करती है। सुरक्षित देश अथवा राज्य की किसी प्रकार की उन्नति के मार्ग पर चल कर ही कुछ अथवा बहुत कुछ करने की दशा में हो सकता है। अपने मेवाड़ राज्य के पड़ोसी, दूरस्थ विरोधियों और शत्रुओं को ध्यान में रखते हुए उन्होंने अपनी सैन्य शक्ति में अनेक प्रकार की उन्नति किया था। उनका व्यक्तिगत प्रभाव था कि उनके साथी अनेक राजा और असरदार सरदार उनका सहयोग करने के लिए हर प्रकार से अपनी–अपनी हर प्रकार की शक्ति के साथ हर समय उपस्थित रहा करते थे। उस समय महाराणा सांगा का यद्यपि मालवा के सुल्तान महमूद द्वितीय, गुजरात के सुल्तान मुजफ्फरशाह द्वितीय के साथ आपसी वैमनस्य था जिसके चलते महाराणा सांगा को दोनों सुल्तानों के साथ अनेक बार होने वाली भिड़ंतों का सामना डटकर करना पड़ा था और प्रत्येक भिड़तों में उन दोनों सुल्तानों को न केवल मुँह की खानी पड़ी थी अपितु दोनों राज्यों के सुल्तानों को अपार धन और जन की हानि भी उठानी पड़ी थी किन्तु स्वाभाविक शत्रुता रखने के कारण मालवा के सुल्तान ने तो कई बार महाराणा सांगा के साथ घोषित और अघोषित रूप में युद्ध छेड़ दिया था।

इतना ही दिल्ली के सुल्तान इब्राहीम लोदी यद्यपि मालवा से बहुत दूर थे फिर भी महाराणा सांगा के साथ उनका भी वैरभाव बना हुआ था। उधर बाबर भी समूचे हिन्दुस्तान के ऊपर अपनी बादशाहत के सपने देख रहा था। उस सपने को साकार करने के उद्देश्य से बाबर ने राणा सांगा को अपने द्वारा किये गये दिल्ली के ऊपर आक्रमण को बहुत प्रभावशाली बनाने के उद्देश्य से आगरा की ओर से आक्रमण करने का आमन्त्रण भी दे रखा था। स्वयं बाबर के साथ खनवा के लड़े जाने वाले युद्ध के लिए इतिहास वेत्ताओं ने जहीरूद्दीन बाबर की सेना की अपेक्षा महारणा सांगा की प्रस्थान करने वाली सेना की संख्या को कई गुना अधिक बताया है। हाँ इतना अवश्य था कि इस बार की लड़ाई और महारणा की पराजय को देखते हुए सभी बुद्धिजीवी और इतिहास वेत्ताओं `न अनुभव किया था कि बाबर की सेना नई तकनीक (तोप और बन्दूक आदि) से लैस थी जबकि महाराणा की सेना उस समय तीर और तलवार के बल पर हाथियों और घोड़ों के ऊपर सवार होकर लड़ रही थी।

यदि महाराणा सांगा ने भी उस समय अपनी सेना में नई–नई तकनीक और चालाकी तथा सावधानी (जो उस समय अपेक्षित थी) दिखाया होता तो जितनी विशाल सेना महाराणा के पास थी उसके चलते लड़े गए राणा सांगा और बाबर के युद्ध में (खानवा के युद्ध में) तत्कालीन हिन्दुस्तान का इतिहास और ही होता ओर एक ऐतिहासिक आदर्श सामने होता फिर भी राणा सांगा के प्रति हिन्दुस्तानी राजपूतों के समर्थन को इतिहास में बहुत महत्व प्रदान कर रखा है। महाराणा सांगा कालीन मेवाड़ तीन ओर से शत्रुओं से घिरा हुआ था। उनके स्वयं की बुद्धि का कौशल

था कि उसी समय राणा सांगा ने युद्ध किया फिर भी उनके शौर्य का प्रभाव रहा था कि मेवाड़ सफलतापूर्वक सुरक्षित रहा जबकि बहुत कठिन परिस्थिति का सामना उनको करना पड़ा था। वह कार्य राणा सांगा का वैभव के रूप में परिलक्षित हुआ था।

राणा सांगा द्वारा अपने सैन्य शक्ति का उत्कर्ष करने के कारण दिल्ली के सुल्तान की हार हो गई थी। उसका परिणाम वह हुआ था कि मेवाड़ की धाक पूरे दूश में जम गयी थी। इब्राहीम की उस पराजय के कारण महाराणा सांगा की जहाँ प्रतिष्ठा में चार चाँद लग चुका था वहीं लगभग उत्तर भारत का नेतृत्व महाराणा सांगा के हाथ में पहुँच गया था। उस प्रकार दिल्ली के सुल्तान को पराजित कर देने के कारण राजनैतिक दृष्टि से भी मेवाड़ की प्रतिष्ठा खूब बढ़ चली थी। इस प्रकार चाहे हिन्दुस्तान की कोई शक्ति रही हो अथवा विदेशों की कोई शक्ति रही हो सभी ने एक स्वर से महाराणा सांगा की शक्ति को मान्यता प्रदान कर दिया था। यह समय मेवाड़ का चरम का समय सिद्ध हुआ था।

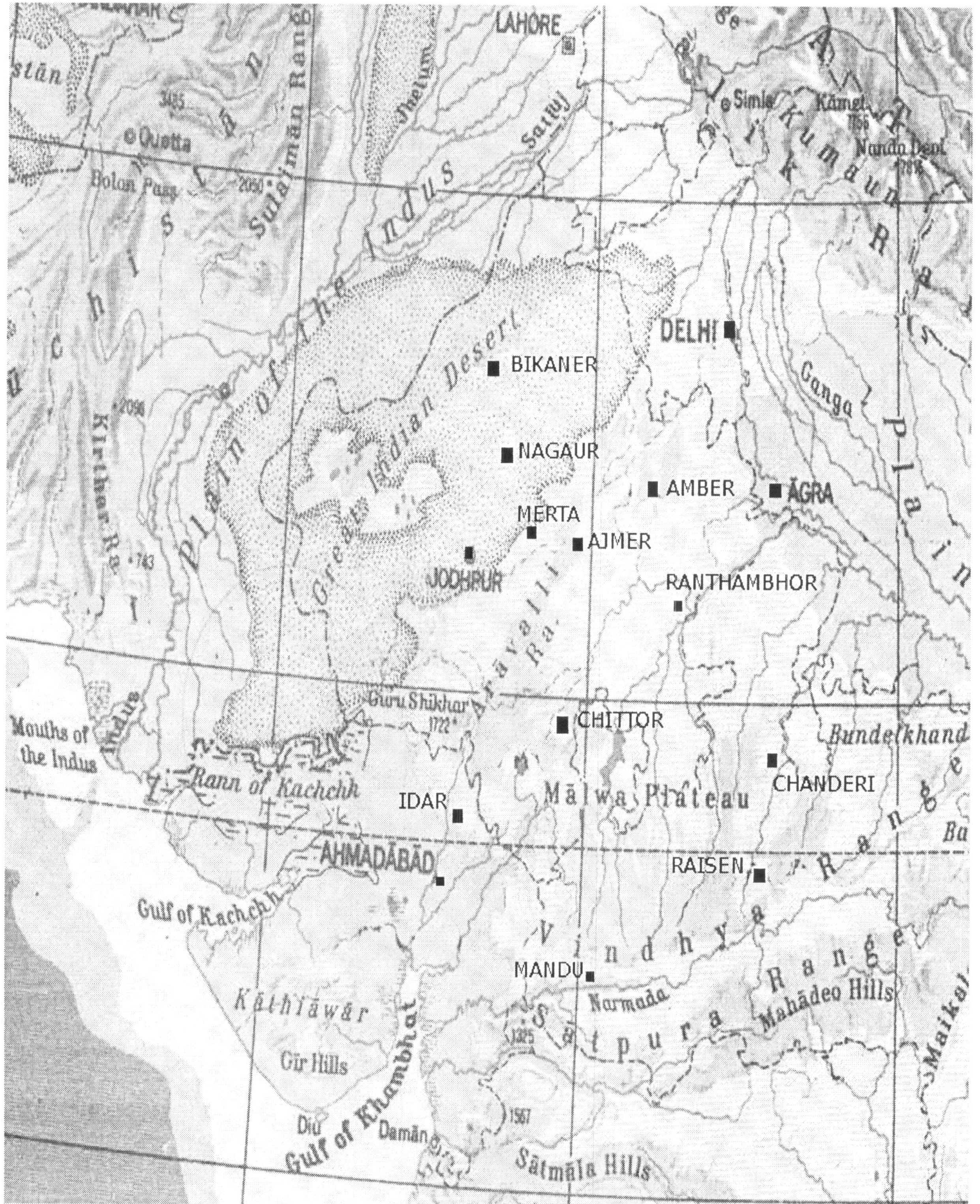
महाराणा सांगा उस प्रकार की विजयों को प्राप्त कर लेने के कारण उस समय राजपूत संगठन के नेता के रूप में मान लिए गये थे। अतः यह सब जो भी उपलब्धि मेवाड़ अथवा महाराणा सांगा को मिली थी उन सभी की पृष्ठिभूमि में राणा सांगा का सैन्य संगठन, दूरदर्शिता, कुशल नेतृत्व, अदम्य साहस, सक्रियता, बुद्धिमत्ता, अच्छा स्वास्थ्य आदि रहा था। ऐसे नेता की चर्चा आज भी की जाती है तब उस महान् युगपुरुष के अपार सम्मान में सभी देशभक्त का सिर स्वयमेव प्रणाम करने की दृष्टि से उतावला हो जाता है और जब–जब इस धरातल के ऊपर राणा सांगा का

इतिहास पढ़ा जायेगा, तब–तब उनका उसी प्रकार से सम्मान होता रहेगा। यह सब जो भी उत्कर्ष हुआ उसके पीछे राणा सांगा का स्वयं का प्रभाव था। राणा सांगा के समय जो प्रतिष्ठा मेवाड़ की बढ़ी थी उस सारी की सारी प्रतिष्ठा का श्रेय महाराणा सांगा को ही जाता है।

महाराणा कुम्भा के काल से ही राजपूतों की प्रसन्नचित्त होकर युद्ध करने की भावना रहती थी। उनकी धारणा थी कि युद्ध के अन्तर्गत यदि कोई योद्धा लड़कर वीरगति को प्राप्त कर लेता है तो उस वीरगति प्राप्त करने वाले को मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसी भावना को अपने मन में लेकर राजपूत युद्धभूमि के लिए प्रसन्नचित्त होकर प्रस्थान कर दिया करते थे। अतः वीर पुरुषों को वीरोचित विधि से शरीर छूटने पर उन वीरों के लिए गौरव की बात हुआ करती थी।

इतना ही नहीं राजपूत वंश में कुम्भा काल में भी जौहर प्रथा प्रचलित रही। युद्ध में गए हुए अपने वीरपतियों के जब जीतने की किसी प्रकार की आशा नहीं दिखाई पड़ती थी तो उस प्रकार की विषम परिस्थिति में उन राजपूतों की वीरांगनायें सामूहिक रूप से अपने प्राणों का त्याग कर दिया करती थी। यह जौहर प्रथा थी। इस प्रकार की प्रथा का प्रचलन महाराणा सांगा के समय में भी रहा था।

वस्तुतः उस जौहर प्रथा के अनुसार वीरांगनाओं का सामूहिक रूप से अपने–अपने प्राणों को त्यागने का उद्देश्य बहुत ही व्यावहारिक था। वे वीरांगनायें जानती थीं कि यदि शत्रु की विजय हो जायेगी तो वे विजेता सैनिक उन वीरांगनाओं को पकड़कर अपने वश में करने का प्रयास करेंगे। अतः उन वीरांगनाओं का उद्देश्य हुआ करता था कि सामूहिक रूप से



सांगा कालीन विजित राज्य

प्राणों का परित्याग कर दिया जाय अन्यथा शत्रु के हाथ में लग जाने पर अनेक प्रकार के न केवल दुर्व्यवहार की अपितु उनके शील–भंग हो जाने की पूरी संभावना रहा करती थी। यह दोनों प्रकार की प्रथायें (राजपूत का प्रसन्नचित्त होकर युद्ध में जाना, प्रसन्नतापूर्वक अपने प्राणों का परित्याग करना तथा राजपूतों की वीरांगनाओं का स्वयमेव जौहर कर डालना) महाराणा रायमल और महाराणा सांगा के काल में भी रहीं थीं। यह भी उस समय विशेष प्रकार का उत्कर्ष था। राणा सांगा ने जो भी उत्कर्ष किया था उसका आन्तरिक प्रस्तुतीकरण अधोलिखित रूप में किया जा रहा है।

विस्तार

राणा सांगा के मेवाड़ के शासन पर बैठते ही उनके पिता राणा रायमल द्वारा प्राप्त राज्य उन्नति की दिशा में आगे बढ़ने लगा था। जो भी विवाद राणा रायमल के समय में कहीं भी थे वे सारे के सारे राणा संग्राम सिंह के सिंहासनारूढ़ होने पर प्रायः समाप्त हो चले थे। राणा सांगा के पूर्व जो भी मेवाड़ का नहीं रह गया थ वही मेवाड[21] राणा सांगा के आने पर सब कुछ पा गया था। राणा सांगा की नीति का परिणाम था कि उन्होंने मेवाड़ राज्य का बहुत विस्तार कर लिया था। उत्तर दिशा में बीना प्रान्त में प्रवाहित हो रही पीलरवाल, पूर्व दिशा में सिन्ध नदी, दक्षिण में मालवा और पश्चिम दिशा में ऊबड़ खाबड़ और दुर्गम शैलमालायें उस मेवाड़ की सीमा हो गई थीं।

मेवाड़ राज्य का उस प्रकार का विस्तार राणा सांगा की योग्यता, गम्भीरता, दूरदर्शिता और उत्साह का ही प्रभाव था जिसने राणा सांगा को उस प्रकार का अवसर प्राप्त कराया था। जिन लोगों ने चित्तौड़ को अपने अधीन कर लेने का विचार बनाया भी था राणा सांगा के आ जाने पर उन सब की हिम्मत हार चुकी थी। इससे राणा सांगा के प्रताप और उनकी बहादुरी का स्पष्ट परिचय प्राप्त हो जाता है। अपनी उस बहादुरी के चलते राणा सांगा ने मेवाड़ पर बहुत ही सूझ और बूझ के साथ शासन किया था।

अतः राणा सांगा का शौर्य और उनकी दूरदर्शिता का कोई जोड़ उस समय नहीं था। यही कारण था कि राणा संग्राम सिंह ने अपने को सभी बिन्दुओं संरक्षक मान लिया था और भारत को एक हिन्दू राष्ट्र के रूप में देखने का सपना उस समय समूचा भारत देख रहा था। अपने कार्य–विधि के कारण ही राणा सांगा मेवाड़ की जनता के लिए प्राणों के समान ही प्यारे हो चले थे।

संस्कार

संस्कार से शारीरिक शुद्धि हो जाया करती है। प्राचीन काल से ही यद्यपि यह संस्कार प्रचलित थे। राणा सांगा के समय में पहले से चले आ रहे सभी प्रकार के संस्कारों का अपने–अपने स्थान पर विशेष प्रकार का महत्व हुआ करता था। निष्क्रमण, नामकरण, यज्ञोपवीत, विवाह और अन्तिम संस्कार प्रायः सामान्य रूप से राणा सांगा के काल में भी हुआ करते थे।

मनोरंजन

राणा सांगा के समय में मात्र लड़ाई पर ही विश्वास नहीं होता था। शारीरिक और मानसिक थकान तथा समुद्वेग को शरीर से दूर भगाने के उद्देश्य से मनोरंजन के साधन उपलब्ध थे। यह साधन उस समय अलग–अलग प्रकार के हुआ करते थे। जिसकी जो क्षमता होती थी वह उस प्रकार के साधन से अपना मनोरंजन किया करता था। राजवंश और राजपूत लोग उस समय भी शिकार खेलने में अपनी–अपनी अनेक प्रकार की रुचियों के अनुसार मनोरंजन के साधन का प्रयोग किया करते थे। सामान्य वर्ग में तो लोग ढोलक, मृदंग, झाँझ और बांसुरी आदि को भी बजाकर मनोरंजन किया करते थे। सभ्य और राजवंश को आमोद प्रमोद करने का अवसर यद्यपि कम ही प्राप्त होता था किन्तु उनके लिए नाट्य शालायें भी बनाई गई थीं। वह नाट्यशालायें अलग–अलग प्रकार की अन्य जातियों के अन्तर्गत प्रचलित थीं। अतः सामान्य जन और अभिजात वर्ग और मध्यम वर्ग अपनी–अपनी क्षमतानुसार अपने–अपने लिए मनोरंजन के साधन का उपयोग किया करता था। महाराणा के वाह्य उत्कर्ष भी बहुत किया था। वह अग्रलिखित रहा–

बाह्य उत्कर्ष

राणा सांगा के काल में मेवाड़ का मात्र आन्तरिक उत्कर्ष ही नहीं हुआ था। बाह्य दृष्टि से भी राज्य ने अनेक प्रकार के उत्कर्ष प्राप्त किये थे। दिल्ली यद्यपि मेवाड़ से कुछ दूरी पर था फिर भी वहाँ के सुल्तान इब्राहीम लोदी का मन युद्ध करने के लिए बना। वह राणा सांगा के साथ

युद्ध करने में इब्राहीम लोदी को करारी हार का मुँह देखना पड़ा था। राणा सांगा की विजय जब इब्राहीम लोदी के ऊपर हो गयी तब मेवाड़ राज्य का पहले की अपेक्षा सम्मान कई गुना बढ़ गया था। समूचे हिन्दुस्तान में राणा सांगा की विजय को सुनकर मेवाड़ और वहाँ के शासक राणा सांगा की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गयी थी। राणा रायमल के समय अथवा राणा कुम्भा के समय में भी जो सम्मान मेवाड़ को नहीं मिल सका था उससे कई गुना सम्मान मेवाड़ और राणा सांगा को प्राप्त हो चला था। वाह्य विरोधियों के हौसले परस्त हो चले थे। जो भी मेवाड़ के छिपे शत्रु थे वह सब अपने वैर के भाव को राणा सांगा के अदम्य साहस और बहादुरी के चलते कभी प्रकट करने का अवसर नही पाये थे।

गुजरात और मालवा की ओर से तो राणा कुम्भा के समय से ही मेवाड़ पर कुदृष्टि लगाई गयी थी। राणा सांगा के शासन संभालते ही परिवर्तन दिखाई पड़ने लगे थे। यद्यपि गुजरात और मालवा के सुल्तान उस समय राणा सांगा से लड़ाई ठानने में नहीं चूके थे फिर भी राणा सांगा से लड़ाई लड़ने पर भी वह दोनो कभी विजय नहीं प्राप्त कर सके थे। राणा सांगा ने अपने सहयोगियों सैनिकों के साथ होकर उन दोनों के साथ घमासान युद्ध किया। आखिरकार दोनों के दोनों युद्ध में न केवल पराजित हुए अपितु उन दोनों को धन और जन से हाथ धोना पड़ा था। कर्नल टाड[22] ने तो राणा सांगा को समूचे भारत के चक्रवर्ती नरेश की उपाधि प्रदान कर दिया था। इतना ही नहीं मारवाड़ और आम्बेर के राजाओं ने मेवाड़ राज्य की प्रतिष्ठा खूब बढ़ाया था। यद्यपि ग्वालियर,

अजमेर, सीकरी, कालपी, चन्देरी, बूँदी, गागरौन, रामपुर और आबू नामके अनेक राज्यों पर राजा राणा संग्राम सिंह के समय में मेवाड़ के सामन्त अपना शासन चला रहे थे। जब भी राणा सांगा का इशारा मात्र प्राप्त होता था तो यह सभी राजा अपनी–अपनी सेनायें लेकर युद्ध के मैदान में मर मिटने को तैयार रहते थे। राणा सांगा के सैन्य संगठन[23] के कारण मेवाड़ राज्य की प्रतिष्ठा दूर दूर तक फैली हुई थी।

इस प्रकार राणा संग्राम सिंह के राज्य सिंहासन का स्वामी बने रहने पर मेवाड़ राज्य ने अभूतपूर्व प्रतिष्ठा अर्जित कर लिया था। अपने पूर्वजों की अपेक्षा राणा सांगा ने अधिक उपलब्धियों का अपने को भागीदार बनाया था। राणा सांगा ने अपनी कुशल एवं दूरदर्शी नीति के चलते मेवाड़ राज्य की कमजोरियों में अनेक प्रकार के प्रभावशाली सुधार करते हुए मेवाड़ को उन्नति के शिखर पर पहुँचा दिया था। सामाजिक, सांस्कृतिक, सांस्कारिक, राजनैतिक, शैक्षिक और अनेकानेक सुधारों तथा परिवर्तनों के कारण मेवाड़ की प्रतिष्ठा लगातार बढ़ती चली जा रही थी। कोई भी शासक उस समय राणा सांगा के समक्ष सिर को विरोध में नहीं उठा सका था और यदि किसी ने कभी कुछ या अधिक हिम्मत जुटाते हुए मेवाड़ के साथ युद्ध करने का मन बनाया भी था तो राणा सांगा ने कभी अपनी हिम्मत को कम नहीं समझा था। उन्होंने बहुत सूझ बूझ और शौर्य के चलते उन सभी आक्रमण करने वाले अपने शत्रुओं का सामना किया था और उस प्रकार का घनघोर युद्ध प्रवर्तित कर दिया था कि शत्रु के छक्के छूटते चले गए थे और अन्ततः उस आक्रमण करने वाले शत्रु ने कभी विजय नहीं पायी।

हाँ इतना अवश्य था कि इब्राहिम लोदी जो दिल्ली का शासक था और वह जब एकाधिक बार लड़ा तो उतनी बार हारा भी था। उसी प्रकार मालवा और गुजरात की ओ से भी युद्ध करने का दोनो का बुरा परिणाम हुआ था।

कर्नल टॉड ने राजा संग्राम सिंह के सत्ता संभालने की प्रगति के रूप में राणा सांगा द्वारा मेवाड़ राज्य की कमजोरियों में सुधार, आपसी वैर का अन्त, मेवाड़ राज्य का विस्तार, चित्तौड़ में अनेक प्रकार के सैनिक संगठन के समुचित प्रयास और अपने सैनिकों को प्रदान की गयी युद्ध की अनेक प्रकार की शिक्षा को बताया है और राणा सांगा की हर प्रकार से प्रशंसा की है। इस तथ्य को उजागर भी किया है कि महाराणा संग्राम सिंह के सिंहासनारूढ़ होते ही मेवाड़ ने किसी एक क्षेत्र में ही नहीं अपितु राणा संग्राम सिंह की दूरदर्शिता के परिणाम के रूप में समूचे भारतवर्ष की धरती पर अपने विशेष प्रकार की ऐतिहासिक छवि को प्रकट किया है और वह सभी प्रकार उत्कर्ष राजपूतों के इतिहास के रूप में होकर भी प्रत्येक देश के लिए सदा सदा के लिए प्रेरणा स्रोत बने रहेंगे।

राणा सांगा बहुत प्रभावशाली ओर व्यक्तित्व के बहुत धनी योद्धा के रूप में इतिहास वेत्ताओं के द्वारा जाने जाते हैं। उन्होंने अपने शासन काल में अपने राज्य की व्यवस्था को सुदृढ़ और व्यवस्थित तो किया ही था और इसी के समकक्ष उन्होंने अपने पड़ोसियों की सत्ता पर भी अपनी बहुत पैनी दृष्टि जमा रखी थी। परिवारों से ग्राम और अनेक ग्रामों से समाज का स्वरूप बनता है। जिसके कारण आज भी 'ग्राम समाज' शब्द का प्रयोग होता है। यह ग्राम समाज वस्तुतः ग्राम का समाज होता है। जिसका कि

हर दृष्टि से सुधार, उन्नति और विकास किया जाता है। पी0एस0 लैण्डिस ने सामाजिक क्रम को व्यवस्थित करने के लिए सामाजिक नियन्त्रण[24] बहुत आवश्यक स्वीकार किया है। किसी भी समाज का विकास वास्तव में सामाजिक नियन्त्रण के चलते ही हो सकता[25] है।

राणा सांगा ने अपना विशिष्ट प्रभुत्व स्थापित करने की दृष्टि से अपने मेवाड़ राज्य का अनेक प्रकार से सामाजिक उन्नयन किया था। इसके साथ ही साथ राणा सांगा ने वाह्य दृष्टि से भी अनेक सत्ताओं के साथ आवश्यकतानुसार अनेक प्रकार के कार्य किए। अपने विरोधियों को जान परखकर अपने उस उन्नति के अभियान को उन्होंने चलाया था। इसी प्रकार का व्यवहार राणा सांगा ने अजमेर और चाकूस के साथ भी किया था। इस अभियान के चलते उन राणा सांगा ने अपने राज्य के विस्तार के साथ अपने राज्य की सीमाओं को सुदृढ़ करने का प्रयास अपनी सूझबूझ के साथ किया था जो कि आज भी उदाहरणीय है। यद्यपि राणा सांगा का राज्य मेवाड़ चुस्त और चालाक शत्रुओं से घिरा हुआ था। मेवाड़ की अपनी प्रतिष्ठा थी उसी प्रतिष्ठा के कारण पड़ोसी राज्य मेवाड़ के ऊपर अपनी टेढ़ी निगाह लगये हुए थे और उन सबके मन में उस प्रतिष्ठित मेवाड़ को प्राप्त कर लेने की बहुत तीखी ललक थी। वह तो महाराणा सांगा का अपना व्यक्तिगत प्रभाव था और उनकी सशक्त सन्य–व्यवस्था थी जिसके चलते शत्रु खुलकर सामने नहीं आ सकते थे। जैसा कि पूर्व चर्चा की जा चुकी है कि राणा सांगा के सामने त्रिकोणीय संघर्ष था। दिल्ली में सुल्तान इब्राहीम लोदी, गुजरात में सुल्तान मुजफ्फर

द्वितीय[26] और मालवा में सुल्तान महमूद द्वितीय के शासन थे। तीनों की निगाहें मेवाड़ पर लगी हुई थीं। जब अपने दल बल के साथ दिल्ली का सुल्तान इब्राहीम लोदी राणा सांगा के साथ युद्ध करके बुरी तरह पराजित हो गया तब सांगा की वह विजय मात्र विजय नहीं रह गयी थी अपितु दिल्ली के सशक्त सुल्तान इब्राहीम लोदी की पराजय के कारण राणा सांगा की धाक बहुत जम गई थी। यह धाक समूचे हिन्दुस्तान में फैल चुकी थी जिसके कारण गुजरात और मालवा के सुल्तान सकते में आ गये थे। यद्यपि उन दोनों ने अनेक बार अपनी सेना को मेवाड़ की तरफ भेज कर अपनी शक्ति की आजमाइश कर लिया था किन्तु सफलता कभी नहीं मिल पायी थी। हाँ इतना अवश्य हुआ था कि सभी युद्ध के अभियानों में हार का मुँह भी उन्हें देखना पड़ा था। इब्राहीम लोदी की उस पराजय और गुजरात के सुल्तान मुजफ्फरशाह द्वितीय की पराजय ने तो राणा सांगा के व्यक्तित्व पर चार चाँद स्थापित कर दिये थे। उस संघर्ष का असर बहुत प्रभावकारी रहा था।

उसी बढ़े हुए प्रभाव के चलते अजमेर, सीकरी, कालपी, चन्देरी, गागरोण, रामपुर और आबू राणा सांगा के सेवक हो चले थे। राणा सांगा अपने समय के वह नक्षत्र थे जिन पर सभी हिन्दुओं की आँखें उस उम्मीद के साथ लगीं थी कि देर सबेर कभी राणा सांगा हिन्दुस्तान के अन्तर्गत सबल हिन्दू राष्ट्र की स्थापना करने में निश्चय ही सफलता प्राप्त कर सकेंगे। राणा सांगा के नेतृत्व को इसी कारण से उस समय लोग हृदय से स्वीकार करते थे। राणा सांगा के इशारे मात्र को देखकर उनके सहयोगी

राव, रावल तथ अन्य उनका आदेश मानते थे। उसी कारण से उस समय अपने अनुयायियों और सहयोगियों के फलस्वरूप राणा सांगा के बहुत ही शक्ति सम्पन्न सैन्यबल पूरे मनोयोग से उनके आदेश पर मरने और मिटने को सदा तैयार रहा करता था।

राजपूतों की असफलता/पराजय के कारण

यद्यपि मुस्लिम राज्य की स्थापना के समय हिन्दू समाज का नेतृत्व राजपूतों के हाथ में ही चल रहा था। उन नेताओं का अपने वंश पर अभिमान हुआ करता था। अपने वंश परम्परा को तो उन्हें चलाना ही चलाना होता था। यहाँ तक कि आत्मसम्मान ही प्रायः उन राजपूतों के लिए घातक से घातक युद्धों के परिणाम लाने वाले थे। आत्म–श्लाघा उन्हें आसमान पर पहुंचा देती थी और वे उस प्रकार की प्रसंशा सुनकर प्रायः जैसे हवा में उड़ने के आदती थे। अपने सैन्य बल के सामने और अपनी तकनीक और बुद्धि के समक्ष वह किसी को कुछ भी नहीं मानते थे। दूसरों की परामर्श प्रायः वह कभी ही स्वीकार करते थे। वे अपने बुद्धि कौशल को ही प्रधान मानते थे। स्वधर्म की स्थापना भी उनके लिए प्रायः विकराल समस्या बन जाया करती थी। अधिक शक्तियों से सम्पन्न हो जाने के कारण राजपूत दूसरे की ताकत को अपनी ताकत के सामने कुछ न समझने की भूल बराबर करते रहे। अपने मन के अन्तर्गत छिपी दिग्विजय की भावना जब प्रबल हो जाती थी तब वह अपनी सैन्य शक्ति को लेकर विजय के अभियान पर निकल जाते थे। उस विजय की नीति के चलते वह प्रायः अपने को सभी का शत्रु बना लेते थे। जिससे कि हर समय

सामयिक परिस्थिति उपस्थिति रहा करती थी। अपने वंश के अनुरूप कार्य करना राजपूतों के सिद्धान्त बन चुके थे। अपने आश्रितों की प्रत्येक दशा में रक्षा करते रहना उन राजपूतों का धर्म था। युद्ध में भी मर्यादित रूप से युद्ध करना, राजपूत परम्परा थी। युद्ध में निहत्थों पर वार न करना, भागते शत्रु पर वार न करना, पहले अपने को वार झेलने के लिए प्रस्तुत करना और समान साधन तथा शस्त्रास्त्र वालों पर ही अपना हथियार चलाना इत्यादि उस समय के राजपूतों के शान के अनुरूप हुआ करता था। पकड़े गये अपने शत्रु की हर प्रकार से सुरक्षा करना तथा उसे हर प्रकार की राजोचित सुविधायें प्रदान करते रहना मर्यादायें बन चुकी थीं। यह सब कार्य किसी भी व्यक्ति के लिए घातक होता है।

महाराणा सांगा उसी प्रकार के राजपूताने देश और राजपूत वंश के कुशल योद्धा थे। उनमें उपरिलिखित सभी प्रकार के राजपूतोचित भाव जैसे कूट–कूट कर भरे हुए थे। अपने अनुसार शासन करना उनके वंश परम्परा का प्रतीक था। वह अपनी कुल परम्परा के अनुसार ही कार्य करने के अभयस्त हो चुके थे। यही सब कारण था कि अपने सामने लड़ रहे अपने शत्रु को (सुल्तान महमूद द्वितीय को) जब राणा सांगा ने पकड़ लिया था तब उसे किसी भी प्रकार की क्षति राणा सांगा ने नहीं पहुंचायी थी। अपने यहाँ बहुत सम्मानपूर्वक राजपूतों की वंश–परम्परा के अनुसार व्यवहार किया था। उतना ही नहीं अपितु ऐसे पकड़े गए अपने शत्रु को सम्मानपूर्वक वापस भी कर दिया था। उन्होंने राजपूत की नीति और मुस्लिम नीति में कोई भी बिना भेद–भाव के अपने राज्य का संचालन किया था। उस प्रकार की नीति भारत की भूमि पर राजपूतों के लिए

सम्मानित और आदर्श थी। यद्यपि प्रो. निजामी ने राजपूतों की उन सभी विधियों को उस समय के विपरीत बताया है। उन सभी परिस्थितियों के जनक स्वयं राजपूत हुआ करते थे। इस प्रकार राजपूतों ने अपने आप कुछ समस्यायें अपने लिए स्वयमेव उत्पन्न कर लिया था। यद्यपि राजपूत सैनिक और शासन बहुत कुशल और स्थिरतापूर्वक लड़ाई लड़ने वाले योद्धा थे फिर भी उनकी पराजय के कारण अवश्य थे और वे कारण सभी राजपूत –शासकों के थे न कि किसी एक के। प्रायः राजपूतों के अन्तर्गत एकता की बहुत बड़ी कमी हुआ करती थी। वीरता और शूरता होने के बावजूद एकता न होना आड़े हाथों उपस्थित हुई। एक शासक पर उपस्थित संकट से दूसरे राजपूत शासक से कुछ जैसे लेना देना ही नहीं था। इस प्रकार का ज्वलन्त उदाहरण है कि रणथम्भौर की घेराबन्दी के समय चित्तौड़ अथवा जालौर के शासकों ने हम्मीर का साथ देकर घेरा डालने वाली खिलजी की सेना पर यदि आक्रमण किया होता तो अलाउद्दीन का वहाँ अधिक समय तक टिके रहना असंभव हो जाता। जबकि रणथम्भौर से चित्तौड़ और जालौर अधिक दूरी पर नहीं थे। इतना ही नहीं खिलजियों के शासन के पतन हो जाने के बाद भी राजपूत शासकों ने दिल्ली सल्तनत की तत्कालीन दुर्बलता का लाभ लेने का कभी मन ही नहीं बनाया था। वे अपने प्रभाव और अपने विस्तार के लिए अपने ही लोगों पर गम्भीर से गम्भीर आक्रमण कर डालते थे। अतः उनमें कभी एकता नहीं हो पाई। एक ही देश में एक ही जाति के होकर भी वे एक दूसरे के संकट तक के काल में भी काम नहीं आते थे। 'अपनी–अपनी ढपली और अपना अपना

राग' उन्हें बहुत संकट मे खड़ा करता था जिससे उबर पाना उनके लिए बहुत ही कठिन होता था।

उस समय राजपूत दुर्गों की अभेदता में पूरा विश्वास करते थे। पर्वतों के ऊपर यद्यपि दुर्गों के निर्माण होते थे। शत्रु के घेरे पड़ जाने पर राजपरिवार, स्त्रियों, वृद्धों और बच्चों को उस दुर्ग के भीतर कर लिया जाता था। सेना अन्दर रहती थी। कुछ सैनिक छापामार विधि का सहारा लेकर शत्रु को उलझाते रहते थे किन्तु अधिक समय तक टिकने की क्षमता वाला शत्रु दुर्ग के शासक की सैन्य और रसद की जानकारी लेकर कमजोर हो जाने पर उस दुर्ग को जीत ही लेता था। यह सब उस काल के राजपूतों की कमजोरियाँ हुआ करती थीं।

देशद्रोह की भूमिका भी तत्कालीन राजपूतों को बराबर संकटों मे डाल देती थी। इसका एक उदाहरण है कि राणथम्भौर के आक्रमण के समय हम्मीर के सेना नायक तथ मन्त्री क्रमशः रणमल और रतिपाल थे। ये दोनों व्यक्तिगत अपनी उन्नति, सुरक्षा और स्वार्थ के लिए अपने राजा और अपनी जनता के साथ विश्वासघात किए और सुल्तान का साथ दिया था। एक देशद्रोही ने तो खाद्यान्न के भण्डार में हड्डियाँ फेंक दिया। ऐसा करके उसने अकाल ही उपस्थित कर दिया था।

सैनिक कमजोरी उस समय राजपूतों की सफलता में बाधक थी। थोड़ी बहुत सैन्य व्यवस्था पर ही वे टिके थे। यद्यपि राजपूत लड़ने में अद्वितीय थे। फिर भी प्राचीन छात्र–धर्म, आदर्शों का पालन और राजपूतोचित कार्य उनके उन्नति में बाधक थे। युद्ध भूमि में कम सैनिक होने पर भी अपने को युद्ध में झोंक देना उनकी आदतें थी। वे राजपूत

राजनीति की कुटिल चालों से दूर रहते थे जबकि तुर्कों में यही छल और छद्म भरे थे। वह तुर्क छल–कपट, विश्वासघात तथा अन्य सभी सम्भव गलत से गलत तरीकों से भी सत्ता हथियाने में माहिर थे। यदि राजपूत भी उसी प्रकार की नीति को अपनाते तो भारत के इतिहास के पन्ने पर राजपूतों की दशा सबसे आगे रहती और आज भी उन्हीं राजपूतों का साम्राज्य और हर स्थान पर बोलबाला रहता तथा इतिहास भी दूसरा हो जाता।

राजपूतों में सुयोग्य नेतृत्व का प्रायः अभाव हुआ करता था। इतिहास साक्षी रहा है कि महमूद गजनवी, मुहम्मद गोरी, इल्तुतमिश और खिलजी ऐसे उच्च कोटि के सेना नायक थे जिनमें नायकत्व के उच्च गुण उनके जन्म से ही प्राप्त थे। बाबर आदि ने बुरे समय में भी अपने धैर्य और संयम को नहीं छोड़ा था। अपने सैनिकों को हर समय प्रोत्साहित ही किया था। परन्तु राजपूत राजाओं में एक भी ऐसा नहीं था। निःसन्देह पृथ्वीराज चौहान, हम्मीर कान्हड़दे और राणा सांगा का कोई सानी नहीं था परन्तु उन सभी में तुर्कों जैसे नायकत्व की दशा नहीं थी। रणथम्भौर की घेराबन्दी के समय अलाउद्दीन खिलजी की हत्या कर देने की साजिश की गई किन्तु चिन्हित न होने के कारण उसका बाल बांका भी नहीं हो पाया और वह सुरक्षित रहा।

साधनों की कमी भी राजपूतों की समस्या थी। राजपूताना अधिकतर रेतीला, वर्षा से रहित और पर्वतीय था जिसके चलते प्रायः वहाँ अकाल उपस्थित हो जाता ही था। दिल्ली सल्तनत की भूमिका हर समय राजपूताने को कमजोर बनाने की थी। दिल्ली सल्तनत के पास पंजाब और

अवध जैसे उपजाऊ भाग थे जिनके कारण दिल्ली सल्तनत के सामने कोई समस्या ही नहीं थी किन्तु उस राजपूताने में तो उपजाऊ भूमि और वर्षा न होने से प्रशासन का सामान्य खर्च भी नहीं चल पाता था। अतः दिल्ली के सुल्तानों से लम्बे समय तक राजाओं के लिए लोहा लेना असंभव ही था। बिना खाए पिए तो शरीर चल पाना ही कठिन होता है तो लोहा लेना तो राजपूतों के लिए रसद के अभाव में टेढ़ी खीर ही थी। हमारा इतिहास इस बात का उदाहरण रहा है कि अधिक समय तथा युद्ध के चलते रहने की दशा मे राजपूतों ने अपने अभेद से अभेद दुर्गों के फाटक मजबूरी में खोल दिये ओर उनके राज्य उनके दुर्गों के साथ शत्रुओं के हाथ में जा पहुंचे।

राजपूतों की पराजय का एक प्रमुख कारण और भी था। वह उनकी गुप्तचर नीति की दुर्बलता थी। इस कमी के कारण ही राजपूत शासकों को अपने शत्रुओं की गतिविधियों की जानकारी या तो मिलती ही नहीं थी अथवा आक्रमण हो जाने के बाद मिलती थी जबकि उन सूचनाओं का कोई भी महत्व नहीं हुआ करता था। राजपूतों को शत्रु के आगमन का पता तब चलता था जब शत्रु उनकी सीमा में घुस आता था अथवा तब उन्हें जानकारी होती थी कि जब वे चारों ओर से घिर जाते थे। उन्हें पर्याप्त अपनी तैयारी का समय ही नहीं मिल पाता था। वे अपने संकट के लिए भी अपने दुर्ग में आवश्यकता के अनुसार भी रसद और अन्य सामग्री जुटा तक नहीं पाते थे। इसके विपरीत दिल्ली के सुल्तानों, जिनमें अलाउद्दीन खिलजी की गुप्तचर व्यवस्था बहुत मजबूत थी। वह बहुत व्यवस्थित और वह बहुत सामयिक भी थी। उनके गुप्तचर साधुओं, फकीरों, व्यापारियों, भिखारियों तथा नटों आदि के रूप में अन्य राज्यों की

गतिविधियों की जानकारियाँ लेकर कुशलतापूर्वक अपने शासक तक पहुंचाने में सफल हो जाते थे। उसका परिणाम यह था कि उस शासक को समय पर सारी की सारी सूचनायें प्राप्त हो जाती थीं और वे निश्चित अथवा सजग होकर उस सूचना के अनुसार कार्य करते हुए अपनी नीतियों को कार्यान्वित करते रहते थे। उसके कारण वह हमेशा अपने मिशन में बराबर सावधानी पूर्वक सफलता प्राप्त कर ही लिया करते थे। इस प्रकार समान रूप से समीक्षा करने पर वास्तविकता की जानकारी हो ही जाती है कि हिन्दुस्तान की नीति परम्परागत थी उनमें बहुत जल्दी परिवर्तन का अनुभव भी नहीं हुआ करता था। हाँ यदि कोई घटना घट जाती थी तब शासक के जीवित बच जाने पर विचार हो जाता था कि समय से समय के अनुरूप कदम उठाना बहुत ही आवश्यक था। यदि समय के रहते समय के अनुसार कदम उठा लिये जाते तब विषम परिस्थिति न होती और उस प्रकार की घटना नहीं घट सकती थी।

मेरे विचार से भारतवर्ष में वर्तमान दशा आज भी पूर्ववत् ही चली आ रही है। शासक की नीति आज भी समय से चेतने की नहीं है। इसी कारण से अप्रिय से अप्रिय घटनायें घटती जाती हैं और भारतवर्ष में समयानुसार कदम नहीं उठाये जाते हैं। ''हम भारतीय हैं, हम परम्परागत नीति वाले हैं, हम किसी को कष्ट नहीं देते हैं, हम आक्रान्ता नही हैं, हमारे में सहनशीलता है, हम विचारपूर्वक कार्य करते हैं, हमें समायोजन करना चाहिए, सबसे अच्छे सम्बन्ध हमको बनाने चाहिए, हमें संयमित रहने के लिए ही बनाया गया है, हम अतिशीघ्र भूल जाते हैं, हममें उबाल आना अच्छा नहीं होता है, हमे हर प्रकार की परिस्थिति को झेलते रहना चाहिए''

इत्यादि हमारी मान्यताएं पहले भी और आज भी बाधक रही हैं। हम प्रायः समझौतावादी नीति का अनुसरण करते हैं। यही सब कारण वास्तव में हमारे पूर्वजों के भी थे। वह चाहे बड़े शासक रहे हों अथवा छोटे वह अपनी उसी सीमित व्यवस्था को पर्याप्त मानकर सन्तोष का अनुभव कर लिया करते थे। इसके ठीक विपरीत आक्रमणकारी तुर्कों के विचार हुआ करते थे। वे प्रायः अपने जीवन में समझौता नहीं करते थे। बाबर, गजनी और अलाउद्दीन खिलजी आदि इसी विचार के थे। उन्होंने जीवन में कभी समझौता नहीं किया। कभी अपनी उन्नति से संतुष्ट नहीं हुए। अपनी अग्रिम उन्नति के लिए सही गलत कदम वह बराबर उठाते रहते थे। उन्होंने अपनी–अपनी नीतियों की हमेशा समय रहते अवश्य ही समीक्षा किया और आवश्यकता के अनुसार न केवल अपने विचार में ही अपितु अपनी सारी नीतियों में भी परिवर्तन कर दिया। उन्होंने अपनी हिम्मत से हमेशा कार्य करने का अपने को आदी बनाया था। दूसरे की सलाह पाने पर भी उसे अपने अनुसार देखकर के और विचार–विमर्श करके ही कार्य किया था।

उपरिलिखित यही सब कारण बाहरी आक्रान्ता तुर्कों के थे जिसके चलते वह विशाल आँधी की तरह सबको रौंदते हुए आगे बढ़ते चले जाते थे और लगातार उन्नति करते चले जाया करते थे। इसके विपरीत हमारे भारतीय शासक तो अपनी पुरानी नीतियों और आचार के आधार पर जीते और मरते थे। यही कारण था कि उन्हीं पुरानी नीतियों के फलस्वरूप उन राजपूतों ने जय और पराजय को प्राप्त किया था। उनके जय और पराजय का अनुपात आज भी कुछ समझ में नहीं आता है। यदि राजपूत शासक

भी समय रहते समय के अनुसार अपने में और अपनी नीतियों की बराबर समीक्षा करते हुए परिवर्तन करते हैं और उसे क्रियान्वित करते तो निश्चय ही राजपूतों को हर समय सफलता मिलती क्योंकि उनमें अदम्य साहस था, एक से बढ़कर एक वीर हुए किन्तु अपनी पुरानी नीतियों के फलस्वरूप उन्हें पराजय का मुँह देखना ही पड़ता था। यदि वे समय रहते समयानुसार अपनी नीतियों में बदलाव कर लिए होते तो निश्चय ही उन राजपूतों का इतिहास कुछ और होता।

राणा सांगा का अजमेर और चाकसू से सम्बन्ध

राणा सांगा (संग्राम सिंह) जब सिंहासन पर बैठ गये तब उन्होंने बैठते ही परिवर्तन करने प्रारम्भ कर दिये थे। उन्हें अपने जीवनकाल में शत्रु–मित्र, दुर्जन–सज्जन, उचित–अनुचित, कर्तव्य–अकर्तव्य और अपने–पराये का बहुत अनुभव प्राप्त हो चुका था। अपनी छोटी सी अवस्था से उन्हें संघर्ष करते रहना पड़ा था। एक के बाद दूसरे और अन्य संकट उन पर आते रहे किन्तु उन संकटों से कभी राणा सांगा विचलित नहीं हुए और अपने दृढ़ इरादों पर पूरे जोर के साथ डटे रहे। किसी ने बहुत ही कम उनके संकट के समय उनका साथ दिया था। पृथ्वीराज और जयमल के एक हो जाने पर जब संग्राम सिंह अकेले पड़ गये थे और लगातार वार पर वार झेलते रह गये थे तब उस परिस्थिति में सेवन्त्री के राठौर बीदा उनकी मदद किए थे। उस प्रकार की सहायता से राणा सांगा को जैसे डूबते को तिनका मिल जाय। उसी प्रकार बीदा से सहायता प्राप्त करने

का लाभ मिल गया और सांगा को बच निकलने का अवसर प्राप्त हो चला था।

उसके पश्चात् सांगा के और भी बुरे दिन आ पहुँचे थे। उस समय वह वैसी परिस्थिति में चले गए थे कि वह प्रकट रूप से कहीं रह नहीं सकते थे। उस प्रकार की परिस्थिति में सांगा को अज्ञातवास करने के अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं था। यदि वे उस प्रकार की परिस्थिति के चलते अज्ञातवास नहीं किये होते और प्रकट होकर रहते तब वह समय उनके लिए बहुत घातक सिद्ध हो जाता और बहुत कुछ संभव था कि सांगा को उस समय अपने प्राणों से भी हाथ धोना पड़ जाता। उस प्रकार के अज्ञातवास के समय में फिर दूसरे मददगार कर्मचन्द्र पँवार सांगा को मिल गये। उन कर्मचन्द्र पँवार ने सांगा की मदद ही नहीं किया था अपितु सांगा की सुरक्षा भी उन्होंने हर प्रकार से सुनिश्चित किया था। उस प्रकार सांगा को अपने उस जीवन काल में ही अर्थात् मेवाड़ की बागडोर सम्भालने के पूर्व अनेक प्रकार के अनुभव होते चले गये थे जिनके फलस्वरूप सांगा को अनेक प्रकार की परिस्थितियों का हर प्रकार का अनुभव हो चला था। उस प्रकार के परेशान सांगा ने जब मेवाड़ की सत्ता को प्राप्त किया तब उस समय उस वंश की दुर्बल नीतियों के कारण स्थिति बहुत बिगड़ चुकी थी। शासन और अनुशासन बहुत क्षीण हो चले थे। अतः उन्हें ठीक करने की बहुत आवश्यकता थी। उस चरमराती परिस्थिति का राणा सांगा ने गहन अध्ययन किया और आन्तरिक परिस्थितियों[27] को ठीक भी कर डाला था। अपने उस मेवाड़ राज्य के

दुर्बल हो चले वित्त से सम्बन्धित साधनों को उन्होंने विकसित किया था। इस प्रकार की अपनी नीति के कारण वह अपनी सैन्य–शक्ति को बहुत मजबूत बना सके थे जबकि सैन्य–शक्ति भी राणा सांगा के पिता राणा रायमल के समय बहुत दुर्बल हो चली थी।

उस प्रकार अपने सैन्य शक्ति को व्यवस्थित करने के बाद राणा सांगा ने विजय–अभियान की ओर अपनी दृष्टि लगाई जिसके चलते उन राणा सांगा ने अपने मेवाड़ का प्रभुत्व राजस्थान में बढाने की दृष्टि से सामरिक प्रणाली को आगे बढ़ाया और राजस्थान के प्रसिद्ध भाग अजमेर के ऊपर धावा बोल दिया। उस प्रकार के आक्रमण का प्रभाव बहुत अधिक पड़ा था। यह राणा सांगा का राज्य के सिंहासन के ऊपर बैठने के बाद प्रथम विजय का अभियान था। उस प्रकार के अभियान में राणा सांगा को न केवल सफलता ही प्राप्त हुई थी बल्कि राणा सांगा ने अजमेर को जीत ही लिया था। इस अजमेर आदि पर उस समय दिल्ली की सल्तनत का शासन था किन्तु दिल्ली दूर होने के कारण तत्कालीन शासक सिकन्दर लोदी का नियन्त्रण राजस्थान के अजमेर और चाकसू दोनो पर बहुत कमजोर पड़ गया था। उस प्रकार की दुर्बल परिस्थिति का लाभ विजय के रूप में राणा सांगा को प्राप्त हो गया।

उस विजय को प्राप्त करने के बाद भी राणा सांगा ने अजमेर पर अपना सीधे शासन नहीं स्थापित किया था। उन्होंने अपने अज्ञातवास के समय हर प्रकार की सहायता करने वाले कर्मचन्द्र पँवार को सबसे अधिक उपयुक्त समझा था। वैसा कर देने के कारण दो प्रकार के लाभ राणा सांगा को तत्काल प्राप्त हुए। एक तो दिल्ली सल्तनत को एक तीखी

सबक प्राप्त हो चली थी और दूसरे उसी के साथ कर्मचन्द्र पँवार के जिम्मे वहाँ की सत्ता कर देने के परिणामस्वरूप मेवाड़ की वह सीमा अपने आप सुरक्षित हो चली थी।

उस प्रकार जब राणा सांगा को अंदाजा हो गया कि दिल्ली सल्तनत के शासक सिकन्दर लोदी की पकड़ कमजोर हुई और उसके चलते राणा सांगा ने अजमेर को हथिया लिया तब राणा सांगा के हौसले और बढ़े और उन्होंने अजमेर से फिर चाकसू की ओर अपना विजय अभियान चला दिया था। उस प्रकार के विजय के अभियान के फलस्वरूप राणा सांगा ने चाकसू पर भी विजय प्राप्त कर लिया। उस चाकसू की विजय को पाने पर भी राणा सांगा ने वहाँ चाकसू में भी अपना प्रकट शासन नहीं जमाया था बल्कि उस चाकसू को पूरणमल की जागीर में जोड़ दिया। उस प्रकार के अभियान काल के बारे में इतिहासकार अहमद यादगार[28] ने उस तथ्य को उजागर किया है कि चाकसू पर विजय प्राप्त करने के बाद राणा सांगा ने वहाँ पर आबाद हुए सैय्यद–परिवार पर अत्याचार किए थे। किन्तु यह मात्र एक मिथ्या आरोप ही प्रतीत होता है। राणा सांगा जैसा हिन्दू शासक उस समय उस प्रकार की गलत और अमर्यादित गतिविधियों में सवाल ही नहीं था कि अपना मन लगाते।

अतः स्पष्ट है कि दिल्ली सल्तनत के तत्कालीन शासक सिकन्दर लोदी की पकड़ के कमजोर होने का लाभ राणा सांगा ने प्राप्त कर लिया था जिसके चलते राणा सांगा का राजस्थान के अजमेर और चाकसू दोनों पर अधिकार हो चला था। उस प्रकार के अपने तीव्र अभियान के चलते

राणा सांगा ने अपने मेवाड़ की सीमा का विस्तार अपने ढंग से कर दिया था। उन दोनों प्रकार के विजय अभियानों के द्वारा राणा सांगा की प्रतिष्ठा शासन सत्ता संभालने के प्रथम चरण में जम गयी थी और राणा सांगा का न केवल मेवाड़ के अन्तर्गत अपितु बाहर भी नाम प्रतिष्ठा को प्राप्त कर चला था। अतः सिंहासन पर आरूढ़ होते ही भाग्य ने राणा सांगा का पूरा का पूरा साथ दिया और वह अपनी सैन्य–शक्ति के प्रभाव के चलते उस अपने अभियान में सफल हो गए। उस प्रकार की विजय के चलते जहाँ उस मेवाड़ राज्य के बाहर उन राणा सांगा का नाम प्रसिद्ध हुआ था उसी क्रम में मेवाड़ के भीतर भी राणा सांगा की बहुत धाक जम चली थी और उनकी प्रतिष्ठा खूब बढ़ गई थी। सभी ने राणा सांगा का आकलन मेवाड़ के आकश में प्रभावशाली नक्षत्र के रूप में करना प्रारम्भ कर दिया था।

सांगा के उत्कर्ष की समीक्षा

इतिहासकारों का विचार है कि 1521 ई0 से 1526 ई0 तक राणा सांगा चरमोत्कर्ष का समय था। यह चरमोत्कर्ष राणा सांगा के हर प्रकार के पक्षों से संबन्धित था। उनके उस उत्कर्ष के समय में अनेक हिन्दू राजाओं, असरदार सरदारों और अनेकानेक अमीरों ने प्रसन्नमन से राणा सांगा के नेतृत्व को स्वीकार कर लिया था। उन सभी की वास्तविक भावना राणा सांगा के साथ रहती थी। उन सबों ने राणा सांगा के नेतृत्व में अपने संपूर्ण हित की सुरक्षा को समझ रखा था। कर्नल टाड के अनुसार राणा सांगा की सेवा में अपने मनसे उच्च श्रेणी के सात राजा, नौ राव और एक सौ चार सरदार लगे रहते थे। वास्तविकता तो यह थी कि राणा

सांगा ने अपने पड़ोस के राजपूत शासकों, मालवा और गुजरात के तत्कालीन शासकों और दिल्ली के सुल्तान इब्राहीम लोदी पर अपनी विजय प्राप्त कर लिया था और उस प्राप्त विजय के फलस्वरूप राणा सांगा ने अपने आपको राजपूत शासकों के मध्य अग्रणी रूप प्रदान कर दिया था। सामान्य जनता के मध्य राणा सांगा के प्रति बहुत आदर और सहानुभूति के भाव भरे पड़े थे। मेवाड़ की पूरी जनता राणा सांगा को हिन्दू धर्म और सभ्यता तथा संस्कृति के रक्षक के रूप में देखा करती थी। ऐसा प्रतीत होता था कि उस प्रकार का राजा अभी तक मेवाड़ को कभी उपलब्ध नहीं हो पाया था। जनता का वास्तविक आदर उसी कारण से राणा सांगा को बराबर प्राप्त होता था। सामान्य जनता तो राणा सांगा के प्रति वह भाव रखती ही थी किन्तु अन्य राजपूत शासक और सरदार भी उस समय राणा सांगा के कुशल नेतृत्व के कारण विश्वास करने लग गए थे कि मेवाड़ की धरती वर्तमान में राणा सांगा की उस प्रकार की अपार शक्ति और सूझ–बूझ वाले राजपूत शासक हों जो देर सबेर उचित समय का ध्यान रखते हुए शक्तिशाली दिल्ली की सल्तनत को कमजोर करते जायेंगे और एक समय ऐसा भी आयेगा कि राणा सांगा दिल्ली सल्तनत का अन्त करने में समर्थ होंगे और सम्पूर्ण उत्तरी भारत में हिन्दू साम्राज्य की स्थापना कर देंगे।

इस प्रकार राणा सांगा का अपना व्यक्तिगत प्रभाव था जिसके कारण मेवाड़ के अन्य अनेक शासकों में राणा सांगा भिन्न थे। उनके विचार, उनका स्वभाव, उनका जनता के प्रति अपार स्नेह, हिन्दू धर्म के प्रचार–प्रसार तथा आवश्यक सुधार के प्रति अपार लगाव और असीमित इच्छा

शक्ति वाला होना जैसे भाव राणा सांगा को हिन्दुस्तान के इतिहास में अमर कर दिये हैं। उन राणा सांगा के प्रति सभी इतिहास वेत्ता सहमत हैं कि वह राणा सांगा उच्च कोटि का शासक हुआ था। यदि बाबर के साथ खानवा के युद्ध में राणा सांगा की हार नहीं हुई होती अथवा राणा सांगा के उपर्युक्त सहयोगियों ने राणा सांगा को विष न दिया होता तो भी राणा सांगा अपनी शक्ति का फिर अर्जन कर लेते और कुछ समय के पश्चात् हिन्दुस्तान के इतिहास में राणा सांगा का कुछ और ज्वलन्त अध्याय अवश्य सम्बद्ध हो जाता। मुहम्मद हबीव खालिक अहमद निजामी का मानना है कि राणा सांगा राजस्थान के उत्तम कोटि के राजा थे जिनमें संघर्ष से जीवन यापन करने के साथ ही स्वयं भी अनेक प्रकार के संघर्षों को करने की क्षमता भी थी। उन्होंने ही अपने व्यक्तिगत प्रभाव के चलते राजस्थान में मेवाड़ की उत्तम सत्ता को स्थापित किया था। राणा सांगा ने अपने व्यक्तिगत शौर्य के बल पर ही मालवा और गुजरात के ऊपर भी अपनी महत्वपूर्ण धाक जमा दिया था। सभी राणा सांगा का लोहा स्वीकार करते थे कूटनीति और उच्च आदर्शों की दृष्टि से भी राणा सांगा एक उत्तम नेतृत्व से युक्त शासक थे। राणा सांगा अपनी निडरता और स्वाभाविक शूरता के कारण उस समय उत्तर भारत के अन्तर्गत बहुत ख्याति अर्जित कर चुके थे। यहाँ तक कि सभी को रौंदने और तहस नहस करने की क्षमता रखता हुआ मुगल सम्राट बाबर भी समझता था कि भारत की भूमि पर प्रभावशाली राणा सांगा का जब तक दमन नहीं कर दिया जायेगा तब तक उसको उत्तर भारत के ऊपर निर्बाध शासन को चलाने का अवसर कभी प्राप्त नहीं होगा और बाबर उन राणा सांगा के रहते कभी हिन्दुस्तान

के शासक के रूप में चैन[29] से नहीं रह सकता था। प्रो0 निजामी ने राणा सांगा की जो प्रसंशा किया है उसे कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता है। कोशकार सच्चिदानन्द भट्टाचार्य[30] ने राणा सांगा को महान योद्धा की उपाधि दिया है और उस समय के भारत वर्ष के समस्त राज्यों में राणा सांगा की बहुत प्रतिष्ठा को स्वीकार किया है। इसी क्रम में उल्लेखनीय है कि श्री भट्टाचार्य ऐसे कोशकार हुए हैं जिन्होंने संग्राम सिंह को वायमल्ला का पुत्र बताया है। अपने उस शासन–काल में महाराणा सांगा ने जो यश का अर्जन किया था उसे भारत के इतिहास के अन्तर्गत एक विशेष उदाहरण और आदर्श के रूप में स्वीकार किया जाता है।

सन्दर्भ–ग्रन्थ सूची

1. दिल्ली सुल्तनत, राजस्थान, पृष्ठ 61,
2. दिल्ली सुल्तनत, राजस्थान, पृष्ठ 61,
   सांगा राजस्थान का अत्यन्त महान राजा था। उसने अपना आरम्भिक जीवन अत्यन्त कठिनाइयों में व्यतीत किया था। अपने सगोमों से संघर्ष करते हुए कई बार पराजित हुआ था। विपत्तियों से निडर उसने अपने शत्रुओं पर अन्त में विजय प्राप्त की और राजस्थान में मेवाड़ की सर्वसत्ता स्थापित कर मालवा तथा गुजरात पर भी अपनी श्रेष्ठता की धाक जमाई।
3. Mewar Saga Chapter 4, page 38-

In 1519, SAnga routed Malwa's forces and took mohmud Sultan 11 prisoner and kept him in chittor for 6 months. While prisoner, the sultan was treated with great courtesy and them sent back home with an escort of 1000 horses.

4. Mewar Saga Chapter 4, page 38-

   Sanga faught 18 pitches batles against the Sultans of Delhi and Malwa. He inflicted acrushing defeat on Ibrahium Lodi at the bottle of Khatali in 1517. By way of revenge, Ibrahm sent another army against Mewar, which too was thrown back with heavy losses.

5. भारत की प्रसिद्ध लड़ाइयाँ, परिच्छेद 13, पृष्ठ 223

   यौवन के उन्माद में सांगा और पृथ्वीराज एक दूसरे के प्राणों का नाश करने पर उतारू हो गये। सूरजमल यह सब दृश्य देखता रहा। वह बीच में नहीं आया। तलवार की मार से दोनो भाई रक्त से नहा गए। उनके शरीरों पर बहुत से घाव हो गये ओर उन घावों से रक्त के फव्वारे छूट रहे थे।

6. Mewar Saga Chapter 111, page 18

   Sanga passed a few days with a goatherd in Marwar and was dismissed as too stupid to Tend his Cattle and precisely like our Alfred the great having in charge some cakes of flor was reproached with being more desirons of eating than tending them.

7. मेवाड़ के महाराणा और शाहंशाह अकबर, पृष्ठ 3

8. मेघदूतम्, उत्तरमेघ श्लोक 49,

   कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा नीचैर्गच्छत्युपरिच दशा चक्रनेमिक्रमेण।।

9. मृच्छकटिक, अंक 1, श्लोक 10

सुखं हिदुःान्यनुभूय शोभते, धनान्धकारेष्विव दीपदर्शनम्।

सुखान्तु यो याति नरो दरिद्रतां, घृतः शरीरेण मृतः स जीवति।।

10. Mewar Sanga, Chapt 111, page 12.

11. भारतीय समाज, अध्याय 3, पृष्ठ 126

Internal and External problems whether they are very simple but it is most difficult to wathc to face and to present an appropriate salution in teh each and every suroundings.

12. सभ्यता एवं संस्कृति, अध्याय–4, पृष्ठ 189

Culture is knkown by the management of ruling party, it shows the success of Ruler and wel cultured reign presents an ideal aspect of the past history which provides an attractive activities in the future.

13. महाराणा कुम्भा और उनका काल, अध्याय–7, पृष्ठ 167

कुम्भा के काल में जहाँ एक ओर महती साहित्यिक परम्परा का निर्माण हुआ वहीं दूसरी ओर कला–साधना से प्रसूत महती कला–परम्परा का निर्माण हुआ। वस्तुतः कला की दृष्टि से मेवाड़ अत्यन्त प्राचीन काल सेही समृद्ध ओर सम्पन्न रहा है।

14- Mewar Saga, Chapter 4, page 38

Under Sanga Mewar reached the acme of its glory and prosperty. He expanded his kingdom to the bank of Jamuna in teh north, to Malwa in the south, Sind in the west, the Arawalis in the east. A kingdom that yielded him a revenue of 10 cror rupees, 80,000 horses, seven Rajas fo the highest rank, 9 raos and 104 chief tains bearing tittle of Rawal and Rawat with 500 elephants, followed sanga in the battle.

15- Maharana Sanga, Chpater-5, Page 38

Sanga's country was surrounded by the Muslman Kingdom of Delhi, Malwa and Gujrat except towards the west where the Rathors were rapidly rising to power. With all there three Monarchies, Sanga had to wage wars, and it is due to his military genius that Mewar came out succesful in every one of them. Combinations were formed against him and he had to fight his emenic on all the three fronts at the same time, but his genius was equal to all emergencies. It has bee recorded to his glory that he not ouly vanquished them and extended his Kindom at their expen but made them respect the frontiers established by him.

16. टॉड लिखित मेवाड़ का इतिहास, परिशिष्ट 18, पृष्ठ 174

संग्राम सिंह न केवल शूरवीर और दूरदर्शी था बल्कि वह एक सुयोग्य शासक भी था। राणा कुम्भा के बाद मेवाड़ राज्य ने जो खोया था राणा संग्राम सिंह के अधिकार पाते ही राज्य ने उस प्राप्त कर लिया था।

17. टॉड लिखित मेवाड़ का इतिहास, परिशिष्ट 18, पृष्ठ 175

संग्राम सिंह के सिंहासन पर पैर रखते ही मेवाड़ ने अपनी उन्नति आरम्भ कर दी और कुछ समय के बाद वह भारत का चक्रवर्ती राजा माना गया।

18. वहीं

राज्य का अधिकार प्राप्त करने के पश्चात् राणा संग्राम सिंह ने अपनी सेना का संगठन बड़ी बुद्धिमानी के साथ किया और अपने सैनिकों को युद्ध की शिक्षा देकर उनको शक्तिशाली बानाया था। यही कारण था कि दिल्ली और मालवा के बादशाहों के साथ उस समय होने

वाले युद्ध में विजय प्राप्त करके शत्रुओं की सेना को पराजित कर दिया था। दिल्ली के बादशाह इब्राहीम लोदी ने दो बार संग्राम सिंह के साथ युद्ध किया और दोनो बार वह राणा संग्राम सिंह के द्वारा पराजित हुआ।

19. सामाजिक नियन्त्रण तथा परिवर्तन, अध्याय 4, पृष्ठ 55

Social Control is the process by which social order is estblished and maintained

20. Social Changes and Progreses Chapt.-7, page 378

21. Mewar Saga, Chpat.-4, Page 38

Sultan Muzzafer II of Gujrat invoded Sanga's Kingdom year after year only to be only defeated. Finally Sanga trounced Nizam Mulk a subedar of the Sultan of Gujrat and stormed and captured the stroghold of Ranthambor and Khander (near Jaipur)

22. राजस्थान का इतिहास अध्याय 3, पृष्ठ 105

वह युग घोड़ों का युग था। अद्वितीय गतिशीलता तथा अस्त्र सुसज्जित घुड़सवार सेना उस युग की महान आवश्यकता थी। परन्तु राजपूतों के पास न तो अच्छे अस्त्र–शस्त्र थे, न अच्छे घोड़े ओर न ही गतिशीतला थी। राजपूत अच्छे निशानेबाज थे परन्तु एक स्थान पर खड़े होकर ही वह ऐसा कौशल दिखा सकते थे, जबकि तुर्क सैनिक सरपट दौड़ते घोड़ों की पीठ पर बैठे ही निशाना साधने में दक्ष थे।

23. राजस्थान का इतिहास अध्याय 5, पृष्ठ 153

24. वहीं पर

25. दिल्ली सुल्तनत, राजस्थान पृष्ठ 75

सांगा राजस्थान का अत्यन्त महान शासक था। उसने अपना आरम्भिक जीवन अत्यंत कठिनाइयों में व्यतीत किया था और अपने सगोत्रों से संघर्ष करते हुए कई बार पराजित हुआ था। फिर भी विपत्तियों से निडर उसने अपने शत्रुओं पर अन्त में विजय प्राप्त की और राजस्थान में मेवाड़ की सर्वसत्ता स्थापित कर मालवा और गुजरात पर भी अपनी श्रेष्ठता की धाक जमाई। कूटनीति तथा उच्च आदर्श में वह उत्तम नेता थे। अपने समय का महान योद्धा होने के अतिरिक्त उसने महान शासक और राजनीतिज्ञ होने का भी परिचय दिया। यद्यपि 'खानवा' उसकी जीवनचर्या की दुःखद पराकाष्ठा सिद्ध हुई फिर भी अपने शत्रुओं के विरुद्ध युद्ध करते समय वह उत्तम नेता था। अपने निडर साहस तथा देशभक्ति के कारण सांगा आज भी भारतीय हितों का समर्थक तथा उसकी सभ्यता का संरक्षक माना जाता है।

26. भारतीय इतिहास कोश, पृष्ठ 458

संग्राम सिंह महान योद्धा था और तत्कालीन भारत के समस्त राज्यों में ऐसा कोई भी उल्लेखनीय शासक न था जो उससे लोहा ले सके।

27. भारतीय इतिहास कोश, पृष्ठ 458

****

चतुर्थ अध्याय

राणा सांगा ईडर, मालवा और गुजरात राज्य

चतुर्थ अध्याय

राणा सांगा ईडर मालवा और गुजरात राज्य

राणा सांगा का जैसा संग्राम सिंह नाम था, वैसे ही वह नामानुरूप, गुणों के स्वामी भी थे। वह संग्राम में वीर और बहादुर थे।[1] इन्होंने बुद्धि–बल और युद्ध कला–कौशल के द्वारा मेवाड़ राज्य की जो उन्नति की थी और भारतीय राजाओं तथा बादशाहों के सामने जिस प्रकार चित्तौड़ का मस्तक ऊँचा किया था उसी के परिणामस्वरूप भारत के गौरवशाली इतिहास में उनका नाम उँगलियों पर गिने जाने वाले महापुरुषों के रूप में सम्मान के साथ लिया जाता है। उन्होंने मेवाड़ के यश से सारे उत्तर भारत में चकाचौंध फैला दी। संग्राम सिंह ने जब मेवाड़ का राजभार सम्भाला, तब राज्य की आन्तरिक स्थिति ही शोचनीय नहीं थी बल्कि मेवाड़ चारो ओर से चुस्त और चालाक शत्रुओं से घिरा था।[2] दिल्ली में सुल्तान इब्राहीम लोदी, गुजरात में सुल्तान मुजफ्फरशाह और मालवा में सुल्तान महमूद का शासन था। अलग–अलग संघर्षो में इन सबका मुकाबला हुआ और तीनों को मेवाड़ के महाप्रतापी महाराणा के आगे नतमस्तक होना पड़ा। विषम परिस्थितियों में महाराणा सांगा ने कहीं कूटनीति के सहारे शत्रु को पराजित किया तो कहीं अपनी वीरता के बल पर अपनी विजय पताका फहराने में कामयाब रहे। इतिहासकार संग्राम सिंह की वीरता का परिचय देने के साथ उनकी उदारता, जिसमें वे शत्रु को परजित कर कैद करने के बावजूद छोड़ देते थे, की भरपूर प्रसंशा की है। इन युद्धो में राणा की विजय ने मेवाड़ की धाक पूरे देश में जमा दी।

इन विजयों से उत्तरी भारत का नेतृत्व भी उन्हें प्राप्त हो गया। पड़ोसी राज्यों की पराजय महाराणा की प्रतिष्ठा बढ़ाने में बड़ी सहायक बनी। वैसे तो दिल्ली सल्तनत के शासक निर्बल हो गये थे, फिर भी उनकी एक प्रतिष्ठा थी। वे देश के शासक माने जाते थे और उनकी सत्ता को उखाड़ फेंकने से राजनीतिक धुरी मेवाड़ की ओर घूम गयी और सभी शक्तियाँ देशी और विदेशी सांगा की शक्ति को ही मान्यता देने लगीं। यशस्वी महाराणा सांगा का काल मेवाड़ की उन्नति और शक्ति की चरम सीमा का समय था। अपनी इन अप्रत्याशित विजयों से राणा राजपूत संगठन के नेतृत्वकर्ता चुन लिए गये और उन के व्यक्तित्व में हिन्दू शौर्य की आभा दैदीप्यमान हो चली।[3]

धैर्य, साहस और शूरवीरता के प्रतीक सांगा अपने इन गुणों का परिचय प्रारम्भिक काल में ही कर दिये थे। अपने राज्याभिषेक के कुछ वर्षों बाद ही सांगा को ईडर राज्य के मामले में हस्तक्षेप करने तथा अपने समर्थक को ईडर का शासक बनाने का अवसर मिल गया।[4] उधर मालवा पर सुल्तान नसिरुद्दीन का शासन था, 1511 ई0 में उसकी मृत्यु के बाद मालवा की सल्तनत के लिए उत्तराधिकार संघर्ष आरम्भ हो गया। कुछ अमीरों के सहयोग से महमूद खिलजी द्वितीय, मालवा का सुल्तान बन गया परन्तु कुछ दिनों बाद ही अमीरों के दूसरे दल ने उसके छोटे भाई साहिब खाँ को सुल्तान बना दिया। राजपूत सरदार मेदिनीराय की सहायता से महमूद द्वितीय पुनः सुल्तान बन गया, इस पर विरोधी गुट ने दिल्ली तथा गुजरात से सहायता ली और मेदिनीराय ने साँगा से सहयोग माँगा। इस

प्रकार मालवा के सुल्तानों का अधिकांश समय अपने अस्तित्व को बचाये रखने में ही व्यतीत हुआ, और सांगा भी अपनी महत्वाकांक्षा को उच्च शिखर पर पहुँचाने में सफलता प्राप्त किए।

राणा सांगा की बढ़ती हुई शक्ति और दिनों दिन पड़ोसी राज्यों पर अधिकार से गुजारत का मुजफ्फरशाह द्वितीय अत्यधिक क्रोधित हो उठा और प्रतिशोध की आग में जल रहे सुल्तान ने मेवाड़ पर आक्रमण करने का निश्चय किया। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने लम्बी चौड़ी भूमिका के साथ चुनिन्दे सेनानायकों और सैनिक दस्तों को भेजा, यद्यपि छिट–पुट जगहों पर इन दस्तों को सफलता मिली लेकिन वास्तविक लक्ष्य 'मेवाड़' को विजित करने में गुजराती सेना कामयाब न हो सकी।

राणा सांगा और ईडर राज्य

अपने विशिष्ट व्यक्तित्व और कृतित्व से ख्याति प्राप्त कर रहे राणा सांगा निरन्तर प्रगति के मार्ग पर अग्रसर थे। इसी कारण अल्प समय में ही पड़ोसी राजपूत राज्य व दिल्ली सल्तनत इनके बुद्धि–बल का लोहा मान चुकी थी। राज्याभिषेक के कुछ वर्षों के बाद ही पड़ोसी राज्य ईडर में उन्हें हस्तक्षेप का अवसर प्राप्त हुआ। राजपूतों को विरासत में मिली आपसी प्रतिद्वन्दिता ईडर राज्य में पल्लवित हो रही थी वहाँ उत्तराधिकार के लिए संघर्ष अपने चरम पर था। ईडर में साँगा के प्रबल समर्थक और प्रशंसक रायमल भी गद्दी के लिए प्रयत्नशील थे। इन्हें सिहासनासीन करना सांगा के लिए प्रतिष्ठा की ही बात नहीं थी, बल्कि उनका नैतिक कर्तव्य भी था। इसकी पूर्ति के लिए राणा संग्राम सिंह ने ताकत के साथ रायमल को ईडर की गद्दी पर बैठा दिया लेकिन वह स्थायी न रह

सका। आन्तरिक लोगों ने वाह्य सहायता माँगी जिसमें गुजरात के सुल्तान मुजफ्फरशाह द्वितीय को वरीयता मिली। इसने ईडर की आन्तरिक कलह का लाभ उठाया और अपने सेना नायकों को भेजकर अपने समर्थक को ईडर की गद्दी पर बैठा दिया और सांगा को अपमानित किया। इस बात की जानकारी जब सांगा को मिली वह पूरे जोश के साथ ईडर पर आक्रमण किये और विजित कर अपने समर्थक को सौंप दिये।

ईडर के राजा मान की मृत्यु के बाद उसका बड़ा पुत्र सूरजमल उत्तराधिकारी बना।[5] परन्तु अट्ठारह महीने बाद ही उसकी मृत्यु हो गयी। उसका लड़का रायमल अभी नाबालिग था, अतः सूरजमल का छोटा भाई भीम ईडर का शासक बन गया उसके बाद भीम का लड़का भारमल सिंहासन पर बैठा। अब तक सूरजमल का लड़का जो पिता की मृत्यु के समय नाबालिग था, अब अपने को उत्तराधिकारी बनने के योग्य समझने लगा, इसने उत्तराधिकार को चुनौती दी और सांगा से सहायता की याचना की, सांगा सही समय पर चहुँच कर भारमल को परास्त किये और रायमल को गद्दी पर प्रतिष्ठित कर दिये। उधर 1515 ई0 में भारमल ने गुजरात के सुल्तान मुजफ्फरशाह का आश्रय लिया। उसने अहमद नगर के अमीर निजामुद्दीन को भारमल की सहायता को भेजा, जिसने रायमल को परास्त कर भारमल को सिंहासन पर बिठाया।[6]

साँगा का ईडर राज्य पर आक्रमण और विजय

रायमल ईडर की गद्दी से पदच्युत होने के बाद भी नैराश्यपूर्ण जीवन व्यतीत न करके आशा व उत्साह के साथ छापामार युद्ध जारी रखा



विजय पताका फहराते हुए राजपूत

था। ईडर पर गुजरात के सुल्तान के आदेशानुसार अहमद नगर के निजाम–उल–मुल्क ने भारमल को ईडर के सिंहासन पर बैठा दिया और साथ ही अपने एक अधिकारी नसरत–उल–मुल्क को भारमल की सहायतार्थ ईडर छोड़ गया। रायमल ने एक जोरदार आक्रमण किया और ईडर पर अधिकार जमा लिया। इसमें ईडर में नियुक्त बहुत से मुस्लिम सैनिक मारे गए। जब इस बात की जानकारी गुजरात के सुल्तान को मिली तो वह रायमल के इस कृत्य से बहुत ही क्रोधित हुआ और ईडर पर चढ़ाई कर दी। रायमल अचानक हुए इस आक्रमण को न तो समझ पाया और न ही इस आक्रमण का सामना करने के लिए वह तैयार ही था। परिणामतः रायमल को पुनः पहाड़ों की शरण लेनी पड़ी। गुजरात वापस जाते समय सुल्तान ने अपने एक अमीर को ईडर सौंपकर वापस लौट गया। गुजरात के सुल्तान का रायमल को सिंहासन से हटाना राणा सांगा के स्वाभिमान के विपरीत था। रायमल को पुनः सिंहासनासीन करना सांगा के लिए आवश्यक हो गया था।

मेवाड़ से सेना सहित राणा सांगा सिरोही, डूँगरपुर, मारवाड़ होते हुए ईडर पहुँचे। डूँगरपुर के राजा और मारवाड़ के शासक राव गांगा भी राणा सांगा की सहायता में ईडर पहुँचे। जब सांगा की गतिविधियों की जानकारी ईडर में नियुक्त मुबारिज–उल–मुल्क को मिली तो वह घबरा गया और गुजरात के शासक से सेना की सहायता माँगी लेकिन समय पर सेना न पहुँच सकी। और इधर पराक्रमी राणा सांगा ईडर पर अधिकार जमा लिये और ईडर को पुनः रायमल को सौंप दिये। भागती हुई सेना का

पीछा करते हुए सांगा अहमदनगर की तरफ बढ़े और घमासान युद्ध के बाद राणा सांगा अहमदनगर दुर्ग पर अधिकार कर लिये।[7]

वास्तव में मेवाड़ के बढ़ते हुए प्रभाव तथा मालवा में राजपूतों की शक्ति गुजरात के मुजफ्फरशाह द्वितीय को पसंद नहीं आई और वह सांगा से युद्ध के लिए बहाना ढूंढ रहा था।[8] पूर्व मे वर्णित ईडर के उत्तराधिकारी के प्रश्न पर यह अवसर उत्पन्न हो गया था। 1517 ई0 में रायमल ने राणा सांगा की सहायता से ईडर पर पुनः अधिकार कर लिया था। बाद में 1520 ई0 में राणा ने ईडर पर आक्रमण करके निर्णायक विजय प्राप्त की।

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि राणा सांगा की शक्ति उस समय चरमोत्कर्ष पर थी यही कारण था कि पड़ोसी राज्य अपने अस्तित्व पर खतरा महसूस कर रहे थे। परिणामतः वे राजनीति, कूटनीति, विश्वासघात के सहारे स्वयं को बचाने में लगे हुए थे। निश्चित रूप से राणा सांगा एक यशस्वी योद्धा, कुशल सेनानी, संयमी संगठनकर्ता और विवेकी राजनीतिक थे। स्वभाव एवं शिक्षा से भी वह महत्वाकांक्षी थे। पूर्वजों के परंपरागत गौरव तथा शान शौकत से असन्तुष्ट उन्होंने अपने राजाओं और रायों को सिसौदियों के गुलामी झण्डों के नीचे एकत्र कर अपने वंश की प्रतिष्ठा में चार चाँद लगा दिए।[9]

राणा सांगा और मालवा संघर्ष

दिल्ली राज्य की कमजोरियों का लाभ उठाकर अनेकों राजा और नबाव उसकी अधीनता के बन्धनों को तोड़कर अपने राज्यों को स्वतन्त्र बना लिए थे। दिल्ली सल्तनत से अलग पृथक होने वाले राज्यों में मालवा

और गुजरात राज्य अधिक शक्तिशाली थे[10] तथा स्वतन्त्र होने के बाद उन राज्यों ने अपना चहुमुँखी विकास आरम्भ किया और बड़ी ही तेजी के साथ अपने राज्यों का विस्तार भी शुरु किया। पड़ोसी राज्य के जो भी राजा सुस्त ओर निर्बल दिखाई दिया जहाँ भी उनमें आपसी फूट दृष्टिगत हुई उस राज्य पर तत्काल हमला करके अपने राज्य में शामिल कर लिया। इनकी यह नीति इन्हें पड़ोसी राज्यों की स्वामी बनाती गयी।

राणा संग्राम सिंह के सिंहासनारोहण के पूर्व भी मालवा राज्य ने अपनी वक्रदृष्टि कुम्भाकालीन वैभवसम्पन्न राज्य चित्तौड़ पर डाल दी थी। जिस नीति का पालन मालवा का महमूद खिलजी कर रहा था उससे भी बढ़–चढ़ कर अपने राज्य के विस्तार का प्रयास महाराणा कुम्भा कर रहे थे। मालवा को यह बात सदैव खटकती रहती थी कि हिन्दू राजा की उन्नति कैसे हो रही है। इस तरह से कुम्भा के राज्य–वैभव को रोकने के लिए महमूद ने युद्ध आरम्भ किया लेकिन पराजित हुआ। पुनः वह अपने षड्यन्त्रों को पोषित कर युद्ध क्षेत्र में आया लेकिन राजपूतों की शूरवीरता और पराक्रम के आगे वे टिक न सके।

महाराणा सांगा के काल में मालवा का शासक महमूद खिलजी द्वितीय था। इसने अपनी स्थिति राजपूत सरदार मेदिनीराय की सहायता से सृदृढ़ बना ली थी,[11] लेकिन मानसिक रूप से अस्थिर व निर्णय लेने में अक्षम महमूद षड्यन्त्रकारियों के वश में आ गया और स्वयं को जाल में फँसाने के लिए गुजरात के शासक के पास गया और उसकी मदद से मालवा पर आक्रमण किया जिसमें उसे पराजय का मुँह ताकना पड़ा और

मेदिनीराय जो कि सांगा की सहायता ले रहे थे सांगा ने महमूद को कैद कर लिया किन्तु राजपूतों की उदारता का परिचय देते हुए इन्होंने महमूद को ससम्मान वापस भेज दिया।

खानदेश के उत्तर में मालवा का राज्य था। मालवा के स्वतन्त्र शासकों के वंश का संस्थापक दिलावर खाँ था, जो पहले दिल्ली के सुल्तान फिरोजशाह तुगलक का एक जागीरदार था। तैमूर के हमले के बाद जो अशांति मची उसमें दिलावर खाँ स्वतन्त्र हो गया। गोरी वंश का 1435 ई0 में अन्त हो गया और गोरी शासक का मन्त्री महमूद खाँ, महमूद खिलजी के नाम से बादशाह बन बैठा।[12] अपनी महत्वाकांक्षा के चलते वह पड़ोसी राज्यों से खासकर गुजरात और मेवाड़ से बराबर संघर्ष करता रहा। खिलजी वंश के चौथे शासक महमूद द्वितीय (1510–31) के शासनकाल में राजपूतों ने मालवा की राजशक्ति को अपने हाथों में कर लिया किन्तु राजपूतों का यह प्रभाव मुस्लिम शक्तियों की आँखों में खटकता था। जब महमूद शाह बशिष्टपुर में था तो मेदिनीराय (रायचंद पुरबिया) एक परित्यक्त शासक था, जिसका कोई समर्थक न था। ऐसे संकट के समय में रायचन्द पुरबिया और उसके राजपूत महमूदशाह की सहायता के लिए आए। राजपूतों के आगमन से उनकी स्थिति यथोचित सुधर गई और उसकी आशाओं को पुनर्जीवन मिला। महमूदशाह ने रायचंद पुरबिया को मेदिनीराय की उपाधि दी और उसे अपना मुख्य परामर्शदाता बनाया।[13] मेदिनीराय की मदद से महमूदशाह पुनः मालवा का शासक बन

गया लेकिन यह शान्ति व्यवस्था आन्तरिक षड्यन्त्रकारियों के चलते स्थायित्व को न प्राप्त कर सकी।

मेदिनीराय की कर्तव्यनिष्ठा और मालवा के षड्यन्त्र का शिकार महमूद खिलजी द्वितीय सत्ता में था तो भी वास्तविक शक्ति मुसलमानी सामन्तों के हाथों में थी जो महमूद को अपने हाथ की कठपुतली की तरह रखना चाहते थे। जब भी मुस्लमानी सामन्त महमूद को खुलकर चुनौती देना शुरू किए तो वह माण्डू से भाग गया। यह खुली लड़ाई का संकेत था। ऐसा करना खुला विद्रोह था। महफीज खान के सामन्तों ने अपने भाई राजकुमार साहिबखान के हाथों में शासन की कमान दे दी और घोषणा किया कि वह मालवा का सुल्तान होगा। राजा मेदिनीराय जो मालवा का शक्तिशाली सरदार था वह सुल्तान की सहायता के लिए आया।

मेदिनीराय की भरपूर सहायता से महमूद खिलजी अपने जीवन और सिंहासन को उसकी कर्तव्यनिष्ठा ओर उसकी वीरता के प्रति ऋणी हो गया। सुल्तान ने राजधानी की तरफ कदम बढ़ाया तो विद्रोही शक्तियों ने उनका विरोध किया जिसका संचालक राजकुमार साहिबखान था। फरिश्ता कहते हैं– ''भाग्य का निर्णय मेदिनीराय और राजपूतों की पैदल सेना और उसके शौर्य आचरण के द्वारा अन्त में हो गया।[14]''

मेदिनीराय सुल्तान की सहायता के लिए 40 हजार राजपूतों का संगठन कर महमूद खिलजी को सत्ता दिलायी और अब मेदिनीराय मालवा का प्रधानमंत्री बन गया था। उन्होंने न सिर्फ विद्रोही समन्तों को पीछे ढकेला बल्कि पूरे राज्य में राजा की शक्ति स्थापित की।[15] कुछ अप्रभावित

लोगों में से जो उसकी बढ़ती हुई शक्ति और प्रतिष्ठा से द्वेष करते थे और प्रतिबन्धित होने की वजह से क्रुद्ध होते थे क्योंकि अब उनकी शक्ति कमजोर हो गयी थी। वे मेदिनीराय के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने लगे और सहायता के लिए दिल्ली के सुल्तान सिकन्दर लोदी और गुजरात के सुल्तान मुजफ्फरशाह द्वितीय से सहायता के लिए अपील की। उनसे यह कहा कि मालवा पर हिन्दू लोगों ने अधिकार प्राप्त कर लिया है और इसकी वजह स्वयं सुल्तान हैं। चन्देरी के गवर्नर बोहजत खान ने विद्रोह किया और साहिबखान जो सुल्तान मुहम्मद खिलजी द्वितीय के विद्रोही भाई को आमन्त्रित किया कि चन्देरी में वह विद्रोहियों की अगुवाई करे। चन्देरी पहुँचकर साहिब खान, बोहजतखान और मंसूर खान से मिला जो मालवा के दूसरे विद्रोही सामन्त थे। सुल्तान मुहम्मद की उपाधि ग्रहण कर बोहजत खान उसका मन्त्री बना। विद्रोहियों की अपील के जबाव में सुल्तान सिकन्दर लोदी ने इमादुल मुल्क और सईद खान की आज्ञा से मालवा के सिंहासनारूढ़ साहिबखान की सहायता के लिए 12 हजार घोड़े की सेना की शक्ति भेजी।[16]

गुजरात के सुल्तान मुजफ्फरशाह द्वितीय, भिल्सा के गवर्नर सिकन्दर खान ने मौके की नजाकत देखकर देश को लूटना शुरू कर दिया। इस विषम परिस्थिति में राजा मेदिनीराय ने शत्रुओं से जमकर लोहा लिया और थोड़े ही समय में उन पर विजय भी प्राप्त कर ली। इस प्रकार चारों ओर से परेशानियों से घिरे मालवा को शत्रुओं से मुक्ति मिल गयी। मलिक लाडो के निर्देशानुसार भिल्सा के गवर्नर सिकन्दर का सामना करने के

लिए मेदिनीराय सुल्तान महमूद के साथ गुजरात की शक्तियों के खिलाफ चल पड़ा जो अभी माण्डू से बहुत दूर नहीं पहुँचा था। मुजफ्फरशाह पर आक्रमण किया गया और भारी मार–काट के साथ हरा दिया गया। वह अहमदाबाद भाग गया। इस प्रकार मेदिनीराय चन्देरी पर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ा। उसकी कूटनीति उसके पद से कम न थी जिसने कि अन्त में विद्रोहियों को धूल चटा दिया।

मालवा के सैन्यदल के आगे बढ़ने का समाचार सुनकर सुल्तान सिकन्दर लोदी इस समय अतिरिक्त सैन्य दल रखने में असमर्थ हो गया था। इसका कारण उसने अपने सैनिकों को पीछे हटने का आदेश दिया। मुहाफिजखान भी युद्ध में मारा गया। बोहजत खान और साहिबखान ने शान्ति की प्रार्थना की। इस प्रकार से मेदिनीराय ने सुल्तान महमूद खिलजी के शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर ली और मालवा में बिना किसी विवाद के अपनी शक्ति के बल पर प्रभुत्व स्थापित कर लिया।

निराश और हारे हुए सामन्तों ने अब थक हार कर सुल्तान महमूद के दिमाग में मेदिनीराय के खिलाफ अविश्वास का जहर घोल दिया। अब वे लोग उस कमजोर और असमर्थ शासक को बहकाने में सफल हो गये थे और उनके राजपद के सहयोगी और मुख्य सहायक की हत्या करने के कगार पर पहुँच गए थे। सुल्तान ने अपने गद्दी पर पहुंचाने वाले सहायक व समर्थ राजपूत मेदिनीराय को मारने की कोशिश की लेकिन अपने काम में सफल न हो सका। मेदिनीराय घायल होकर अपने निवास स्थान पर भाग गया। सुल्तान के इस दुष्कृत्य का दण्ड देने के लिए और मेदिनीराय की सहायता के लिए सेना ने मेदिनीराय को बुलाया लेकिन मेदिनीराय

अपनी उदारता, वीरता और गम्भीरता का परिचय देते हुए न केवल महमूद को क्षमा कर दिया बल्कि लगातार उसकी सेवा भी की। निर्णय लेने में अक्षम और मानसिक रूप से दुर्बल सुल्तान स्वामिभक्त मेदिनीराय की इस उदारता और सहनशीलता की परख न कर पाने के कारण माण्डू छोड़कर गुजरात की ओर भाग गया। किशना नाम के राजपूत की सहायता से गुजरात के सीमावर्ती क्षेत्रपर वह भकोरा गाँव पहुँचा[17]। जहाँ गुजरात के गवर्नर ने गर्मजोशी से उसका स्वागत किया और अहमदाबाद में सुल्तान मुजफ्फरशाह स्वयं अपनी सेना के साथ महमूद खिलजी द्वितीय को सिंहासन पर आसीन करने के लिए आगे बढ़ा। महमूद खिलजी की इस मूर्खता पर मेदिनीराय ने दुःख प्रकट किया।

महमूद खिलजी द्वितीय द्वारा प्रस्तुत किया गया यह कृत्य निश्चित रूप से उसकी कमजोरी का द्योतक है और यह बात भी सिद्ध होती है कि उसके अन्दर नेतृत्वकर्ता का कोई गुण विद्यमान नहीं था। जहाँ तक मेरा विचार है यदि महमूद खिलजी स्वविवेक से कार्य करता तो इतने कर्मठ, स्वामिभक्त व वीर राजपूत की मदद से वह न केवल अपने राज्य की समृद्धि का उदाहरण बनता वरन् पड़ोसी राज्यों को विजित कर एक छत्र राज्य स्थापित करने में भी सफल होता। मेदिनीराय की योग्यता और राज्य के प्रति उसके योगदान और समर्पण की भावना को महमूद का न समझ पाना ही उसके पतन का कारण सिद्ध हुआ। यह बात स्पष्ट है कि जिस पद की लालसा को लिए हुए महमूद दर–दर भटक रहा है और सहयोग के लिए दूसरे से प्रार्थना कर रहा है, उस पद का स्वामी तो वह पहले से

ही है और साथ में उस पद का रक्षक एक समर्थवान स्वामिभक्त राजपूत है। बहकावे में आकर महमूद ने न केवल अपने पद को खतरे में डाल दिया बल्कि स्वयं को एक महामूर्ख होने का परिचय भी दिया।

इन बातों से मेदिनीराय को ज्ञात हुआ कि महमूद का सुधार नहीं हो सकता। मेदिनीराय ने सेना को किले की रक्षा के लिए माण्डू में छोड़ दिया। जनवरी 1518 ई0 में गुजरात का सुल्तान सेना सहित मालवा की तरफ बढ़ा, महमूद द्वितीय भी उसके साथ था। माण्डू के किले की रक्षा का दायित्व अपने पुत्र व सेना को सौंपकर खुद राणा सांगा से सहायता प्राप्त करने के लिए मेवाड़ चल पड़ा और यह भी कहा कि एक मास तक किसी भी कीमत पर तुम दुर्ग की रक्षा करना तब तक मैं सहायता लेकर आ जाऊँगा।[18] दूसरी तरफ मुस्लिम सेना माण्डू पहुंचते ही दुर्ग को चारों तरफ से घेर लिया। मेदिनीराय के पुत्र ने अपने पिता द्वारा कही गयी बात को सन्देश के रूप में मुजफ्फरशाह के पास भेजा लेकिन मेदिनीराय की गतिविधियों को जानकर संदेशे को ठुकराते हुए दुर्ग पर आक्रमण कर अधिकार कर लिया। इसमें दुर्ग के प्रहरी सैनिकों सहित मेदिनीराय का पुत्र भी युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हुआ।

उधर मेदिनीराय के अनुरोध पर महाराणा ने केवल यह प्रतिज्ञा की कि वह अपने सीमावर्ती क्षेत्र में ही बढ़ेंगे और विकास की प्रतिक्षा करेंगे।[19] मार्ग में ही उन्हें सूचना मिली कि माण्डू दुर्ग पर मुस्लिम सेना का अधिकार हो गया है और प्रमुख राजपूत सरदार मारे जा चुके हैं। ऐसी परिस्थिति में सांगा बुद्धिमानी से काम लिए और माण्डू जाने के बजाय उत्तरी मालवा के

कुछ क्षेत्रों को हस्तगत कर लेने का निश्चय किया क्योंकि मालवा और गुजरात की सेनाएं इकट्ठी हो गयीं थी और एक साथ इनसे टक्कर लेना न्यायसंगत व बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं था। इस तथ्य से यह भी प्रतीत होता है कि सांगा में न केवल एक कुशल राजनीतिक, कूटनीतिज्ञ व राजनेता का गुण विद्यमान था, अपितु उनमें एक मनोवैज्ञानिक होने का गुण भी स्पष्ट रूप से झलकता है। सामने वाले के मन की स्थिति को भांपकर और उसकी कमजोरियों या फिर मजबूतियों को देखकर ही ये किसी भी कार्यवाही को आमली जामा पहनाते थे, वास्तविक रूप देते थे। जैसा कि स्पष्ट है कि माण्डू के दुर्ग को जीतने में उस पर अधिकार स्थापित करने में जीत का जश्न और जुनून छाया हुआ था और वे उत्साहित भी थे ऐसे में सांगा वस्तुस्थिति का अवलोकन किये और समय की नजाकत को देख कर अपना कार्य किए। इसी का परिणाम यह हुआ कि वे अपने समय के सर्वश्रेष्ठ शासक सिद्ध हुए।

सांगा माण्डू की ओर न जाकर उत्तरी मालवा के सुप्रसिद्ध दुर्ग गाणरोण की ओर कूच किये और दुर्ग से मालवा के अधिकारियों को खदेड़कर अपना कब्जा जमा लिए।[20] सांगा ने इस दुर्ग को मेदिनीराय को सौंप दिये तथा गागरोण, चन्देरी और कुछ और परगनाओं को भेंट कर दिए। मेदिनीराय का पुत्र भीमराज गागरोण में अपने निवासस्थान पर चला गया।[21] सुल्तान मुजफ्फरशाह मालवा में महमूद खिलजी की सहायता के लिए आसफखाँ की जिम्मेदारी में एक बड़ी सेना छोड़कर गुजरात वापस लौट गया।

डॉ0 उपेन्द्रनाथ डे का मत है कि गुजरात की सहायता से माण्डू के सिंहासन को पुनः प्राप्त करने के उपरान्त भी महमूद खिलजी द्वितीय को मेदिनीराय की तरफ से भय बना रहा।[22] महमूद खिलजी अब राजपूतों के शौर्य–बल से परिचित हो चुका था वह जानता था कि मेदिनीराय अपने परिवार के सर्वनाश का बदला लेने के लिए जरूर आक्रमण करेगा। इस भय से अपनी सुरक्षा चिर स्थायी बनाने के लिए वह गागरोण की तरफ बढ़ा। सुल्तान महमूद एक राजकुमार था जो केवल कमजोर और अयोग्य ही नहीं था बल्कि वह सामान्य सूझ–बूझ, राजनीतिक दृष्टि और निर्णय में भी शून्य था।[23] शायद यही कारण था कि एक मजबूत सत्ता का स्वामी रहते हुए भी वह कमजोर था। उसके उत्साह का एक दूसरा कारण यह भी था कि गुजरात के सुल्तान के द्वारा उसकी सुरक्षा के लिए जो सैनिक छोड़े गये थे उनकी उपस्थिति से प्रोत्साहित होकर 1519 ई0 में वह गागरोण की ओर अपने सैनिक दस्तों के साथ बढ़ चला। मेदिनीराय को ज्यों ही उसके इस अभियान की जानकारी मिली वह साँगा को सूचित किया। इस बार महाराणा जरा भी विलम्ब न करते हुए राववीरमदेव, मेड़ता के राठौर द्वारा शक्ति इकट्ठा करके आगे बढ़े और आसफखाँ के नेतृत्व में गुजराती सैनिकों के साथ सुल्तान महमूद से मिले। सुल्तान की सेना भले ही गुजराती सैनिकों से उत्साहित थी लेकिन रणभूमि में बहादुरी के साथ मर मिटने वाले राजपूतों के सामने पल भर भी न टिक सकी। सुल्तान के बहुत सारे अधिकारी मारे गये और सेना लगभग नष्ट हो गयी। आसफखाँ

का पुत्र भी मार दिया गया। स्वयं आसफखाँ सुरक्षा की खोज में लग गया।

युद्ध में घायल और रक्त–रंजित सुल्तान को बन्दी बना लिया गया और महाराणा के खेमें में लगाया गया। कैम्प में सावधानी पूर्वक और उचित तरीके से उपचार करके उसे चित्तौड़ छोड़ दिया गया जहाँ वह तीन माह तक कैद रहा।[24] चित्तौड़ में उसे हर आराम दिया गया। जब वह पूर्णतः स्वस्थ हो गया तो विशाल हृदय वाले महाराजा उसे उच्च सम्मान के साथ ने केवल उसे मुक्त कर दिये बल्कि उसे उसके क्षेत्र को भी दे दिए और मजबूत राजपूतों की सुरक्षा में उसे माण्डू भेज दिए।[25]

महाराणा सुल्तान महमूद से बड़ी विनम्रता और मित्रता के साथ व्यवहार करते थे। महाराणा के इस विनीत भाव से सुल्तान खुशी से भर गया। सुल्तान ने महाराणा को नजराना भेंट किया। महाराणा भी सुल्तान के पुत्र को उसके भविष्य में अच्छा आचरण करने के उद्‌देश्य से चित्तौड़ में बंधक बना कर रख लिए थे ताकि समय आने पर सुल्तान द्वारा की गयी गलती और वीर महारणा द्वारा दी गयी क्षमा की यादें दिलाई जा सके।

महाराणा की इस क्षमा की भावना को एक उच्च नीति के रूप में चित्रित करना कठिन होगा। यद्यपि इतिहासकार अबुल फजल महाराणा की अत्यधिक प्रसंशा करते हैं। तबकाते अकबरी का कट्‌टर लेखक निजामुद्‌दीन अहमद महाराणा के इस कार्य की प्रशंसा अद्वितीय दानशीलता और प्रतिष्ठा के रूप में करता है। इसने लिखा है कि–

''लड़ाई में विजय पाने के बाद दुश्मन को कैद करके पीछे उसको राज्य दे देना यह काम मालूम नहीं कि किसी दूसरे ने किया हो।''[26] राजपूतों की परम्परागत उदारता का पालन करते हुए महाराणा इस महान और उदाहरणीय कृत्य को सम्पन्न किए थे। लेकिन मिराते सिकन्दरी जैसे ग्रन्थ का मानना है कि ''सांगा ने दूसरे मुस्लिम शासकों के सम्भावित प्रतिशोध से भयभीत होकर महमूद खिलजी को छोड़ दिया।[27]''

ऐतिहासिक ग्रन्थ मिराते सिकन्दरी के इस विवरण में सत्य का एक अंश भी दृष्टिगत नहीं होता है। इस सम्बन्ध में मेरा विचार है कि ऐसे ग्रन्थ पक्षपाती भावना से लिखे गये हैं जो न केवल वैमनस्यता को जन्म देते हैं बल्कि इतिहास के पन्नों को भी धूमिल करने में सहायक होते हैं। कोई भी इतिहास पुरुष अपने देश और स्वाभिमान के लिए ही प्राणों को न्योछावर करना स्वीकार किया है। ऐसे में उसे नकारात्मक पक्ष देना न्यायसंगत नहीं होगा। वस्तुतः महाराणा सांगा जैसे दूरदर्शी योग्यवीर और उदार ह्रदय के स्वामी के लिए इस विवरण को मान्यता मिलना शायद ही कोई इतिहासविज्ञ स्वीकार करे।

वास्तव में राजनीतिक परिदृश्य से राजपूतों द्वारा बरती गई यह उदारता राष्ट्र के लिए हानिकारक सिद्ध हुई। एक सच्चा राजपूत राजनीतिक चीजों के बारे में नजर डालने में अक्षम होता है वह एक वीर पुरुष होता है न कि राजनीति ज्ञ ? वीरता ही उसका व्य वसाय है, उसका आदर्श है– ''युद्ध में ठीक तरह से मर जाना न कि इसे जीतना।''

सच्चे राजपूत का एक उद्देश्य यह है कि वह अपनी माँ के दूध को ज्यातिर्मय करे। वीरता के काम को करे और गौरवमयी मृत्यु प्राप्त करे न कि युद्ध को कौशल, दाँव–पेच या नीति के द्वारा जीत हासिल करे। बाबर ने भी अपनी आत्मकथा तुजुक–ए–बाबरी में राजपूतों के इस व्यवहार की चर्चा किया है।[28]

एक सच्चा क्षत्रिय (योद्धा) कभी भी कमर के नीचे या पीछे वार नहीं करता है और आक्रमण करने से पहले शत्रु को चेतावनी देता है। इस शिक्षा का आदर्श यह है कि उनकी आत्मा आध्यात्मिक है न कि भौतिक। वे दूसरे राष्ट्रों, जातियों को प्रेरित करने की अपेक्षा स्वयं उच्च और उदार होते हैं वे व्यक्ति को एक सच्चरित्र के रूप में प्रस्तुत करते हैं। लेकिन वे व्यक्ति को एक सफल व्यापारी नहीं बना पाते।[29] शत्रु को षाष्टांग दण्डवत् की मुद्रा में बचाकर रखना हिन्दू घुड़सवारों का धर्म है। कर्नल टाड कहते हैं कि–

''वह उन सभी सिद्धान्तों का अच्छी तरह से पालन करते हैं, वे गम्भीर परिणामों की चिन्ता नहीं करते जो राजनीतिक विचारहीनता से सम्बन्धित होती है। जब भी मौका आता है वह अपनी उदार प्रतिष्ठा और दानशीलता जो युद्ध में उनकी वीरता से मिलान करती है प्रदर्शित कर देते हैं। स्वयं के प्रति उपेक्षा दिखाते हैं इस आशा में कि वे एक उदार व्यक्तित्व का बन जायेंगे और वंशज उनकी प्रशंसा करेंगे।[30]''

शत्रु के प्रति उदारता जिसकी शत्रुता अशमनीय हो, जिसकी न बुझने वाली नफरत हो और जिसके आदर्श निम्न हों, जिसका केवल एक

उद्देश्य है कि जो भी उनका सामना करे उन्हें बर्बाद कर दे उनके चरित्र का यह गुण सम्पूर्ण इतिहास में मिलता है। लगातार मानवता के बुरे उदाहरणों से सम्पूर्ण इतिहास भरा हुआ है।

कुछ इतिहासकार महाराणा द्वारा कैद किये गये महमूद खिलजी को मुक्त कर देने की नीति की कड़ी आलोचना करते हुए राजपूतों के लिए हानिकारक बताए हैं तो कुछ इसके विपरीत भी अपने तर्क देकर इसे दूरदर्शिता का अनूठा कदम स्वीकार करते हैं। डॉ0 ओझा और हरविलास शारदा महाराणा के इस कदम को जहाँ एक ओर घातक मानते हैं वहीं दूसरी ओर डॉ0 गोपीनाथ शर्मा का मानना है कि–

''राणा का ऐसा करना बुद्धिमानी का द्योतक है। जब वह दूरस्थ माण्डू पर अपना अधिकार नहीं रख सकते थे तो वह ऐसी उदारता से क्यों शत्रु को जीतते। कम से कम मालवा के सुल्तान पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर महाराणा ने गुजरात के सुल्तान को भी निर्बल बना दिया। इस मैत्री सम्बन्ध से गुजरात–मालवा के गुट की सम्भावना कम हो गयी। मेदिनीराय को अपना आश्रित बनाकर सांगा ने एक सशक्त संरक्षक मेवाड़ की सीमा पर स्थापित कर दिया। इस प्रकार की नीति महाराणा कुम्भा की नीति का अनुसरण मात्र थी।[31],,

निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि सांगा की इस उदारता के परिणामस्वरूप मेवाड़ पर मालवा की ओर से उत्पन्न होने वाला संघर्ष कुछ समय के लिए रुक गया। लेकिन यह भी सत्य है कि दोनो रज्यों के मध्य स्थायी मित्रता कभी भी स्थापित न होने पायी।

महाराणा सांगा और गुजरात राज्य

महमूद बेगढ़ा का उत्तराधिकारी उसका ज्येष्ठ पुत्र राजकुमार खलील खाँ हुआ जो 3 रमजान 917 हि0/ 24 नवम्बर 1511 को सिंहासनारूढ़ हुआ और उसने अबूनस्र शम्सुद्दीन मुजफ्फरशाह द्वितीय को विरुद धारण किया।[32] उसे मालवा के स्वतन्त्र राजवंश के अन्तिम शासक महमूद खिलजी द्वितीय (1510–31) तथा मेवाड़ के राजपूत शासक राणा सांगा इन दो शक्तिशाली शत्रुओं का सामना करना पड़ा।[33] मालवा के शासक महमूद की सब शक्ति अपनी प्रतिभा और योग्यता के बल पर शक्तिशाली मन्त्री मेदिनीराय ने अपने हाथों में कर ली थी। कमजोर और अयोग्य मालवा के सुल्तान महमूद ने गुजरात के सुल्तान से सहायता की याचना की। सन् 1518 ई0 में गुजरात के शासक ने सुल्तान महमूद की याचना स्वीकार करके सहायता हेतु चल चड़ा और माण्डू के किले को हस्तगत कर लिया। यद्यपि इस किले की रक्षा राजपूतों ने अपनी अन्तिम सांस तक किया। मेदिनीराय ने मेवाड़ के यशस्वी शासक महाराणा सांगा से सहायता माँगी जिन्होंने उसे चन्देरी का स्वामी बना दिया। मेदिनीराय के संरक्षक, मददगार महाराणा संग्राम सिंह से विद्वेष होना गुजरात के शासक मुजफ्फरशाह के लिए आवश्यक हो गया था।

महमूद खिलजी की सहायता करने वाला मुजफ्फरशाह और मेदिनीराय की सहायता करने वाले महाराणा सांगा अनुपम शक्ति के परिचायक थे। इन दोनो तथ्यों को देखने पर यह ज्ञात होता है कि सहायता पहुँचाने वाले दोनो ही शासक अपनी कीर्ति पताका फहराने में

लगे हुए थे। ऐसे में दोनों के बीच युद्ध का अनिवार्य होना स्वाभाविक था। इस प्रकार से गुजरात और मेवाड़ के बीच बहुत दिनों तक विद्वेष के भाव चले आ रहे थे। माण्डू पर अधिकार के बाद मुजफ्फरशाह ने महमूद को पुनः सिंहासन पर बैठाया। तत्पश्चात् 15 सफर 924 हि0/26 फरवरी 1518 ई0 को महमूद ने अपने उपकारी के सम्मान में एक दावत का आयोजन किया। इस प्रकार मेवाड़ तथा गुजरात में पुनः शक्ति संतुलन स्थापित कर मुजफ्फर माण्डू में आसफखाँ की अधीनता में दस हजार घुड़सवारों की सेना छोड़कर चंपानेर लौटा।[34] माण्डू के पतन के समाचार ने राणा सांगा मेदिनीराय को चित्तौड़ लौटने पर विवश किया किन्तु 925 हि0/ 1519 ई0 में राणा ने महमूद को बुरी तरह पराजित किया जो युद्ध में घायल हुआ और बन्दी बना लिया गया। महमूद के स्वस्थ हो जाने पर राणा ने 1520 ई0 में पुनः सिंहासन पर स्थापित कर दिया।[35]

अपनी सफलता से प्रफुल्लित और अपनी महत्वाकांक्षा को बलवती होते देखकर राणा सांगा अधिक शक्तिशाली मुजफ्फर से शक्ति आजमाने का निश्चय किये। इस तरह से वे गुजराती राज्य में ईडर तक घुस आए और उस पर अधिकार कर अहमदनगर की ओर बढ़े जहाँ 1520 ई0 में मुबारिजुलमुल्क को पराजित किए और उसे अहमदाबाद लौटने पर विवश किए। ईडर में आक्रमण करने का एक अन्य कारण इतिहासवेत्ताओं ने बताया है, इनके अनुसार ईडर के मुसलमान सूबेदार ने राणा के प्रति कुछ अपशब्द कहे थे।[36]

सांगा की ईडर पर निर्णायक विजय

रायमल से लोहा लेने के कारण हुई असफलता से नसरत–उलमुल्क को सुल्तान मुजफ्फरशाह ने ईडर सरकार से निष्कासित कर दिया और उनकी जगह पर मलिक हुसैन बहमनी को नियुक्त किया जिन्हें निजामुल मुल्क के नाम से भी जाना जाता था। यह बहादुरी के लिए भी प्रसिद्ध था।[37]

ऐसा कहा जाता है कि 1520 ई0 में एक भट्ट (गाने वाले) ने राणा सांगा को खुले दरबार में निजामुलमुल्क की उपस्थिति में उनकी बहादुरी और उदारता की खुले कण्ठ से बड़ी प्रशंसा की और कहा कि वह ईडर के राजा रायमल की सुरक्षा करते हैं और आप ईडर में थोड़े समय के लिए ही रुक सकते हैं। एक सामान्य भट्ट के द्वारा उसकी वाणी से गवर्नर के मुँह पर थप्पड़ मारे जाने पर उसका गुस्सा बढ़ गया और उसने कहा– ''राणा सांगा किस प्रकार रायमल की सुरक्षा करेंगे ?'' आगे उसने कहा– मैं यहाँ बैठा हूँ वह क्यों नहीं आता है ?''

भट्ट ने उत्तर दिया कि वह तुरन्त आ रहे हैं इस प्रकार से सुल्तान ने महाराणा के प्रति अपमानजनक भाषा कही। जब इस घटना से महाराणा अवगत हुए तो उन्होंने यह निश्चय किया कर लिया कि वह गुजरात पर अवश्य आक्रमण करेंगे और ईडर के हठी गवर्नर को दण्डित करेंगे। गुजरात के सुल्तान मुजफ्फरशाह ने महाराणा के आक्रमण की खबर पाकर निजामुलमुल्क की सहायता के लिए अशादुलमुल्क, गाजी खान, शुजाउलमुल्क और शैफखान के नेतृत्व में एक सेना भेजी।[38] उसने

किवाउलमुल्क को अपनी राजधानी अहमदाबाद का गवर्नर नियुक्त कर दिया और स्वयं महाराणा से मिलने के बजाय मुहम्मदाबाद वापस हो गया।

महाराणा 40 हजार घोड़ों और पैदल सेना के साथ वीर राजपूतों को लेकर ईडर के विरुद्ध रणयात्रा किए [39]। वे शीघ्र ही वागध पहुँच गये जहाँ डूंगरपुर के रावगांगा 7 हजार लोगों के साथ और मेड़ता के राववीरमदेव 5 हजार राजपूतों के साथ महाराणा की सैन्य शक्ति को मजबूती दिए। वगध से महाराणा शीघ्र ईडर आ गये। निजामुलमुल्क सांगा के ईडर की ओर बढ़ने का समाचार पाकर चौंक गया और अपनी शेखी भूलकर सुरक्षित शरण पाने के लिए अहमदनगर के किले में शरण ली। महाराणा ईडर पहुँच गए और दूसरे दिन मुबारिजउल मुल्क की सेना भी पहुँच गयी। रायमल को फिर से ईडर के सिंहासन पर बैठाकर महाराणा मुबारिजउल मुल्क का पीछा करने लगे और अहमदनगर में उसके पीछे होने की जानकारी पाकर उसका घेरा डाल दिए। डूंगर सिंह चौहान जो महाराणा की सेना का एक प्रसिद्ध राजपूत था वह आक्रमण में गम्भीर रूप से घायल हो गया। उनका बेटा कान्ह सिंह अपनी वीरता और आत्म त्याग से महाराणा अमर सिंह के ओन्टाला किले पर आक्रमण किए जाने के दौरान उपलब्धि हासिल की। उसके बाद सम्राट जहाँगीर के शासन का राजसी किले के ऊपर भी अपना अधिकार रखा और राजपूत नायक के रूप में एक अभूतपूर्व ख्याति अर्जित की। जब किले पर चढ़ाई करने का समय आया तो हाथियों ने दरवाजे को खोलने पर असहमति प्रकट की क्योंकि उनको लम्बे लोहे के भालों से छेद दिया गया था। उस आकस्मिकता में

कान्हसिंह किले के दरवाजे की ओर दौड़ा तथा हाथियों को दरवाजा खोलने के लिए जोर डाला, उत्साहित करने के जोश में वह स्वयं शूली पर चढ़ गया। इस वीरता के कार्य ने महाराणा की सेना में सनसनी भरा उत्साह पैदा कर दिया। इस बात ने किले के अन्दर सुल्तान की सेना के दिलों में आतंक फैला दिया। राजपूत किले की ओर हाथ में तलवार लेकर दौड़ पड़े और किले की सेना पर प्रहार कर दिये। तत्पश्चात् मुबारिज–उल–मुल्क किले के पीछे के दरवाजे से भाग गया। जैसे ही वह किले से बाहर हो रहा था ठीक उसी समय उसी भट्ट ने जिसने कि खुले दरबार में उनसे कहा था कि– ''सांगा शीघ्र ही ईडर आयेंगे और उसे ईडर से बाहर निकाल देंगे।'' उसकी सेना पर व्यंग कसा और लगातार राणा के सामने उसे अपमानित करता रहा।[40] इस प्रकार मुबारिज–उल–मुल्क अपमानित हुआ और किले से होकर बहने वाली नदी के किनारे विश्राम किया और अपनी सेना को छोड़ दिया उसकी सहायता के लिए जो सेनाएं भेजी गई थी उनका भी साथ इसने छोड़ दिया। ज्यों ही यह बात महाराणा को मालूम हुई वह इस सेना पर टूट पड़े और मार गिराया। मुबारिल–उल –मुल्क अहमदाबाद की ओर भाग गया लेकिन पीछा किये जाने की डर से और अपने प्राण को संकट में देखकर वह सीधे रास्ते न जाकर टेढ़े–मेढ़े रास्ते को अपना आधार बनाया। अशांदुलमुल्क और अन्य सहयोगियों को मार दिया गया, उनकी हाथियों और नौकर चाकर महाराणा के सेनापति के हाथों में आ गये।

अगले दिन वह वादनगर लूटने के लिए चल पड़े वहाँ पहुँचकर उन्होंने पाया कि कस्बे में ब्राहमण लोग निवास कर रहे हैं जो सुरक्षा की प्रार्थना कर रहे हैं उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली गई और कस्बे को लूटपाट से मुक्त कर दिया गया।[41] महाराणा विशालनगर की ओर बढ़े और हातिमखान गवर्नन को मार डाले जो उनके पीछे लगा था। थोड़े समय गुजरात में लूटपाट करने के बाद ऐसा मालूम होने पर कि सुल्तान उनकी प्रजा की सुरक्षा का साहस नहीं कर सकते और यह सोचकर कि शेखीबाज निजामुल–उल–मुल्क को पर्याप्त दण्ड मिल चुका है, और उसे नसीहत मिल चुकी है, यह देखकर कि ईडर के राव ने फिर उनकी सुरक्षा शुरू कर दी है, महाराणा विजय हासिल कर चित्तौड़ वापस लौट गए।

राणा को दण्ड देने के लिए मुजफ्फर ने मलिक अयाज को भेजा।[42] जिसने मंदसौर का दुर्ग घेर लिया राणा ने संधि का प्रस्ताव रखा लेकिन ठुकरा दिया गया। शीघ्र ही अयाज और कवामुलमुल्क की परस्पर ईर्ष्या ने गुजरातियों को राणा से सन्धि करने के लिए विवश कर दिया। इस घटना से मुजफ्फर आग बबूला हो गया ओर उसने स्वयं राणा के विरुद्ध कूच की तैयारी की।[43]

अपने देश को बरबाद हुआ देखकर वह बहुत दुःखी हुआ और इस बरबादी का बदला लेने का बहुत तेजी से विचार करने लगा। उसने एक बड़ी सेना तैयार करनी शुरू कर दी। सिपाहियों को अपने वशीभूत करने के लिए उसने उनका वेतन न केवल दुगुना कर दिया वरन् एक वर्ष का वेतन भी अग्रिम दे दिया।[44] अन्त में मुहर्रम के दिन दिसम्बर 1520 ई0 में

सुल्तान ने मेवाड़ के खिलाफ अभियान भेजा। तबकाते अकबरी के अनुसार– ''सुल्तान ने ताजखान और निजामुलमुल्क के नेतृत्व में शक्तिशाली सेना भेजी, सुल्तान की सेना ने डूँगरपुर को लूट लिया और बांसवाड़ा की ओर चल पड़े।''

200 घुड़सवारों के बीच छिटपुट मारपीट के बाद शुजाउलमुल्क और अन्य लोगों के नेतृत्व में और पहाड़ियों में रहने वाले कुछ राजपूत सुल्तान की सेना के साथ आगे बढ़े और मालवा के मंदसौर किले को घेर लिया। किले का गवर्नर आशोकमल मारा गया किन्तु किला बरबाद नहीं हुआ। महाराणा भी एक बड़ी सेना के साथ चित्तौड़ से चल दिये और मन्दसौर से 24 मील दूर नन्दसा गाँव पहुँचे। इसी बीच मालवा का सुल्तान महमूद खिलजी माण्डू से आ पहुँचा और गुजरात की सेना की सहायता करने के लिए मुजफ्फरशाह से मिल गया।

घेरे पर दबाव डाला गया लेकिन कोई नतीजा नहीं निकला। महाराणा को मेदिनीराय की सेना से बल मिला और रायसेन के मुखिया और राजा सिलहदी महाराणा के साथ दस हजार घोड़े की सेना लेकर आ गए। मिराते सिकन्दरी के अनुसार– ''आसपास देश के सभी राजा राणा का समर्थन करने के लिए गए। इस प्रकार दोनों तरफ विशाल सेनाएं इकट्ठी हो गईं किन्तु मलिक अयाज का साहस बुरी सोच के फलस्वरूप आगे नही बढ़ सका फिर भी किले में घेरा डालने से कोई सफलता नहीं मिली।'' मालवा के सुल्तान महमूद खिलजी ने गुजराती सेना के शस्त्रों की बरबादी के बारे में गुजरात के जनरल को चेतावनी दी और उन्हें सलाह दिया कि शान्ति बनाए रखें और वापस चले जाएं। मलिक अयाज अपनी

सेना की बरबादी को समझकर शान्ति बना ली और खिलजीपुर वापस हो गया और गुजरात की ओर चला गया। ऐसा कहा जाता है कि सुल्तान मलिक अयाज से सम्मान पूर्वक मिला। मिराते सिकन्दरी के अनुसार– ''सुल्तान अयाज के प्रति केवल गम्भीर ही नहीं था बल्कि गुजरात के सभी लोग उसे कायर कहने लगे।''

प्रसिद्ध लेखक मि0 ए.के. फोर्ब्स ने भी अपनी पुस्तक रासमाला में राजपूतों और मुसलमान शक्तियों के बारे वर्णन किया है। इनका मानना है कि मालवा का सुल्तान राणा सांगा के उपकार को भुलाते हुए अपने स्वधर्मी गुजरात के सुल्तान की सहायता के लिए मेवाड़ पर चढ़ आया था। कुछ दिनों बाद गुजरात की सेना दुर्ग की दीवारों को उड़ाने तथा प्रवेश लायक मार्ग बनाने में सफल हो गयी परन्तु दुर्ग रक्षकों की सतर्कता के कारण शत्रु सेना को दुर्ग में घुसने का अवसर नहीं मिल पाया। इसका एक कारण यह भी रहा कि अयाज को अन्य लोगों का पूरा–पूरा सहयोग नहीं मिल पा रहा था। ऐसी स्थिति में सांगा ने कूटनीति का सहारा लेते हुए मालवा के महमूद को वापस लौटने के लिए मना लिया। सांगा ने महमूद के नजरबन्द पुत्र को भी शीघ्र छोड़ने का आश्वासन दिया। इस प्रकार उसने किसी प्रकार की रुचि युद्ध में नहीं ली और मालवा लौट गया।[46] इस प्रकार अयाज भी युद्ध में पराजय की भावना को भांपकर वापस लौट गया। सुल्तान ने उसकी काफी भर्त्सना की।

फिर भी मुस्लिम इतिहासकारों का लिखना है कि इस युद्ध में राणा सांगा ने अपने पुत्र के साथ बहुमूल्यवान उपहार भिजवाकर गुजराती सेना

को वापस भिजवा दिया।[47] किन्तु ऐसा हुआ होता तो गुजरात के दरबार में अयाज की भर्त्सना न की जाती उल्टे उसे सम्मानित किया जाता।

इन तथ्यों को देखने से यह स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है कि सांगा की शूरवीरता के आगे वे टिक नहीं सके। मेरा विचार है कि गुजराती सेना की सहायतार्थ सांगा द्वारा बन्दी बनाया हुआ महमूद खिलजी द्वितीय भी आया था और वह सांगा की सेना के सामने टिक न सका था और घायलावस्था में बन्दी बना लिया गया था, साथ ही सांगा की उदारता से भी वह परिचित था। इसी पराजय को भांपकर वह गुजराती सेना को युद्ध करने से मना कर दिया था और सबसे बड़ी बात यह थी कि सांगा अपनी विशाल सेना के साथ मौके पर मौजूद थे। कुछ भी रहा हो इतना तो अवश्य है कि सांगा की कूटनीति और वीरता के सामने उस समय कोई भी आने का और टक्कर लेने का साहस नहीं कर सकता था।

सन्दर्भ–ग्रन्थ सूची

1. भारत की प्रसिद्ध लड़ाइयाँ– 14वां परिच्छेद, पृष्ठ 243
2. मेवाड़ के महाराणा और शहंशाह अकबर– अध्याय 01, पृष्ठ 02
3. वहीं पर।
4. राजस्थान का इतिहास, अध्याय 05, पृष्ठ 154
5. वहीं पर
6. वहीं पर
7. वहीं पर

8. दिल्ली सुल्तनत, राजस्थान, पृष्ठ 72

9. वहीं पर

10. भारत की प्रसिद्ध लड़ाइयाँ– 11वां परिच्छेद पृष्ठ 196

11. राजस्थान का इतिहास, अध्याय 05, पृष्ठ 154

12. मध्यकालीन भारत का संक्षिप्त इतिहास, अध्याय 02, पृष्ठ 254

13. दिल्ली सुल्तनत, मालवा, पृष्ठ 175

14. Maharana Sanga- Capture of Malwa and Sultan Mahmud Khiljee II, Page-64

15. He not reduced the rebel nobles to submission but established the authority of the king through out the kingdom., Maharan Sanga, page 64

16. Ibid, page 65

17. Maharana Sanga- Capture of Malwa and Sultan Mohmud Khalide II, Page-69

18. राजस्थान का इतिहास, अध्याय 05, पृष्ठ 154–155

19. Maharana Sanga- Capture of Malwa and Sultan Mohmud Khalide II, Page-70

20. राजस्थान का इतिहास, अध्याय 05, पृष्ठ 156–157

21. Maharana Sanga- Capture of Malwa and Sultan Mahmud Khiljee II, Page-70

22. राजस्थान का इतिहास, अध्याय 05, पृष्ठ 156

23. Maharana Sanga- Capture of Malwa and Sultan Mahmud Khiljee II, Page-70-71

Sultan Mahmud was a Prince not only weak and incapable but devoid of common sence, Political faresight and Judgment.

24. Maharana Sanga- Capture of Malwa and Sultan Mahmud Khiljee II, Page-72

25. Sultan Mohmed was taken Prisones, would adn bleeding the noble Maharana had him Removed with care to his own camp where his wounds were carefully dressed adn properly treated. He was then removed to Chitor, where he remained a prisoner far three months. Every comfort was provided for his, and when his wounds were heald up and he was restored to health, the high souled Maharana, with a Magnanimity unique in the annal of warfare, not only ste him free but restored this dominions to him and sent him to Mandu iwth a srong Rajput escort.

26. राजस्थान का इतिहास, अध्याय 05, पृष्ठ 157

27. वहीं पर

28. तुजुक–ए–बाबरी– ''यहाँ के लोग न तो सुन्दर हैं और न ही मिलनसार। उनमें प्रतिभा और बुद्धि की विशालता नहीं है। वे रणक्षेत्र में विजय प्राप्त करने की अपेक्षा मर जाना अधिक अच्छा समझते हैं।'' मध्यकालीन भारत का संक्षिप्त इतिहास– अध्याय 13, पृष्ठ 277

29. Maharana Sanga- Capture of Malwa and Sultan Mahmud Khiljee II, Page-75

30. वहीं पर

31. राजस्थान का इतिहास, अध्याय 05, पृष्ठ 157–58

32. दिल्ली सुल्तनत, गुजरात तथा खानदेश, पृष्ठ 132

33. मध्यकालीन भारत का संक्षिप्त इतिहास, अध्याय 12, पृष्ठ 253

34. दिल्ली सुल्तनत, गुजरात तथा खानदेश, पृष्ठ 136

35. वहीं पर

36. मध्यकालीन भारत का संक्षिप्त इतिहास, अध्याय 12, पृष्ठ, पृ0 253

37. Owing to this failur to cape with Raimal, Nasorat-ul-Mulk was removed from teh government of Idar by Sultan Muzaffarshah, who appointed "in his place, Malid husain Bahamani, entitled Nizam-ul-mulk a man renowned far bravery."- Maharana Sanga, Invasion and conquest of Gujrat, page 78

38. महाराणा सांगा आक्रमण और गुजरात विजय, पृष्ठ 79

39. मध्यकालीन भारत का संक्षिप्त इतिहास, अध्याय 12, पृष्ठ 253–54

40. महाराणा सांगा आक्रमण और गुजरात विजय, पृष्ठ 82

41. वहीं, पृष्ठ 83

42. दिल्ली सुल्तनत, गुजरात तथा खानदेश, पृष्ठ 136

43. वहीं पर

44. महाराणा सांगा– सुल्तान मुजफ्फरशाह की असफलता और मेवाड़ पर आक्रमण, पृष्ठ 84

45. "Whatever deeds of oppresson and of blood may have been enacted at the time, and however the Mahammoodn rulers may have chosen to belive or the Muhamadan Historians to represent the Hindus to be a cruched, subdued people, the fast ramains beyond dispute that their descendants, in spite of many a subsquent danger still possess the social of which it was sought to deprive them, while little but squalid poverty and tottering reins, represent the once proud suny of the dynasty of Shah

Ahmad." Maharana Sanga- Failure of Sultan Muzaffar Shah's Invation of Memar- page 88

46. राजस्थान का इतिहास,अध्याय 05, पृष्ठ 159—60

47. दिल्ली सुल्तनत, गुजरात तथा खानदेश, पृष्ठ 136

****

पंचम अध्याय

राणा सांगा का दिल्ली के सुल्तानों से सम्बन्ध

अ. सिकन्दर लोदी

ब. इब्राहिम लोदी

पंचम अध्याय

राणा सांगा का दिल्ली के सुल्तानों से सम्बन्ध

दिल्ली सल्तनत की स्थापना एवं प्रमुख वंशों का संक्षिप्त परिचय

यूनानियों, शकों कुषाणों, हूणों के आक्रमणों और उतार चढ़ाव के मध्य मुइजुद्दीन मुहम्मद गोरी 1205–06 ई0 में खोखरों को हराकर जब गजनी वापस लौट रहा था तो उसने औपचारिक रूप से कुतुबुद्दीन ऐबक को अपने भारतीय ठिकानों का प्रतिनिधि नियुक्त किया यहीं से दिल्ली सल्तनत की स्थापना के प्रथम बिन्दु (चरण) की शुरुआत होती है। दिल्ली सल्तनत की स्थापना के समय 1206 ई0 से 1290 ई0 तक उत्तरी भारत के कुछ भागों पर जिन तुर्क शासकों नें शासन किया है, उन्हें फारसी इतिहासकारों ने 'मुइज्जी', 'कुत्वी' शम्सी और 'बल्बनी' वर्गों में बाँट दिया है। आधुनिक लेखकों ने उन्हें 'पठान', 'गुलाम वंश', आरम्भिक तुर्क सुल्तान 'तुर्क ममलूक' और इल्बरी वंश आदि नामों से सम्बोधित किया है।[1] दिल्ली सल्तनत की स्थापना के उपरान्त यहाँ पर विभिन्न वंशों ने अपनी सक्रियता, युद्ध बल, साहस तथा योग्यता के बल पर अपनी शासन सत्ता स्थापित की। यद्यपि बीच–बीच में इन्हें महत्वाकांक्षी राजपूतों, पड़ोसी राजाओं से भी संघर्ष करना पड़ा। लेकिन इतना तो मानना ही पड़ेगा कि भारत में इनकी नींव गहरी और मजबूत होने का कारण यहाँ के लोगों में आपसी फूट और वैमनस्यता ही थी। भारत के लोगों में एकतारूपी शक्ति होती तो सम्भवतः दिल्ली सल्तनत की स्थापना के बाद जो वंशों का प्रस्फुटन (अंकुरित) होता गया वह कदापि सत्य नहीं होता इसके

परिणामस्वरूप योग्यता के रहते हुए भी जिन राजपूतों को हार (पराजय) का मुँह ताकना पड़ा वह भी असम्भव होता।

अस्तु, यहाँ पर राजपूतों से होने वाले युद्ध और उन सम्बन्धों को दृष्टिगत रखते हुए हम दिल्ली सल्तनत की स्थापना के उपरान्त यहाँ के वंशजों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करना चाहेंगे।

गुलाम वंश (1206–1290 ई0)

मुहम्मद गोरी के भीषण नरसंहार के बाद 1206 ई0 में कुतुबुद्दीन ऐबक दिल्ली की गद्दी पर आसीन हुआ। यह मु0 गोरी का गुलाम था जो अन्य मुसलमानों की अपेक्षा श्रेष्ठ व साहसी तथा बुद्धिमान था, और अपने इन्हीं गुणों के चलते वह गोरी का उत्तराधिकारी बनने में सफल रहा। दिल्ली की गद्दी पर ऐबक के बैठने के पूर्व ही मुहम्मद गोरी और बहादुर राजपूत पृथ्वीराज चौहान से 1191 ई0 व 1192 ई0 में युद्ध हो चुके थे। प्रथम युद्ध में पृथ्वीराज ने गोरी को करारी शिकस्त दी थी जिससे गोरी के हृदय में जल रही ईर्ष्या की आग बलवती हो गयी और 1192 ई0 में तरावड़ी के मैदान में गोरी की सेना ने विश्वासघात के सहारे राजपूतों की सोई हुई सेना पर आक्रमण कर दिया और बहुत से राजपूत सैनिक काटकर मार डाले गये।[2] फिर भी राजपूतों की शूरवीरता का प्रमाण इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि वे इस विश्वासघात के बावजूद अर्द्धनिद्रा में हुए आक्रमण पर भी गोरी सेना का डटकर मुकाबला किये और अन्तिम साँस तक उन्हें मार–मार की आवाज से भयभीत करते रहे थे।[3] यद्यपि इस

युद्ध में विश्वासघाती ने भले ही विजय प्राप्त कर लिया हो लेकिन राजपूतों की शूरवीरता नें उन्हें मन ही मन डरपोक बना दिया था।

कुतुबुद्दीन ऐबक का चित्तौड़ पर हमला

भारतीय राज्य जिन राज्यों में बंटा हुआ था, उनमें एक चित्तौड़ का राज्य भी था। गोरी की मृत्यु के बाद ऐबक जो अब दिल्ली के सिंहासन पर बैठकर शासन कर रहा था, चित्तौड़ पर हमला करने और उसे लूटने का साहस किया, उसे मालूम था कि चित्तौड़ का राजा समर सिंह युद्ध में मारा जा चुका है और उसके स्थान पर उसका छोटा लड़का कर्ण सिंह राज्य का उत्तराधिकारी हुआ, उसे यह भी मालूम हुआ कि कर्ण सिंह की अवस्था अभी छोटी है और राज्य का प्रबन्ध उसकी विधवा माँ कर्म देवी कर रही है। इस दशा में चित्तौड़ पर हमला करना और उसे विध्वंस करना उसे सहज मालूम होने लगा।[4]

ऐबक 1207 ई0 में एक सेना लेकर चित्तौड़ की ओर रवाना हुआ। कर्मदेवी को इसकी सूचना मिलने पर उसने आवेश के साथ निर्णय किया कि चित्तौड़ आज भी निर्बल और अनाथ नहीं है। इस राज्य को पराजित और विध्वंश करना उस समय तक संभव नहीं है जब तक कि चित्तौड़ का एक–एक शूरवीर क्षत्रिय जीवित है। वीरांगना कर्मादेवी ने अदम्य साहस और अपूर्व उत्साह के साथ युद्ध के वस्त्रों से सुसज्जित होकर अपने दाहिने हाथ में तलवार ओर बायें हाथ में ढाल लेकर महल के बाहर निकली और घोड़े पर सवार होकर अपनी सेना के सामने खड़ी हुई। उस

समय राजपूत सैनिकों, सवारों और सरदारों का उत्साह तथा साहस कई गुना अधिक हो गया।

चित्तौड़ से निकलकर राजपूत सेना उस तरफ रवाना हुई जिस तरफ से कुतुबुद्दीन अपनी विशाल यवन सेना के साथ, चित्तौड़ की ओर आ रहा था। मार्ग में दोनो सेनाओं ने एक दूसरे को देखा और एक विस्तृत मैदान में युद्ध के लिए उत्तेजित अवस्था में कुछ देर के लिए दोनो सेनाएं रूकीं। रानी कर्मदेवी ने कुछ देर तक यवन सेना को देखा और फिर अपनी सेना को आगे बढ़कर मुस्लिम् सेना पर जोर के साथ आक्रमण करने की आज्ञा दी। दो दिनों तक चले भीषण संग्राम के बाद कर्मदेवी युद्ध के लिए तैयार होकर घोड़े पर सामने आयी और अपने सैनिकों, सरदारों और वीर सेनापतियों को सम्बोधित करते हुए कहा–

''चित्तौड़ की रक्षा का भार आप सबके ऊपर है, भारत के बहुत से राज्यों का विध्वंस मुसलमान बादशाहों ने किया है, लेकिन चित्तौड़ पर हमला करने का उनका यह पहला साहस है। अब राजपूतों को शत्रुओं के सामने न केवल विजयी होना है बिल्क उनके साहस को सदा के लिए मिटा देना है। आज शत्रुओं का इस प्रकार संहार करना है, जिससे वे फिर कभी चित्तौड़ पर आक्रमण करने का दुस्साहस न कर सकें।''[5]

कर्मदेवी के उत्तेजनापूर्ण शब्दों को सुनकर राजपूतों के नेत्रों से चिनगारियां निकलने लगीं। राजपूतों ने मुस्लिम सेना शिविरों में आक्रमण कर दिया। मुस्लिम सेना अभी तक युद्ध के लिए तैयार न हो सकी थी। राजपूत सेना ने दौड़ते हुए उस पर आक्रमण कर दिया। दोपहर तक के

भयानक नरसंहार के बाद ऐबक युद्ध में घायल हुआ और अपने प्राण लेकर भागा, मुस्लिम सेना भी उसके पीछे की ओर भागने लगी और थोड़ी देर में युद्ध का मैदान शत्रुओं से खाली हो गया। बहुत दूर तक राजपूत सेनाओं ने शत्रुओं का पीछा किया, उसके बाद वह सिंहनाद करती हुई चित्तौड़ में लौट आयी।

गुलाम वंश 1206—1290 ई0 तक माना जाता है इसमें 1206—1210 ई0 तक कुतुबुद्दीन ऐबक, 1211—1266 ई0 तक इल्तुतमिश के वंशों ने और 1266 से 1290 तक बलबन के वंशों ने शासन किया। 1211—1266 ई0 के मध्य इल्तुतमिश के समय राजपूतों के मध्य सामान्य रूप से छिटपुट संघर्षों के प्रमाण देखने को मिलते हैं। 1226 ई0 में रणथम्भौर और 1227 ई0 में मंडोर दुर्ग पर इल्तुतमिश ने विजय प्राप्त की।[4] जब इल्तुतमिश उत्तर—पशिम में संघर्ष करने में व्यस्त था उस समय राजपूत शासकों ने अपनी रणकुशलता का परिचय देते हुए कालिंजर, ग्वालियर और बयाना को पुनः प्राप्त कर लिया।[5] गुजरात जाते समय उसने जालौर पर भी आधिपत्य जमा लिया लेकिन उसका यह प्रयत्न असफल रहा गुजरात के चालुक्यों ने इल्तुतमिश के आक्रमण को विफल कर दिया। मालवा के परमार भी तुर्कों के लिए बहुत शक्तिशाली थे। फिर भी इल्तुतमिश ने मालवा पर आक्रमण किया और उज्जैन तथा रायतियाना को लूटा। उसके एक सेनानायक ने भी बूँदी पर आक्रमण किया। पूर्व में इल्तुतमिश ने बयाना और ग्वालियर को पुनः प्राप्त कर लिया लेकिन बुन्देलखण्ड के राजपूतों के विरुद्ध वह अधिक आगे नहीं बढ़ सका।

इल्तुतमिश की मृत्यु से जो अराजकता फैली उससे पूर्वी राजपूताना पर से तुर्की आधिपत्य पुनः डगमगा गया। अनेक राजपूत राजाओं ने तुर्की आधिपत्य को उखाड़ फेंका लेकिन अजमेर और नागौर तुर्कों के अधिकार में रहे। बलबन का रणथम्भौर जीतने और ग्वालियर को पुनः प्राप्त करने का प्रयास विफल हो गया लेकिन इसके बावजूद वह पूर्वी राजस्थान में तुर्की शासन को संगठित किया। राजपूत राजाओं के बीच आपसी संघर्ष तुर्कों के लिए वरदान साबित हुए जिससे राजपूत उनके विरुद्ध प्रभावशाली संगठन नहीं बना सके।

इल्तुतमिश की राजस्थान विजय

राजपूत अपनी वीरता और शौर्य बल के कारण गौरवपूर्ण भारत की विशेषता बन गए थे। ऐबक के समय में राजपूतों ने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर ली थी, उन्हें परास्त करने के लिए इल्तुतमिश ने योजना बनाई और उन्हें कार्यान्वित भी किया। रणथम्भौर विजय की चर्चा हम पूर्व में ही कर चुके हैं। उसने परमारों की राजधानी मन्दोर पर आक्रमण करके अधिकार कर लिया। 1228 में लाहौर पर आक्रमण करके वहाँ के शासक उदयसिंह से भीषण संग्राम के बाद अधिकृत किया लेकिन कुछ शर्तों के साथ लाहौर उदयसिंह के पास ही रहा।[7] बयाना और भंगीर पर भी उसने अधिकार किया, अजमेर और नागौर भी उससे अछूते न रहे। 1231 ई0 में उसने ग्वालियर पर आक्रमण किया। वहाँ के शासक मलमवर्मन देव तक के एक वर्ष तक वीरता के साथ युद्ध किया लेकिन उसे पराजित होना पड़ा।[8] इसके बाद भी उसने नागदा 1234–35 में मालवा तथा भेल्सा और

उज्जैन पर लूटपाट की। दोआब के क्षेत्रों, बदायूँ, कन्नौज, बनारस और रुहेलखण्ड पर भी अधिकार किया।

इस प्रकार से गुलामवंश के शासकों ने राजस्थान पर अपनी वक्रदृष्टि बनाए रखकर उनकी वीरता का आँकलन किया। ज्यादातर विजय उन्हें विश्वासघात को आधार बनाकर ही प्राप्त हुई। जिस संघर्ष में राजपूत अपनी शूरवीरता का परिचय दे पाए उसमें उन्हें मुँह की खानी पड़ी।

खिलजी वंश (1290–1320 ई0)

जलालुद्दीन फिरोज खिलजी 1290 ई0 में सिंहासनासीन हुआ। वह एक निष्ठावान, निष्कपट, दयालु और उदार व्यक्ति था पर वह शाही सत्ता का दृढ़ता के साथ प्रयोग करने में समर्थ रहा।[9] राज्यारोहण के समय सुल्तान की अवस्था 70 वर्ष की थी, उसके हृदय में घृणा के स्थान पर दयालुता एवं विनम्रता का अधिक स्थान था। वह युद्ध और व्यर्थ रक्तपात से घृणा करता था, उसमें न वह शक्ति और न वह तत्परता थी जो समय को देखते हुए एक शासक में होनी चाहिए थी, इसी कारण उसको राजनीतिक लोकप्रियता प्राप्त न हो सकी।[10] जलालुद्दीन की गृह नीति के बाद उसकी वाह्य नीति विभिन्न आक्रमणों के रूप में मुखरित हुई। सल्तनत के सामने राजपूतों की बढ़ती हुई शक्ति हमेशा एक समस्या के रूप में मुँह बाए खड़ी रहती थी इसलिए सर्वप्रथम उनकी ओर ही दृष्टि डालना उनका प्रथम कर्तव्य होता था। इन्हीं कारणों के चलते राज्यारोहण के वर्ष ही सुल्तान ने राजपूतों के रणथम्भौर दुर्ग पर आक्रमण किया किन्तु राजपूतों की वीरता और दृढ़ता के सामने वे टिक न सके और इस

आक्रमण की असफलता पर यह कहकर अपने को सांत्वना दी कि वह ''इस दुर्ग को किसी मुसलमान के एक बाल के बराबर भी मूल्यवान नहीं समझता।'' इसके उपरान्त 1292 ई0 में उसने मन्दावर पर आक्रमण किया तत्पश्चात् मालवा व देवगिरि पर उसने 1294 ई0 में राजा रामचन्द्र देव पर आक्रमण किया।

जलालुद्दीन के बाद अलाउद्दीन खिलजी 1296 ई0 में दिल्ली सल्तनत की बागडोर संभाला। दिल्ली के सिंहासन पर बैठने वाले मुस्लिम शासकों में अलाउद्दीन अत्यधिक महत्वाकांक्षी शासक था। वह सिकन्दर की भाँति विश्व–विजय के पूर्व सम्पूर्ण भारत को विजित करने का संकल्प किया। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सर्वप्रथम उसने उत्तरी भारत के स्वतन्त्र राजपूत राज्यों को अपने अधीन करके की। उसने भी सर्वप्रथम उसी नीति का अनुपालन किया जिसे अन्य सुल्तान अपनाये थे। 1299 ई0 में उसने गुजरात विजय के लिए अपने दो सेनापतियों उलुग खाँ व नुसरत खाँ के नेतृत्व में एक सेना भेजी। वहाँ का राजा कर्ण सिंह भयभीत होकर अपनी पुत्री देवलदेवी के साथ भाग निकला लेकिन उसकी रानी कमला देवी आक्रमणकारियों के हाथ लगी। इस प्रकार गुजरात खिलजी साम्राज्य का प्रान्त बन गया।

चित्तौड़ और रणथम्भौर राज्यों के अस्तित्व सल्तनत की शक्ति को खुली चुनौती थे।[12] रणथम्भौर के दुर्ग पर चौहान वंशीय राजा हम्मीरदेव का शासन था। 1299 ई0 में एक वर्ष तक दुर्ग का घेरा डालने के बावजूद जब विजय की कोई आशा न रही तो अलाउद्दीन ने कपट से काम

लिया। उसने हम्मीरदेव के प्रधानमन्त्री रनमल को अपनी ओर मिला लिया।[13] बाद में उस देशद्रोही का सुल्तान की आज्ञा से वध कर दिया गया और अलाउद्दीन विजयी होकर लौट गया।

खिलजी वंश की सबसे महत्वपूर्ण घटना 1303 ई0 में चित्तौड़ का घेरा, राजपूतों का अदम्य साहस, बुद्धिमत्ता और अलाउद्दीन के छल–कपट के बाद उसकी विजय का है। अलाउद्दीन सन् 1302 ई0 में अपनी सेना लेकर चित्तौड़ में पहुँच गया और नगर के आस–पास उसने अपनी सेना का घेरा डाल दिया।

अलाउद्दीन के इस आक्रमण से चित्तौड़ की राजपूत सेना में बड़ी अशान्ति उत्पन्न हो गयी। वहाँ के समस्त राजपूत एक साथ युद्ध के लिए अधीर हो उठे लेकिन वे अपने निर्बल और अयोग्य राजा की शक्ति न बन सकते थे। तीव्र वाणों का प्रयोग धनुष के साथ किया जा सकता है। धनुष की अनुपयोगिता और असमर्थता, वाणों को अक्षम और असमर्थ बना देती है। इसी बीच अलाउद्दीन ने घोषणा किया कि मैं पद्मिनी को पाकर वापस लौट जाउँगा। चित्तौड़ के राजपूतों के लिए यह बात असहय थी उनके शरीरों में जैसे आग का स्पर्श हुआ, उनके नेत्रों से चिनगारियाँ निकलने लगीं।

पद्मिनी सुन्दरता की सजीव मूर्ति थी, उसका अलौकिक स्वास्थ्य, अद्भुत शरीर–गठन, अपूर्व रंग–रूप और सौंदर्य ने न केवल पद्मिनी की भयानक विपदा का बल्कि समस्त चित्तौड़ की आपदाओं का कारण बन गया। चित्तौड़ के राजपूतों के सामने बड़े संकट का समय था। उनका

स्वाभिमानी सम्मान उत्तम बाजू में जल की मछली की भांति क्षत–विक्षत हो रहा था। उधर अलाउद्दीन शूर–वीर और लड़ाकू होने की अपेक्षा चतुर, दुराचारी, लम्पट, कठोर और अभिमानी अधिक था। उसने अपने आक्रमण का सम्पूर्ण उद्देश्य परम सुन्दरी पद्मिनी को हस्तगत करने में केन्द्रित कर दिया। रानी के रूप लावण्य की अलौकिक छवि ने अलाउद्दीन की अटूट उत्कण्ठा को उन्माद में परिणत कर दिया। महाराणा भीमसिंह की अस्वाभाविक दुर्बलता से वह अनभिज्ञ नहीं रहा। उसने अपने उद्देश्य की सफलता को सरल बनाने के लिए घोषणा को बदलने की कोशिश की और जाहिर किया कि रानी पद्मिनी के प्रतिबिम्ब को दर्पण में देखकर ही मैं यहां से लौट जाऊँगा।

राजपूतों की विश्वास परायणता से अलाउद्दीन खूब परिचित था। सरल स्वभाव भीमसिंह ने अलाउद्दीन के कपट जाल को न समझकर भीषण रक्तपात से बचने के लिए उसकी इस बात को साफ–साफ स्वीकार कर लिया। यद्यपि चित्तौड़ के सरदारों और बुद्धिमान राजपूतों की समझ में भीमसिंह की यह स्वीकृति एक भयानक दुर्बलता थी। फिर भी इसकी पूरी तैयारी की गई। अलाउद्दीन अपने थोड़े शारीरिक रक्षकों के साथ आया और रानी के प्रतिबिम्ब को दर्पण में देखकर उसके सौन्दर्य की प्रशंसा की और वहां से अपनी छावनी के लिए लौट पड़ा। भीमसिंह उसे भेजने के लिए महल के बाहर जैसे आया विश्वासघाती अलाउद्दीन ने बिना किसी मशक्कत के उसे कैद कर लिया। चित्तौड़ में यह खबर फैलते ही सन्नाटा छा गया। जब रानी पद्मिनी ने इस बात को सुना तो निराश न होकर एक वीरांगना और बुद्धिमती होने का परिचय दिया। विश्वासघाती के साथ

विश्वासघात करना ही उन्होंने उपयुक्त समझा और मुस्लिम छावनी में सन्देश भिजवाया कि मैं स्वयं ही अलाउद्दीन के साथ चलने को राजी हूँ लेकिन मैं अन्तिम बार राजा भीमसिंह से मिलकर ही मुस्लिम खेमें के अन्दर आऊँगी और मेरे साथ पालकी में अन्य स्त्रियां भी रहेंगी। यह खबर सुनकर अलाउद्दीन के खुशी का ठिकाना न रहा। इधर गोरा और बादल के साथ 700 पालकियाँ सजायी गईं जिसमें सशस्त्र राजपूत वीर बैठे और मुस्लिम छावनी में गये। बड़ी ही सावधानी से भीमसिंह पालकी में बैठकर खेमें से बाहर आ गए। उनके बाहर निकलते ही पालकी में बैठे राजपूतों ने बड़े वेग से मुस्लिम सैनिकों पर प्रहार किया, भीषण मार–काट हुई। अलाउद्दीन की खुशी दुःख और पछतावे में बदल गयी वह निराश होकर लौट गया। यद्यपि इसमें गोरा और बादल के साथ अनेकों राजपूत वीरगति को प्राप्त हुए।

यह घटना अलाउद्दीन को भीतर ही भीतर दंश की तरह चुभ रही थी। उसने इस बार और अधिक सेना के साथ चित्तौड़ पर चढ़ाई की। 1303 ई0 में राजा लक्ष्मण सिंह का शासन था। उसमें साहस और उत्साह दोनों की कमी थी फिर भी राजपूतों ने आक्रमणकारियों से जमकर लोहा लिया। भयानक संग्राम में दोनो ओर से बहुत से सैनिक मारे गये। राजा लक्ष्मण सिंह का शरीर भी धराशायी हुआ। बादशाह अलाउद्दीन की तुर्की सेना विजय पताका फहराती हुई चित्तौड़ की ओर बढ़ी। वहाँ राजकुमारियों और रानियों की भीषण चिता के अलावा उसे कुछ न मिला। दिल्ली लौटने के समय उसके सामने प्रसन्नता न थी। ऐसा मालूम होता था कि जैसे

विजयी होने के बाद भी वह पराजय की एक असहय व्यथा को लेकर दिल्ली वापस जा रहा है।[15]

1305 ई0 में अलाउद्दीन ने 10,000 सैनिकों के साथ आइनुलमुल्क को मालवा पर आक्रमण करने के लिए भेजा उस समय मालवा का शासक रायमहलक देव था विशाल सेना के साथ अलाउद्दीन का सामना किया लेकिन पराजित हुआ। 1305 ई0 में अलाउद्दीन अपनी महत्वाकांक्षा के चलते मारवाड़ विजय करने की योजना बनाई यहाँ पर राजपूत शीतलदेव का अधिकार था। दिल्ली की सेना का बड़ी वीरता से सामना किया जिसके कारण मुसलमान सफल नहीं हुए। अन्त में अलाउद्दीन को स्वयं सेना का संचालन करना पड़ा।[16] अलाउद्दीन की उत्तरी भारत की अन्तिम विजय में जालौर विजय है। 1311 ई0 में कमालुउद्दीन गुर्ग की अध्यक्षता में सेना आकर राजा कान्हदेव को पराजित की।

अलाउद्दीन ने दक्षिण–भारत पर भी अपनी विजय पताका फहराने के उद्देश्य से राज्यों पर आक्रमण करना शुरु किया। 1306–07 में देवगिरि पर मालिक काफूर के नेतृत्व में एक सेना भेजी। वहाँ का शासक राजा रामचन्द्र देव था। रामचन्द्र देव को दिल्ली भेज दिया गया और उसका राज्य वापस कर ''रायरायन'' की उपाधि प्रदान की।[17] 1308 ई0 में वारंगल के राजा प्रतापरुद्र देव पर मलिक काफूर ने आक्रमण किया। यहां से अतुल धन–सम्पत्ति को एक सहस्र ऊँटों पर लादकर दिल्ली पहुंचा। 1310 ई0 में मलिक काफूर ने द्वारसमुद्र पर आक्रमण कर विजित किया। यहाँ रामचन्द्र देव के पुत्र शंकर देव का शासन था। द्वारसमुद्र के बाद

मलिक कफूर ने 1311 ई0 में मदुरा पर आक्रमण किया। यह पाण्ड्य राज्य की राजधानी थी। इसके लिए वीर पाण्ड्य व सुन्दर पाण्ड्य से आपसी संघर्ष चल रहा था। जिसका लाभ उठाकर काफूर ने राज्य में जमकर लूट–पाट की। अमीर खुसरो ने लिखा है कि– ''512 हाथी, पाँच सहत्र घोड़े और 105 मन मणि–माणिक्य सम्मिलित था। इससे पूर्व अभी तक दिल्ली में इतना अधिक लूट का माल कोई नहीं लाया था।''

1313 ई0 में पुनः देवगिरि पर आक्रमण किया जिसमें राजचन्द्र देव का ज्येष्ठ पुत्र शंकर देव युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त किया। इसके उपरान्त उसने गुलबर्ग, कृष्णा और तुंगभद्रा नदियों के बीच के प्रदेशों पर आधिपत्य स्थापित किया। पुनः उसने बल्लाल तृतीय को होयाल के राज्य पर आक्रमण कर बहुमूल्य सम्पदा प्राप्त की।

इस प्रकार से खिलजी वंश के शासकों ने छल–बल से राजपूतों पर आक्रमण किया और राजपूत अपनी पारम्परिक आपसी फूट और आगे बढ़ने की होड़ के चलते परास्त होते गये। इस बात से वे स्वयं तो पराजित हुए ही लेकिन भारत की अतुल सम्पत्ति आक्रान्ताओं के हाथ लग गयी।

तुगलक वंश 1320–1398

खिलजी वंश की समाप्ति पर दिल्ली सल्तनत तुगलक वंश के नेतृत्व में आ गई। 1320 ई0 में गयासुद्दीन तुगलक विषम परिस्थितियों में गद्दी पर आसीन हुआ। यह स्वभाव से तो उदार था लेकिन अपने पारम्परिक गुणों से अछूता नहीं था और साथ ही सुल्तान बनने पर जो महत्वाकांक्षा स्वाभाविक रूप से आ जाती है उससे भी वह अपने को मुक्त न रख

सका। ऐसी परिस्थिति मे उसने साम्राज्य विस्तार हेतु अभियान चलाया। गयासुद्दीन ने 1321 ई0 में बारंगल पर अपने पुत्र जूना खाँ को आक्रमण के लिए भेजा। यहाँ प्रताप रुद्र सेन का शासन था बाद में 1323 ई0 में इसे विजित किया गया। वारंगल लौटते हुए जूना खाँ ने उत्कल पर आक्रमण किया और वहाँ से बहुमूल्य सामान प्राप्त किया। 1324 ई0 में बंगाल विजय से लौटते हुए सुल्तान गयासुद्दीन को तिरहुत के राजा हरदेव सिंह से युद्ध करना पडा जिसके परिणामस्वरूप तिरहुत दिल्ली सल्तनत का अंग बन गया।[19]

वास्तव में उन दिनों भारत की राजनीतिक परिस्थितियों में अचानक परिवर्तन हो रहे थे। मुहम्मद तुगलक के मरने के बाद उसका चचेरा भाई फिरोजशाह तुगलक दिल्ली का सुल्तान बनाया गया। यह स्वभाव का कट्टर था और हिन्दुओं का धर्म विरोधी था। बंगाल से लौटने के समय रास्ते में उसने उड़ीसा प्रदेश में 1360 ई0 में जाजनगर राज्य पर आक्रमण करि दिया।[20] उसका राजा एक हिन्दू था और उस राज्य में मिन्दरों की संख्या बहुत अधिक थी जो बहुत ही सम्पत्तिशाली थे। दिल्ली पहुँचने के बाद थोड़े ही दिनों में फिरोजशाह ने नगरकोट पर आक्रमण किया और उसे जीत कर कई महीने तक उसकी सेना वहाँ पर लूट मार करती रही। मन्दिरों और देवस्थानों को लूट कर गिरवा दिया और राज्य के रमणीक स्थानों को बरबाद कर डाला। लूट के माल में सुल्तान को 1300 संस्कृत के ग्रन्थ मिले जिनमें से कुछ ग्रन्थों का अनुवाद संस्कृत में करवाया गया।[21]

1361–61 में सुल्तान ने 90 हजार अश्वारोही, असंख्य पैदल, 480 हाथी तथा 5 सहस्त्र नावों के लेकर सिन्ध पर आक्रमण किया[22]। वहाँ के शासक जाम बबनिया ने बड़ी वीरता से शाही सेना का मुकाबला किया। वहाँ से निकलकर थट्टा राज्य पर आक्रमण किया, वहाँ का शासन दो सरदारों के हाथ में था। राज्य के बाहर उसने अपनी सेना का मुकाम किया और धीरे–धीरे उसने छः महीने से कभी अधिक समय व्यतीत कर दिया, वहाँ के दोनों सरदारों ने बाद में सन्धि कर ली और उसके बाद फिरोजशाह वहाँ से लौटकर दिल्ली आ गया।[23]

फिरोजशाह की मृत्योपरान्त उसके उत्तराधिकारियों ने अपना वर्चस्व स्थापित किया लेकिन उनमें वह योग्यता न थी। इसका स्पष्टीकरण 1398 ई0 में तैमूर के आक्रमण से हो जाता है। उन दिनों सुल्तान मोहम्मद तुगलक का दिल्ली में शासन था। तैमूर के भय से वह दिल्ली छोड़कर भाग गया।[24] जबकि अन्य वर्णन में दिल्ली के सुल्तान महमूद तथा उसके प्रधानमन्त्री मल्लू इकबाल ने दस हजार अश्वारोहियों, चालीस हजार पदातियों तथा एक सौ पचास हाथियों के साथ तैमूर की सेना का मुकाबला किया।[25] किन्तु शत्रु सेना के भीषण संग्राम के सम्मुख शाही सेना ठहर न सकी और बुरी तरह परास्त हुई। वास्तव में तैमूर आक्रमण ने दिल्ली सल्तनत की दुर्बलता को और बदतर बना दिया और भारत के दुर्बल शासन खतरे को उजागर किया। इसके परिणामस्वरूप सोना, चाँदी, जवाहरात आदि की एक बड़ी धनराशि भारत के बाहर चली गई। इसने

बड़ी संख्या में कारीगरों, राजमिस्त्रयों आदि को भी अपने साथ लेता गया।[26]

तेजी के साथ बदलती हुई परिस्थितियों में दिल्ली का सुल्तान मुहम्मद तुगलक तैमूर से पराजित होकर मेवाड़ की ओर बढ़ा। चित्तौड़ का राजा मुकुल समर्थ हो चुका था और स्वयं सेना का संचालन कर रहा था। मेवाड़ की तरफ आने की सूचना पाकर राणा मुकुल ने अपनी सेना की तैयारी की और संघर्ष के लिए रवाना हो गया। सुल्तान की सेना उधर चली आ रही थी। राणा मुकुल निर्भीकता के साथ अरावली के एक प्रान्त में पहुँचकर रामपुर नामक स्थान में शत्रु का सामना किया।[20] दोनों सेनाओं का युद्ध आरम्भ हुआ। सुल्तान मुहम्मद तैमूर लंग का बदला राणा मुकुल से लेना चाहता था। चित्तौड़ की राजपूत सेना ने मुस्लिम सेना के साथ भीषण युद्ध किया और अन्त में उसे पराजित किया। दिल्ली की सेना हार कर युद्ध क्षेत्र से भाग गयी। राणा मुकुल ने बहुत दूर तक सुल्तान की सेना का पीछा किया और दिल्ली राज्य के सांभर नामक प्रदेश को उसने अपने अधिकार में कर लिया।[28] इस प्रकार से सुल्तान की अयोग्यता से चित्तौड़ राज्य की उन्नति में चार चाँद लग गया।

सैयद वंश (1414–1451)

1414 ई0 में खिज्रखाँ तैमूर के पुत्र शाहरुख के प्रतिनिधि के रूप में सिंहासन पर बैठा और सैयद वंश की नींव डाली। अपने शासन काल में इसे अनेक विद्रोहों का सामना करना पड़ा। उसने कटेहर के राय हरि सिंह तथा बदाँयू, इटावा व कम्पिल के राजाओं को परास्त किया।[29] इसकी मृत्यु

के बाद मुबारक शाह दिल्ली सिंहासन पर बैठा उसने भी भटिण्डा और दोआब के विद्रोहों का दमन किया। इसके बाद मुहम्मदशाह राजसिंहासन पर बैठा। इसी समय बहलोल लोदी ने प्रथम बार दिल्ली पर आक्रमण किया लेकिन असफल हुआ। सैयद वंश का अन्तिम शासक अलाउद्दीन आलम शाह हुआ। इसके समय में आन्तरिक कलह की अधिकता के चलते बहलोल लोदी को आमन्त्रण मिला। फलतः 19 अप्रैल 1451 ई0 को बहलोल लोदी अपने को सुल्तान घोषित कर दिया और 'खुतबा' से आलम शाह का नाम हटवा दिया।[30] सैयद वंश के समय में चित्तौड़ से उसके किसी सुल्तान का सम्बन्ध दृष्टिगत नहीं होता है यद्यपि चित्तौड़ के आस–पास सैयद वंश के शासकों ने अपना वर्चस्व स्थापित करने का प्रयास किया।

लोदी वंश (1451–1526)

लोदी वंश की नींव सैयद वंश का अन्त करके बहलोल लोदी ने डाला। उसने 1451–1489 तक शासन किया। इसके उपरान्त सिकन्दर शाह लोदी 1489–1517 तक शासन किया, तत्पश्चात् 1517–1526 तक इब्राहीम लोदी ने दिल्ली सल्तनत पर शासन किया। लोदी वंश के शासकों ने चित्तौड़ पर अपनी निगाह गड़ाए रखी। फलतः उस समय के प्रतापी व यशस्वी महाराणा सांगा से उन के युद्ध हुए जिनमें उन्हें पराजय का मुँह ताकना पड़ा।

राणा सांगा का दिल्ली के सुल्तानों से सम्बन्ध (1508–1528 ई0)

इब्राहिम लोदी के साथ प्रारम्भ से ही युद्धों में तत्पर रहने वाले संग्राम सिंह के भाग्योदय का समय 1508 ई0 में पिता रायमल की मृत्यु एवं भाइयों से कड़े संघर्ष और उन पर विजय प्राप्ति के उपरान्त ही आया। राणा संग्राम सिंह को मेवाड़ का सिंहासन कहने के लिए तो विरासत में मिला था लेकिन सिंहासन के लिए संघर्ष बाल्यकाल से ही छिड़ गया था इसलिए हमारे विचार से सिंहासन विरासत में नहीं बल्कि राणा सांगा की योग्यता, रणकुशलता, राजनीतिक कूटनीतिज्ञता, समरवीरता, युद्धप्रियता आदि विशिष्ट गुणों के कारण प्राप्त हुआ था। वास्तव में मेवाड़ का उत्तराधिकारी सांगा ही था। यहाँ इस बात को मानना भी आवश्यक होगा कि राणा संग्राम सिंह के बचपन से ही उनके चेहरे पर राजोचित तेज झलकता था। शायद इसी कारण भी मलगाँव की पुजारिन और ज्योतिषियों ने इनकी किस्मत को सबसे अधिक मजूबत बताया था।

'होनहार बिरवान के, होत चीकने पात' की कहावत को चरितार्थ करने में राणा सांगा कदापि पीछे नहीं हुए। अपने व्यक्तित्व में निहित विशिष्टताओं को बाहर करके प्रभावित करने में सांगा की निपुणता काबिलेतारीफ थी और शायद इसी का परिणाम यह हुआ कि गद्दी पर बैठते ही सांगा मेवाड़ के ही नहीं अपितु, समचे भारत के नेतृत्वकर्ता बन गये और हिन्दू राजाओं के बीच उनकी विजय पताका और यश का परचम लहरा उठा। उनके बहिर्मुखी व्यक्तित्व का ही परिणाम था कि खानवा के युद्ध में उसके नेतृत्व में लाखों लोगों का साथ मिल गया था। सांगा के

प्रबल प्रतिद्वन्दी बाबर ने भी इनकी शूरवीरता की प्रशंसा आत्मकथा तुजुक–ए–बाबरी में की है।[31]

रायमल के काल से निष्कासित सांगा को 1508 ई0 में दरबारी सामंतों ने रायमल की बीमारी के समय मेवाड़ वापस बुला लिया। फलतः 1508 ई0 में मेवाड़ की बागडोर संग्राम सिंह के हाथों में आ गई। रायमल के काल से ही चला आ रहा संघर्ष और आपसी द्वेष मेवाड़ के सिंहासन को कांटों की सेज बना दिया था। ऐसे में वहाँ की आर्थिक–सामाजिक क्षति का पहुँचना स्वाभाविक था। सैनिकों की उपयुक्त व्यवस्था न होना भी इनके सामने एक बड़ा विकराल संकट था। पड़ोसी राज्यों में मालवा, गुजरात, दिल्ली के सुल्तान अपनी आँखें गड़ाए बैठे थे और मुँह बाये खड़े होकर निगलने के लिए भी तत्पर थे किन्तु राणा सांगा ने अपनी प्रतिभा से उनकी आशाओं पर पानी फेर दिया। वह एक यशस्वी योद्धा, कुशल सेनानी, संयमी संगठनकर्ता और विवेकी तथा ज्ञानवान पुरुष थे। स्वभाव और शिक्षा से भी वह महत्वाकांक्षी थे। पूर्वजों के परम्परागत गौरव तथा शान–शौकत से असंतुष्ट उन्होंने अनेक राजाओं और रायों को सिसोदियों के गुलामी झण्डों के नीचे एकत्र कर अपने वंश की प्रतिष्ठा में चार चाँद लगा दिए।[32]

महत्वाकांक्षी और दूरदर्शी सांगा मेवाड़ के सिंहासन पर बैठते ही यह अनुभव कर लिए कि उनका राज्य चारों ओर से शत्रुओं की हिरासत में है उसका मुख्य कारण मेवाड़ की दशकों से चली आ रही राजनीतिक उथल पुथल थी। दिल्ली सल्तनत को बाहुबल से मजबूती देने वाले सिकन्दर

लोदी (1489–1517) का शासन चल रहा था। इसका अधिकतम समय विरोधियों और अफगान सरदारों को कुचलने में लग गया लेकिन इसके लोदीवंश को उच्चतम शिखर पर पहुँचाने के उद्देश्य से उसने बिहार को जीतकर मध्य भारत पर अपना प्रभाव बढ़ाया। सिकन्दर लोदी ग्वालियर को विजित नहीं कर पाया, परन्तु उसने धौलपुर अवन्तगढ़, नरवल और चन्देरी को जीतकर दिल्ली सल्तनत की सीमाओं का विस्तार किया।[33]

इन राज्यों को जीतकर उसकी महत्वाकांक्षा और भी बढ़ गयी। उसने राजस्थान में अपना पैर जमाने का प्रयास करते हुए नागौर के मुस्लिम शासक मुहम्मद खाँ को अपनी अधीनता स्वीकार करने पर विवश किया। रणथम्भौर के दुर्ग को जीतने में वह सफल नहीं हो पाया। इसकी मृत्योपरान्त इब्राहीम लोदी दिल्ली सल्तनत की बागडोर संभाला और इसका भी अधिकांश समय विरोधियों को ही दबाने में लगा। लोदी वंश के इस अन्तिम सुल्तान ने जब राजस्थान के ऊपर अपनी वक्रदृष्टि डाली तो इसे यशस्वी और प्रतापी शासक संग्राम सिंह के हाथों पद दलित होना पड़ा। सांगा के राज्यारोहण के समय मालवा पर सुल्तान नासिरुद्दीन का शासन था। उसकी मृत्योपरान्त अमीरों के नेतृत्व में महमूद खिलजी द्वितीय मालवा का सुल्तान बना पर अमीरों के दूसरे दल ने उसे अस्वीकार करते हुए उसके भाई साहिब खाँ को गद्दी पर आसीन किया। राजपूत मेदिनीराय की सहायता से महमूद द्वितीय फिर गद्दी पर बैठा। गुजरात पर क्रमशः महमूद बेगड़ा और मुजफ्फरशाह द्वितीय का आधिपत्य रहा। इस

प्रकार मुख्यतः सांगा को दिल्ली, मालवा और गुजरात की मुस्लिम सल्तनतों से खतरा बना रहा।

सांगा के राज्याभिषेक के समय मेवाड़ की राजनीतिक स्थिति

राणा सांगा के राज्याभिषेक के समय मेवाड़ की राजनीतिक स्थिति भी तनावपूर्ण थी। दिल्ली सुल्तान सिकन्दर लोदी, गुजरात व मालवा के शासक, मारवाड़ के राठौर, आमेर के कछवाह, हाड़ौती और चौहान अपनी–अपनी सीमाओं की वृद्धि में लगे हुए थे। सांगा के सामने प्रबल समस्या थी कि वह मेवाड़ के क्षेत्रों को अपने अधिकार में करके और राजपूत शासकों को अपने प्रभुत्व के अन्तर्गत लाकर दिल्ली, मालवा तथा गुजरात के मुस्लिम शासकों की विस्तारवादी नीति पर अंकुश लगाकर मेवाड़ का सर्वांगीण विकास करके उन्नति के मार्ग पर लाए।

राणा सांगा का दिल्ली के सुल्तान सिकन्दर लोदी से सम्बन्ध

सांगा के मेवाड़ संभालने के पूर्व ही दिल्ली सल्तनत की बागडोर सिकन्दर लोदी के हाथों में थी। इस तथ्य से यह बात भी दृष्टिगोचर होती है कि शासन सत्ता को संभालने में और अपना पैर मजबूती से जमाने में सिकन्दर लोदी को पर्याप्त समय मिल चुका था क्योंकि सांगा के लगभग दो दशक पहले से ही वह लोदी वंश की कमान संभाले हुए था और ऐसी परिस्थिति सांगा के लिए और भी दुष्कर थी क्योंकि मेवाड़ का आपसी द्वन्द मेवाड़ की आन्तरिक स्थिति को खोखला बना चुका था। यहाँ यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है कि जिसका प्रतिद्वन्दी अधिक समय से उच्च स्थान पर रहते हुए अपने को मजबूत बनाया हो और दूसरा संघर्षों की

विकराल ज्वाला में झुलस रहा हो इसके बावजूद वह हिम्मत न हारते हुए अपनी शूरवीरता और कुशल राजनीतिक गुणों का परिचय देते हुए समर में श्रेष्ठता हासिल करे। निर्विवाद रूप से सांगा की कुशलता को स्वीकार करते हुए राष्ट्र नायक मान लेना चाहिए।

1. राजनैतिक सम्बन्ध

रायमल के योग्य व महत्वाकांक्षी उत्तराधिकारी राणा सांगा ने मेवाड़ की खोई हुई शक्ति को ही नहीं वापस लाया अपितु अपनी शूरवीरता का परिचय देते हुए मेवाड़ को उन्नति के शिखर पर पहुँचाकर अपना नाम इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों में अंकित कर दिया। उधर बहलोल लोदी का उत्तराधिकारी सिकन्दर लोदी शासन सत्ता में अपनी नींव गहरी और मजबूत बनाने के लिए संघर्षरत था।

दोनों शासक अपनी विस्तारवादी नीति और महत्वाकांक्षा को एक नया आयाम देने के लिए प्रयास में निरन्तर संलग्न थे, इनकी विस्तार नीति को देखते हुए इनके राजनैतिक सम्बन्धों के बारे में अनुमान लगया जा सकता है कि दोनो एकोऽहम द्वितीयोनास्ति जैसे विचारों के पोषक थे और यह कहावत कि लोहा ही लोहे को काटता है, यहाँ चरितार्थ हो रही थी। ऐसी परिस्थिति में इनके सम्बन्ध बेहतर हो ही नहीं सकते थे। इधर सिसौदिया लोग सांगा के शासनकाल में यह भी उम्मीद लगाए बैठे थे कि राजपूतों के साम्राज्य की स्थापना होगी और उधर लोदी सरदार सिकन्दर लोदी अपने वंश की स्थापना की आस लगाए साम्राज्य विस्तार कर रहा था।

राजनैतिक दृष्टि से देखा जाय तो यहाँ सिकन्दर लोदी का पक्ष हल्का मालूम पड़ता है, क्योंकि सांगा के सिहासनारोहण के लगभग 20 वर्षों पूर्व ही वह लोदी वंश की कमान संभालकर दिल्ली पर अपना अधिकार जमाए बैठा था। इतने अधिक समय तक गद्दी पर रहते हुए भी कोई पड़ोसी राज्य उसके द्वारा अधिकृत क्षेत्रों पर अपना कब्जा कायम कर ले, इससे सिकन्दर लोदी की व्यक्तित्व व कृतित्व का एक पक्ष उजागर होता है। जबकि सांगा गद्दी पर बैठते ही मेवाड़ के छिने हुए क्षेत्रों को अपने अधिकार में करके दूसरे क्षेत्रों को भी अधिकृत करते रहे।

राणा सांगा के समकालीन शासक सिकन्दर लोदी जिस समय अपने राज्य की सीमा विस्तार में लगा था उसी समय राणा सांगा ने चाटसू पर अधिकार कर लिया जो बहुत तेजी के साथ लोदी अपने कब्जे में कर रहे थे। यादगार के अनुसार राणा ने इसे पूरणमल की जागीर में सम्मिलित कर दिया।[34] पूरणमल आस–पास के गाँवों में रहने वाले सैय्यदों पर जुल्म ढाता रहा विक्रम संवत 1568 (1511 ई0) के 'सिल्हादि खंढार अभिलेख' से संकेत मिलता है कि पूर्वी राजस्थान में सिकन्दर लोदी की शक्ति काफी कम हो गयी थी। अवसर पाकर सांगा समूचे राजस्थान के अधीश्वर बन गये। सांगा अपने अनूठे व्यक्तित्व व अनुपम साहस के बल पर राजस्थान ही नहीं अपितु पड़ोसी राज्यों को भी अपने अधिकार में करते हुए सीमाओं का विस्तार कर रहे थे।

दोनों की उपलब्धियों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि राजनैतिक दृष्टि से दिल्ली सल्तनत की अपेक्षा मेवाड़ की अधिक उन्नति

हुई। सांगा अपने विशिष्ट गुणों के कारण ही राजपूतों के अतिरिक्त अन्य जातियों पर अपना वर्चस्व बनाने में कामयाब रहे। यह युद्ध में जितना ही प्रवीण थे, राजनीति में उतना ही सुयोग्य थे। इस समय मेवाड़ राज्य उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गया था। अपने राज्य के विस्तार में वह लगातार आगे बढ़े और समूचे राजपूताना में उसने अपना प्रभुत्व कायम कर लिये, इसके बाद उनका ध्यान दिल्ली के विस्तृत राज्य की तरफ गया और कुछ स्थानों पर कब्जा कर लिये।[35]

2. धार्मिक सम्बन्ध

राणा संग्राम सिंह अपनी योग्यताओं के बल पर नेतृत्वकर्ता बन गये थे और उधर सिकन्दर लोदी भी अपनी विस्तारवादी नीति के कारण लोदियों और छिटपुट मुस्लिम राज्यों का अगुवा साबित हो रहा था। दोनों अपने धर्म के प्रति आस्थावान थे और तत्कालीन परिस्थितियों में जो धार्मिक उन्माद फैला हुआ था उसके भी वे पोषक थे। उस समय हिन्दुस्तान में धार्मिक वातावरण कुछ और ही था। भारत के हिन्दू–मुस्लिम समाज में विभिन्न प्रकार की धार्मिक विचारधाराएं विद्यमान थीं ऐसी स्थिति में दोनों में धार्मिक विचारों का आदान–प्रदान हो, सम्भव ही नहीं था। यद्यपि सिकन्दर लोदी ने जिस कट्टरवादी धर्मान्धता का परिचय सांगा के समय में दिया और सांगा ने अपने प्रखर व्यक्तित्व के बल पर अपनी उदारता और सहनशीलता के चलते उस समय में भी लोदियों और मुस्लिमों का सहयोग प्राप्त किया इससे स्पष्ट होता है कि सांगा में एक

शासक के गुण के साथ कुशल राजनीतिक तथा साम्यवादी का गुण भी मौजूद था।

3. आर्थिक एवं सामाजिक सम्बन्ध

दिल्ली के अफगान साम्राज्य की शक्ति बहुत ही घट गयी थी और संग्राम सिंह को सिकन्दर लोदी से भय नहीं रहा।[36] राणा सांगा कई वर्षों से दिल्ली के छोटे–छोटे हिस्सों पर दखल जमाते चले आ रहे थे जिसे सिकन्दर लोदी फिर से अपना बनाने के लिए किसी प्रकार का प्रयास नहीं किया। इस प्रकार से दोनों अपनी–अपनी जगह तटस्थ थे दोनों के मध्य आर्थिक एवं सामाजिक सम्बन्ध सामान्य ही रहे।

सिकन्दर लोदी का आक्रमण

मेवाड़ राज्य पर कुदृष्टि डालने का साहस सिकन्दर लोदी नें 1516 ई0 में रणथम्भौर पर आक्रमण करके सम्पन्न किया[37] लेकिन वह असफल होकर लौट गया। सिकन्दर लोदी को निजाम खाँ के नाम से भी जाना जाता था।[38]

राणा सांगा का इब्राहीम लोदी से सम्बन्ध

राणा रायमल की मृत्यु के बाद उसका बड़ा लड़का सन् 1509 ई0 में चित्तौड़ के राजसिंहासन पर आसीन हुआ। वह युद्ध में जितना ही प्रवीण था, राजनीति में उतना ही सुयोग्य था। मेवाड़ में जिस तरह से उथल–पुथल और राजनीतिक उतार–चढ़ाव की स्थिति बनी हुई थी उसमें राणा सांगा ने अपने अभूतपूर्व कर्मठता और अदम्य साहस का परिचय दिया। इनके शासन काल में भी मेवाड़ राज्य उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच

गया था। राज्य का उत्तराधिकारी होने के बाद सबसे पहले इन्होंने मेवाड़ की उन्नति पर ध्यान देना शुरू किया। युद्ध करने में वह शक्तिशाली और सभी प्रकार से कुशल थे। उनकी कोशिशों में उन्हें सफलता भी मिली। अपने राज्यविस्तार में वह लगातार आगे बढ़े और समूचे राजपूताना में अपना प्रभुत्व कायम कर लिये। इसके बाद उनका ध्यान दिल्ली के विस्तृत राज्य की तरफ गया और उसके कुछ स्थानों पर इन्होंने कब्जा कर लिया।[39]

उधर दिल्ली में सिकन्दर लोदी के शासन समाप्ति पर उसका बेटा इब्राहीम लोदी राज्य कर रहा था जो कि अत्यन्त ही अहंकारी बादशाह था। बहलोल लोदी में जितनी ही उदारता, सहनशीलता, राजनीतिज्ञता, कूटनीतिज्ञता व समरसता थी उसके वंशजों में उतने ही अधिक दुर्गुण विद्यमान थे। दिल्ली राज्य की ओर राणा सांगा को बढ़ते हुए देखकर उसने युद्ध की तैयारी की। सांगा ने दिल्ली के राज्य का जो भाग अपने अधिकार में कर लिया था, इब्राहीम लोदी न केवल उसे छीनकर वापस लेना चाहता था बल्कि सांगा को बदला देने के लिए उसके राज्य के कितने ही भागों पर कब्जा कर लेना चहता था।[40]

बदले की आग से झुलस रहे इब्राहीम लोदी ने सन् 1517 ई0 में मेवाड़ पर चढ़ाई कर राणा सांगा से युद्ध किया जिसमें उसे मुँह की खानी पड़ी और सेना से साथ पराजित होकर वापस जाना पड़ा। पराजित अहंकारी सुल्तान इब्राहीम इस हार को न स्वीकारते हुए पुनः 1518 ई0 में मेवाड़ पर हमला बोला लेकिन सांगा की रणकुशलता और समर वीरता ने

इसे पुनः पराजित कर दिया। इस हार में सुल्तान ने अपने राज्य का एक बड़ा इलाका राणा सांगा को दे दिया जो मेवाड़ राज्य में मिल गया। लोदी सुल्तानों द्वारा अधिकृत ग्वालियर को भी सांगा ने अपने अधिकार में कर लिया।[41] 1517 ई0 में दिल्ली के सुल्तान इब्राहीम लोदी व महारणा सांगा के बीच खातोली के पास युद्ध हुआ जिसमें सांगा की विजय हुई।[42] 1518 ई0 में दोनों के मध्य धौलपुर के पास युद्ध हुआ इसमें भी सांगा की विजय हुई।

22 नवम्बर 1517 ई0 को सिकन्दर लोदी की मृत्योपरान्त इब्राहीम के गद्दी पर बैठने के समय उसे आन्तरिक कलह की भीषण द्वन्द का सामना करना पड़ा। नियामुल्लाह का अफगानों का इतिहास के लेखक नीरोद भूषण राय ने लिखा है कि, इब्राहीम के गद्दी पर बैठने के तुरन्त बाद दोनों शासक इतनी फुरसत मे नहीं थे कि लड़ाई लड़ सकें।[43] लेकिन वीर विनोद, अमर काव्य वंशावली और सूर्यवंशावली से इस बात की पुष्टि नहीं होती। अन्य कुछ ग्रन्थों में भी इब्राहीम व सांगा के आमने–सामने की लड़ाई को स्वीकारा गया है।

सिकन्दर लोदी के अन्तिम दिनों में राणा सांगा ने अपने राज्य की सीमा से सटे हुए दिल्ली सल्तनत के कुछ क्षेत्रों को अधिकृत कर लिया था। सुल्तान बनते ही इब्राहीम लोदी को अपने छोटे भाई जमाल खाँ की चुनौती का सामना करना पड़ा।[44] दिल्ली सल्तनत की इस निर्बलता का लाभ उठाते हुए सांगा ने पूर्वी राजस्थान के उन क्षेत्रों जिन पर दिल्ली का शासन था, को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया। इससे सुल्तान

इब्राहीम लोदी नाराज हो गया और मेवाड़ पर आक्रमण करने का निश्चय कर लिया। सुल्तान इब्राहीम का दूसरा कारण उसकी महत्वाकांक्षा थी। जो कि यह चाहता था कि मालवा पर उसका एकछत्र राज्य स्थापित हो जाय। यह सफलता राणा को परास्त किये बिना नामुमकिन थी और दूसरी तरफ सांगा भी मालवा पर प्रभाव बनाये रखने के लिए प्रयत्नशील था। इन सभी परिस्थितियों के चलते इब्राहीम लोदी ने एक विशाल सेना के साथ 1518 ई0 में मेवाड़ पर चढ़ाई कर दी। बून्दी के निकट खातोली नामक गाँव के पास हाड़ावती नामक स्थान पर दोनों में घमासान युद्ध हुआ।[45] जिसमें लोदी की सेना पराजित हुई और एक लोदी राजकुमार बन्दी बना लिया गया, इस युद्ध में सांगा भी बुरी तरह घायल हो गये और उनकी एक बाजू कट गयी और एक तीर के प्रहार नें उन्हें अपंग बना दिया। इन जख्मों के कारण राणा इतना हताश हो गये कि वह सिंहासन खाली करना चाहता था लेकिन इतना सब होने पर भी उनके समर्थकों ने उन्हें अपना फैसला बदलने को राजी कर लिया।[47]

खातोली विजय के बाद भी सांगा ने अपना सैनिक अभियान जारी रखा और टोडा भीम के निकट अपना शिविर लगाया।[48] अहमद यादगार ने ने लिखा है कि सुल्तान इब्राहिम लोदी ने अपनी पराजय का बदला लेने के लिए मियाँ हुसैन तथा मियाँ माखन के नेतृत्व में एक सेना भेजी परन्तु सल्तान ने एक भूल कर दी। उसने मियाँ माखन को एक गुप्त सन्देश भिजवाया कि वह शाही सेना में सम्मिलित दो संदिग्ध अफगानी नेताओं– मियाँ हुसैन फरमूली तथा मियाँ मारुफ फरमूली को कैद कर ले परन्तु

उपर्युक्त दोनों नेताओं को सुल्तान के गुप्त आदेश की जानकारी मिल गयी और अवसर मिलते ही अपने सैनिकों के साथ शाही शिविर को छोड़कर राणा सांगा की शरण में चले गये।[48] सांगा ने उनका यथोचित सम्मान किया। ये अधिक समय तक न रह सके और पुनः शाही सेना में चले गये।[49] कुछ दिन बाद धौलपुर नामक स्थान पर दोनों पक्षों में युद्ध लड़ा गया जिसमें पुनः शाही सेना पराजित हुई। इब्राहीम स्वयं भी मैदान में आ गया किन्तु बिना किसी नतीजे के वापस चल पड़ा। राणा सांगा गम्भीरी नदी के किनारे तक बढ़ आये और वहाँ सिकन्दर लोदी द्वारा बनाये गये महलों में आग लगा दी गयी।[50] इस स्थान पर बंदी शहजादे गयासुद्दीन को गद्दी पर बैठाया गया। हरविलास शारदा जी ने अपनी पुस्तक महाराणा सांगा में बंदीशहजादे के विषय में कहा है कि इसे कुछ दिनों बाद ही छुड़ाई का धन लेकर भेज दिया गया।

राणा सांगा का युद्ध में तलवार की धार से बायीं भुजा कट जाने और तीर के प्रहार से जीवन भर के लिए अपंग बन जाने से उनके मन में निराशा का भाव उत्पन्न हो गया। प्रसिद्ध लेखक हरविलास शारदा जी ने इसका उल्लेख बड़े ही रोमांचक ढंग से अपनी पुस्तक महाराणा सांगा में किया है– ''यह घटना जो घटित हुई वह राजाधिकार के हिन्दू आदर्श का उल्लेख करती है, यह आदर्श ऐसा नहीं था जो लोगों की इच्छा के ऊपर अधिकार जमा सके और व्यक्तिगत अधिकार पर शासन कर सके। आदर्श यह था कि राजा लोगों का मुख्य प्रशासक था। उनके व्यक्तिगत सुविधा, महत्वाकांक्षा, क्रिया कलापों सुख समृद्धि के अधीन था और अपने प्रशासन

को अधिकार नहीं बल्कि कर्तव्य मानता था। ज्यों ही उसे यह ज्ञात हुआ कि वह सेवा के योग्य नहीं है उसने पद से इस्तीफा दे दिया।

इब्राहीम से युद्ध के दौरान घायल हुए राजा का लम्बे समय के उपचार के बाद घाव भर गया और फिर स्वस्थ हो गए। इस सुअवसर पर महाराणा ने अपने मित्रवत् राजाओं और मेवाड़ के ऊँच–नींच सम्पूर्ण वर्ग के लोगों को आमंत्रित किये वे सभी राजा को सम्मान देने के लिए इकट्ठा हुए और स्वस्थ होने की बधाई दी। जब मेवाड़ के गणमान्य व्यक्ति और पड़ोसी राज्य के राजा इकट्ठा हो गये तो महाराणा शानदार सभा में प्रवेश किए। दरबार में प्रवेश करने पर उन्हें गर्मजोशी से बधाई दी गई, लेकिन मेवाड़ की प्रथा के अनुरूप दोनो हाथों को जोड़कर सीने से लगाकर रखने के विपरीत महाराणा ने अपने दाहिने हाथ को सिर तक उठाया और झुक गये पूरी सभा आश्चर्य से भर गयी। सामन्तों ने अपना स्थान ग्रहण किया लेकिन सांगा अपने सिंहासन पर बैठने के बजाय फर्श पर ही अन्य सामन्तों की भाँति स्थान ग्रहण किया। हाल में काना–फूसी होने लगी, कुछ तो यह कहने लगे कि बीमारी ने महाराणा का दिमाग खराब कर दिया है। अन्त में सालम्बर के रावतरत्न सिंह ने बड़े सम्मान के साथ महाराणा से अपने उचित स्थान पर न बैठने का कारण पूँछा। इस पर महाराणा उठ गये और जोर आवाज में दूर कोने तक हाल में बैठे लोगों को सुनने के लिए घोषणा किया कि, ''भारत में प्राचीन और सुसंगठित नियम है कि जब एक मूर्ति टूट जाती है और उसके टुकड़े हो जाते हैं तो इसे पूजा से अलग रख दिया जाता है। इसके स्थान पर दूसरी मूर्ति स्थापित कर दी जाती है, उसी प्रकार जो राजसिंहासन है वह लोगों के लिए पूजा का स्थान होता है

और इस पर बैठने वाला व्यक्ति भी पूर्ण है और वह राज्य की पूरी सेवा के योग्य होता है।

On this, "The Maharana got up and raising his voice so as to make it audible to those sitting in the furthest corners of the hall declared that it was oan ancient and well-established rule in India that when an Ideal was injured and a part of it Knocked off it cased to be a fit object of worship and another one was installed in its place. Similarly, The royal throne being a place of worship for the people, its occupant should also be a person who is entire and who is able to render full service to the state."

महाराणा का बायां हाथ खो चुका था और अपने पैर से वंचित हो गए थे। सामन्तों के विचार में कोई और व्यक्ति उस सिंहासन पर बैठने के लिए उपयुक्त नहीं था जिसका सभी लोग सम्मान करें। परिणामस्वरूप उन्होंने पूरी सभा से विनती की कि वह ऐसे राजा का चुनाव करे जिसे वे पूरी तरह से इस पद के लिए उपयुक्त समझते हों और सांगा को उचित सहयोग दें जिससे वह लगातार अन्य सामन्तों की तरह अपने शेष जीवन में राज्य की सेवा कर सकें।

ऐसा सुनकर इकट्ठा हुए राजा और गणमान्य व्यक्तियों ने यह मान लिया कि वीर महाराणा जो युद्ध क्षेत्र में घायल हुए थे और जहाँ उन्होंने अपनी वीरता और साहस से शत्रुओं को पराजित किया था तथा मेवाड़ को विजयश्री दिलायी थी। इस प्रकार उन्होंने कुछ खोया नहीं बल्कि अनेकों लोगों के द्वारा उनको सम्मानित किया गया। परिणामस्वरूप उनको राजसिंहासन की शोभा बढ़ाने के लिए उपयुक्त समझा गया। इस पर

मेड़ता के राजा वीरमदेव और अन्य गणमान्य व्यक्ति उठ खड़े हुए और सांगा का हाथ पकड़कर उन्हें खाली सिंहासन पर बिठा दिया।

"There upon Raja Viramdev of Merta and other chiefs gat up and taking Sanga by the hand placed him on the unoccupied throne."

राणा सांगा युद्ध में विजय प्राप्त करने के बावजूद सामन्तों व पड़ोसी राज्य के राजाओं और अधिकारियों के समक्ष जिस बुद्धिमत्ता व नम्रता का प्रदर्शन किये इससे उनकी व्यवहार कुशलता तथा प्रतिभावान् राजा के गुणों की स्पष्ट झलक दिखाई पड़ती है। इतिहासकारों की राय में सांगा का वह काल उनकी शक्ति और साहस तथा राजनीति का चरमोत्कर्ष था। इस समय तक कई हिन्दू राजाओं, सरदारों तथा अमीरों ने सांगा के नेतृत्व को स्वीकार कर लिया था। कर्नल टाड के अनुसार 7 उच्च श्रेणी के राजा, 9 राव और 104 सरदार उनकी सेवा में उपस्थित रहते थे। वस्तुतः सांगा ने अपने पड़ोसी राजपूत शासकों, मालवा और गुजरात के सुल्तानों तथा दिल्ली के सुलतन इब्राहीम लोदी पर अपनी विजयों से अपने आपको राजपूत शासकों में अग्रणी बना लिए थे।[53] सामान्य जनता तो उन्हें हिन्दू धर्म तथा संस्कृति का रक्षक मानती थी। इसके साथ–साथ राजपूत शासक एवं सरदार भी यह विश्वास करने लगे थे कि सांगा दिल्ली की निर्बल सल्तनत का अन्त करके उत्तरी भारत में हिन्दू साम्राज्य की स्थापना में अवश्य ही कामयाब होंगे।[54]

इधर इब्राहीम लोदी के मन में सांगा से भयंकर हार और खतौली में घायल होने के बावजूद बदले की आग भरी थी लेकिन उसके युद्ध के संसाधन सांगा के साथ युद्ध में इतने क्षीण हो गये कि कुछ समय तक वह

लड़ाई के योग्य नहीं हो सका।[55] महाराणा ने जिस शत्रु को भारी क्षति और नीच समझा था उसने मेवाड़ पर आक्रमण के लिए फिर से एक सेना तैयार करनी शुरु कर दी। राज्य के अग्रणी सेनानायक मियाँ हुसैन खान, जार बख्श, मियाँ खानखाना फारमूली और मियाँ फरुक जो सुल्तान सिकन्दर की सेना के प्रमुख कमाण्डर थे और उस समय सबसे बहादुर लोग थे जिसने रुस्तम को भी युद्धकला का निर्देश दिया था। इस अभियान को मुख्य सेनानायक के नेतृत्व में आगे बढ़ाया गया। जब यह सेना महाराणा के क्षेत्र में पहुँची तो महाराणा सांगा अपने राजपूतों के साथ आगे बढ़े। धौलपुर के निकट दोनों सोनाएं आमने–सामने हुईं, मियाँ माखन नें युद्ध की कमान सम्भाली और युद्ध को अपने तरकीब से संचालित किया। सईद खानफूरत और हाजी खान सात हजार घुड़सवारों के साथ युद्ध क्षेत्र के दाहिनी तरफ थे, दौलत खाँ, अल्लाह दादखान और युसुफ खान को केन्द्र में रखा गया था। सुल्तान की सेना महाराणा का भव्य स्वागत करने के लिए पूरी तरह से तैयार थी। राजपूत अपने शौर्य बल के साथ आगे बढ़े और सुल्तान की सेना पर टूट पड़े और थोड़े ही समय में शत्रुओं को धूल चटा दी।[56] बहुत सारे बहादुर और योग्य युद्ध में शहीद हो गये। कुछ तितर बितर हो गये। यह युद्ध 1518 ई0 में हुआ।

राजपूतों की सेना ने सुल्तान की सेना के बाकी भागते हुए लोगों का बयाना तक पीछा किया। इस विजय के पश्चात् मालवा का सारा क्षेत्र जिसे मुहम्मदशाह ने हड़प लिया था, जो कि माण्डू के महमूद खिलजी द्वितीय का छोटा भाई था तत्पश्चात् सुल्तान इब्राहीम के पिता सुल्तान

सिकन्दर लोदी को अपने कब्जे में ले लिया था वह महाराणा के हाथों में आ गया था। चन्देरी भी उन बहुत सारे स्थानों में एक था जो महाराणा के हाथों आ पड़ा था जिसे मेदिनीराय को सौंप दिया था।[57]

लोदी सेना के योग्य सेनानायक उनका कपटपूर्ण व्यवहार व मजबूत चक्रव्यूह तथा किलेबन्दी राजपूतों की सेना के आगे कुछ पल में ही ध्वस्त हो गयी। निश्चयेन इस बात से यह सिद्ध होता है कि अपनी मेहनत और योग्यता के द्वारा ही पराजय पर विजय मिल सकती है। योग्यता किसी की गुलाम नहीं होती है वह अपना रास्ता खुद तय करती है और निर्दिष्ट लक्ष्य (मंजिल) को प्राप्त करने में कामयाब होती है। दोनों युद्धों में विजय प्राप्त करके सांगा ने अपनी योग्यता रणक्षेत्र मे सिद्ध कर दी थी। शायद इन्हीं कारणों से आगामी समय में आने वाला महात्वाकांक्षी आक्रान्ता बाबर ने भी सांगा को ही अपना प्रबल शत्रु मानकर सर्वप्रथम उसी पर आक्रमण करना और विजय प्राप्त करना उचित समझा था। राणा सांगा अपने समय के उदीयमान सूर्य की तरह से प्रदीप्त (प्रकाशमान) हो रहे थे जिनकी तेज ज्वाला में सामान्य विरोधी स्वतः ही झुलसकर नष्ट हो जा रहे थे और जो अपने को मजबूत मानकर लोहा लेने की कोशिश कर रहे थे उनके परों (पंखों) को काट दिया जाता था। सांगा अपने प्रखर व्यक्तित्व के बल पर अपनी कीर्ति–लता का प्रसार करने में सफल रहे थे।

सन्दर्भ–ग्रन्थ सूची

1. मध्यकालीन भारत, अध्याय 04, पृष्ठ 127

2. भारत की प्रसिद्ध लड़ाइयाँ, 9वां परिच्छेद, पृष्ठ 151
3. वहीं पर
4. मध्यकालीन भारत, अध्याय 04, पृष्ठ 130
5. मध्यकालीन भारत, अध्याय 03, पृष्ठ 72
6. वहीं पर
7. माध्यमिक भारत भूमि का इतिहास, अध्याय 20, पृष्ठ 253
8. वहीं पर
9. मध्यकालीन भारत, अध्याय 04, पृष्ठ 165
10. माध्यमिक भारत भूमि का इतिहास, अध्याय 20(ब), पृष्ठ 274–75
11. वहीं पर
12. मध्यकालीन भारत, अध्याय 04, पृष्ठ 165
13. माध्यमिक भारत भूमि का इतिहास, अध्याय 20(ब), पृष्ठ 285
14. भारत की प्रसिद्ध लड़ाइयां, 10वां परिच्छेद पृष्ठ 166
15. भारत की प्रसिद्ध लड़ाइयाँ, 10वां परिच्छेद, पृष्ठ 184
16. माध्यमिक भारत भूमि का इतिहास, अध्याय 20(ब), पृष्ठ 286
17. वहीं पर।
18. वहीं पर।
19. वहीं पर।
20. भारत की प्रसिद्ध लड़ाइयाँ, 10वां परिच्छेद, पृष्ठ 186
21. माध्यमिक भारत भूमि का इतिहास, अध्याय 20(स), पृष्ठ 316
22. वहीं पर।
23. भारत की प्रसिद्ध लड़ाइयाँ, 11वां परिच्छेद, पृष्ठ 187

24. वहीं पर।

25. माध्यमिक भारत भूमि का इतिहास, अध्याय 20(स), पृष्ठ 320

26. मध्यकालीन भारत, प्रो0 सतीश चन्द्र, एन0सी0आर0टी0, पृष्ठ 96

27. भारत की प्रसिद्ध लड़ाइयाँ, 11वां परिच्छेद, पृष्ठ 190

28. वहीं पर।

29. माध्यमिक भारत भूमि का इतिहास, अध्याय 20(स), पृष्ठ 328

30. वहीं पर।

31. सांगा की शूरवीरता की प्रशंसा, बाबरनामा

    ''राणा सांगा अपनी शूरवीरता तथा तलवार के बल पर बहुत शक्तिशाली हो चुका था। मालवा, गुजरात और दिल्ली का कोई भी सुल्तान अपने ही बलबूते पर उसे पराजित करने की स्थिति में नही था। उसका मुल्क 10 करोड़ की आमदनी का था, उसकी सेना में एक लाख सवार थे, उसके साथ 7 राजा, 9 राव और 104 छोटे सरदार रहा करते थे, उसके तीन उत्तराधिकारी भी यदि वैसे ही वीर और योग्य होते तो मुगलों का राज्य भारत में न जमने पाता।''

    राजस्थान का इतिहास– अध्याय 05, पृष्ठ 173

32. दिल्ली सुल्तनत, राजस्थान, पृष्ठ 71

33. राजस्थान का इतिहास, अध्याय 05, पृष्ठ 151

34. मध्यकालीन भारत– अध्याय 06, पृष्ठ 242

35. भारत की प्रसिद्ध लड़ाइयाँ, 13वां परिच्छेद, पृष्ठ 230

36. मध्यकालीन भारत का संक्षिप्त इतिहास, अध्याय 12, पृष्ठ 256–57

37. राजस्थान का इतिहास, सुखवीर सिंह गहलोत, पृष्ठ 16

38. भारतीय इतिहास भाग–2, सम्पादक अरविन्द श्रीवास्त, पृष्ठ 6–20

39. भारत की प्रसिद्ध लड़ाइयाँ, बियाना का प्रबल संग्राम, पृष्ठ 230

40. वहीं पर।

41. वहीं पर।

42. राजस्थान का इतिहास, सुखवीर सिंह गहलोत, पृष्ठ 16

43. मध्यकालीन भारत, अध्याय 06, पृष्ठ 242

44. राजस्थान का इतिहास, अध्याय 05, पृष्ठ 160

45- The Maharana Advance to meet him and the two Armies met mean the villageof Khotale ont he Borders of Haravati- महाराणा सांगा, हरविलास शारदा, पृष्ठ 160

46. राजस्थान का इतिहास, अध्याय 05, पृष्ठ 160

47. ध्यकालीन भारत, अध्याय 06, पृष्ठ 242

48. राजस्थान का इतिहास, अध्याय 05, पृष्ठ 161

49. वहीं पर।

50. मध्यकालीन भारत, अध्याय 06, पृष्ठ 243

51- The Prince was released after a few days on payment of a ransome- Maharana Sanga, Harvilas Sharda, page 56

52- Maharana Sanga- War with Sultan Ibrahim Lodi, page 57-60

53. राजस्थान का इतिहास, अध्याय 05, पृष्ठ 161

54. वहीं पर।

55- The resources of Ibrahim were so cripled by this was with Sanga that he could not renew the contest for Sanga time, “Maharan Sanga, War with Sultan Ibrahim Lodi, page 60

56. महाराणा सांगा– सुल्तान इब्राहीम लोदी के साथ युद्ध, पृष्ठ 61

57. Chanderi was one of the many places which fill int o the hands of the Maharana who bostowed it on Medni Rai – M. Sanga, Harvilas Sharda, page – 62

****

षष्ठ अध्याय

राणा सांगा और बाबर

षष्ठ अध्याय

राणा सांगा और बाबर

राणा सांगा

राणा सांगा और बाबर दोनों अपने–अपने काल के कुशल योद्धा थे। राणा सांगा स्वदेश–भक्ति की भावना से पूर्णतः भरे थे। उनका उद्देश्य हिन्दू–धर्म की मान्यताओं के अनुसार राज्य संचालित करना था। उनके उद्देश्य में जनहित को बढ़ावा देना और उस जनहित को आगे बढ़ाते रहना भी था। सम्राट् हर्ष वर्धन की मृत्यु के पश्चात् भारत की दशा छिन्न–भिन्न हो चुकी थी। राजनैतिक एकता की स्थिति तो दूर तक दिखाई नहीं देती थी। इसका प्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ कि विशाल देश छोटे–छोटे राज्यों में बँटता चला गया था। किसी भी राज्य की किसी भी राज्य के प्रति सहयोग की भावना नही रह गयी थी। अपने–अपने राज्य के विस्तार हेतु सदा प्रयास किये जाने लगे थे। इसका प्रभाव यह हुआ कि जो राजपूत राजा एक से बढ़कर एक थे आपस में लड़ाई लड़कर अपनी–अपनी शक्तियों को छिन्न–भिन्न कर डाले।

आपसी लड़ाई ईर्ष्या, द्वेष और क्रोध की प्रबलता हो चुकी थी। एक दूसरे को कुछ नहीं मानते थे। इस प्रकार के वातावरण में भारत का सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्वरूप बहुत ही विकृत हो चुका था। जाति–प्रथा बहुत जोरों पर थी। सामाजिक विघटन प्रारम्भ हो चुका था। स्त्रियों और शूद्रों की दशा पर कोई विचार नहीं था। उन्हें हेय दृष्टि से देखा जा रहा था। इस प्रकार के विघटनकारी स्वभाव जब आपस में

सक्रिय हो गये थे तब उस दुर्बल दशा का लाभ तुर्कों ने ले लिया और आक्रमण करना आरम्भ कर दिया था। इसी कमजोरी का लाभ लेकर मुहम्मद गोरी ने बार–बार आक्रमण किया। यहाँ के बहुमूल्य रत्नों को लूटा तथा इसी क्रम में राजपूतों की अत्यधिक दुर्बलता तथा तुर्कों की अत्यधिक सुदृढ़ता सिद्ध होने लगी थी। इसी ही क्रम में तो मुहम्मद गोरी ने 1192 ईस्वी में तराइन का युद्ध लड़ा और पृथ्वीराज तृतीय को बुरी तरह से हरा दिया था और भारत के अन्तर्गत मुस्लिम राज्य की सशक्त नींव डाल दिया था। कुछ समय के बाद जब मुहम्मद गोरी की मृत्यु हो गयी तब कुतुबुद्दीन ऐबक और इल्तुतमिश ने इस तुर्की राज्य को खूब दृढ़ता प्रदान कर दिया था। भारत में सब कुछ होते हुए भी इल्तुतमिश ने वह कार्य किया कि इतिहासकारों ने उस इल्तुतमिश को दिल्ली सल्तनत का वास्तविक संस्थापक मान लिया था। इसी समय राजपूतों की स्थिति बहुत दुर्बल हो चली थी।

दिल्ली सल्तनत के सुल्तानों की भावना ऐसी हो गयी थी कि उन्होंने राजाओं को पदाक्रान्त करना आरम्भ कर दिया था और इस समय का उचित लाभ लेकर मुस्लिम शासन को विस्तृत करना आरम्भ कर दिया था।

इस समय कुछ राजपूत राजाओं ने तुर्की–राज्य की प्रधानता नहीं स्वीकार किया और उन्होंने सुल्तानों का सहारा भी नहीं लिया था। उनका सामना करते हुए उन्होंने अपनी स्वतंत्रता की रक्षा किया। वास्तव में यही समय था जिसे कि इतिहासकारों ने सुल्तानों और राजपूतों के बीच युद्ध का काल बताया है।

दिल्ली के सुल्तानों का डटकर सामना करना और अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करना यह मेवाड़ राज्य की संस्कृति थी। यही कारण था कि मेवाड़ का नाम आज तक बहुत ही आदर के साथ लोग लेते हुए अपने को सौभाग्यशाली मानते हैं। इस प्रकार के व्यवहार पर आज भी किसी हिन्दू को किसी भी प्रकार की कोई भी आपत्ति नहीं होती है। इस मेवाड़ राज्य की स्थापना 906 शताब्दी में एक गुहिल नामक व्यक्ति ने किया था। इसी व्यक्ति के नाम पर इनके वंशज गहलौत के रूप में स्वीकार किये जाते हैं और उनकी प्रतिष्ठा है। इस गहलौत वंश में एक से एक शूर–वीर, पराक्रमी, उत्साही, स्वाभिमानी, बुद्धिशील, उदार, संस्कृति के रक्षक तथा हिन्दू राष्ट्र के परिपोषक राजा हुए। उनमें राणा सांगा का नाम प्रमुख है। आज भी लोग उनका नाम बहुत ही आदरपूर्वक लिया करते हैं। सारे के सारे राजपूतों के इतिहास पर यदि दृष्टि डाली जाय तो सम्माननीय राणा सांगा का व्यक्तित्व और कृतित्व न केवल इतिहास में उस समय ही अपितु आज और आगे के लिए भी प्रेरणा का स्रोत बन चुका है।

इस प्रकार के पराक्रमी राजा अंगुलियों पर गिनने योग्य हैं। अपनी शारीरिक चिन्ताओं को भी छोड़कर महाराणा सांगा ने अभूतपूर्व इतिहास की संरचना कर डाली और उनका शासन हमेशा हमेशा के लिए उदाहरणीय ही नहीं अपितु अनुकरणीय हो गया है। यद्यपि उनके अपने ही लोगों ने अपने स्वार्थ में आकर उन्हें धोखा दे दिया। इनमें इनके ज्येष्ठ भ्राता पृथ्वीराज प्रधान थे। उन्होंने अपने एक अचानक किये गये प्रहार से महाराणा सांगा की एक आँख विकृत कर दिया था किन्तु जिसके पास इच्छा शक्ति है वह कहाँ किसी के द्वारा रोका जा सकता है ? महाराणा

सांगा के प्रत्येक कार्य भारतीय इतिहास में ऐसे आदर्शमय अध्याय बने कि उनका कथन किया ही नहीं जा सकता है।

राणा रायमल के इस उत्तराधिकारी राजा ने इस मेवाड़ राज्य को शक्तिशाली ही नहीं बनाया अपितु मुस्लिम आक्रामकों को लोहे के चने चबवा दिये थे। इन कार्यों के कारण सांगा की श्रेष्ठता अनवरत सिद्ध होती चली जा रही थी। जब से भारत पर मुस्लिम आक्रान्ताओं ने हमारे देशवासियों पर इतने अधिक से अधिक अत्याचार कर डाले थे कि हिन्दुओं में आपस में घोर निराशा व्याप्त हो चली थी। इस निराशा के निवारण के रूप में राणा सांगा ही प्रधान थे। उन पर हिन्दुओं की आशापूर्ण दृष्टि लगी हुई थी।

हिन्दू राजाओं के इस पतन के काल में जब भी शासन को चलाने की क्षमता वाला कोई हिन्दू शासक शक्ति और बुद्धि से सम्पन्न दिखाई पड़ता था तब समूचे हिन्दुओं की आशायें उसी की ओर लग जाया करती थीं और सभी लोग उसी पर अपनी दृष्टि लगा दिया करते थे। जिस समय महाराणा सांगा ने मालवा, गुजरात और दिल्ली के मुस्लिम शासकों पर विजय प्राप्त किया था उस समय अगणित भारतीयों की दृष्टि उन पर लग गयी थी और सभी लोग उन पर बहुत आशान्वित हो गए थे।

राणा सांगा ने अपने पुरुषार्थ के बल पर ही सब कुछ किया था और मेवाड़ को उन्नति के चरम पर पहुँचाने में बहुत प्रयास किया था अथवा करने की योजना बनायी थी। उन सभी कार्यों को महाराणा सांगा ने क्रियान्वित कर दिया। मेवाड़ की उन्नति प्रत्येक दृष्टि से वह देखना चाह रहे थे।

राणा सांगा को यदि हिन्दू पक्ष भी कहा जाय तो कोई भी अतिशयोक्ति नहीं प्रतीत होती है। राणा सांगा सम्पूर्ण भारत के ऊपर हिन्दू राष्ट्र स्थापित करने का स्वप्न देख रहे थे। वह चाहते थे कि विदेशी मुस्लिम आक्रान्ताओं को भारत की भूमि से बाहर खदेड़ दिया जाय और स्वराज्य की स्थापना करने में चाहे जो भी बाधा हो उसे हर दशा में निर्मूल कर दिया जाय। राणा सांगा एकता के प्रतीक थे। इसका उदाहरण है कि इब्राहिम लोदी के भाई महमूद लोदी ने भी राणा सांगा के नेतृत्व को स्वीकार किया था।

एकता के अभाव में कोई विशाल कार्य नहीं हो सकता है। राणा सांगा ने मुगलों के विरुद्ध भारतीय मुसलमानों से मिलकर एक राष्ट्रीय मोर्चा तैयार किया था। जिससे मुगल शासकों को भगाया जा सके। भारतीय मुसलमानों को भी यह विश्वास था कि आक्रमण करने वाले वे विदेशी तुर्क भारतीय हिन्दू, भारतीय मुसलमान अथवा किसी के कुछ भी पक्षधर नहीं थे। वे तो लुटेरे थे और लूटकर लेकर चले जाने का लक्ष्य रखने वाले थे। लूटमार करना उनका परम लक्ष्य था। वह किसी के नहीं थे। इसी कारण से भारतीय मुस्लमानों ने राणा सांगा का साथ भी दिया था।

बाबर

भारतवर्ष के अन्तर्गत मुगल साम्राज्य की स्थापना जहीरूद्दीन मुहम्मद बाबर ने स्वयं किया था। उसी का उपनाम 'बाबर'[1] के रूप में कहा गया है। बाबर का जन्म 6 मुहर्रम 888 हि0 (14 फरवरी 1483 ई0)

का फरगना में हुआ था। बाबर के समकालीन ज्योतिषियों के विचार के अनुसार बाबर के जन्म का दिन और वर्ष दोनो शुभ संकेत के सूचक थे। हिजरी वर्ष की संख्या में संख्या आठ का तीन बार आना एक अद्वितीय व्यक्ति के जीवन का सूचक था। बाबर के अब्बा का नाम उमरशेख मिर्जा के रूप में प्राप्त होता है। उस समय हज़रत नासिरुद्दीन ख्वाजा नक्शबदी के वंशज उबैदुल्लाह अहरार बहुत प्रसिद्ध थे। उमर शेख मिर्जा उन्हीं उबैदुल्लाह अहरार का परम भक्त था। उमरशेख मिर्जा उन्हीं के इशारे पर कार्य किया करता था। इस बाबर के जन्म होने पर उमरशेख मिर्जा ने उबैदुल्लाह अहरार से व्यक्तिगत विशेष निवेदन किया था। इस निवेदन को स्वीकार करते हुए उबैदुल्लाह अहरार ने मिर्जा के इस नवजात शिशु का नामकरण किया था।

तुर्कों की दुर्बलता थी कि वे किसी का पूरा नाम लेने में असुविधा महसूस करते थे। इस कारण से जहीरुद्दीन मुहम्मद बाबर का नाम बहुत लम्बा होने के कारण 'बाबर' के नाम से ही कहने में सुविधा होने के कारण बाबर नाम ही प्रचलित हो गया था। इतिहास में लोग उसको इसी नाम से जानते हैं। बाबर की धमनियों के दो सर्वश्रेष्ठ विजेता और साम्राज्य–निर्माताओं का रक्त दौड़ रहा था। अथवा इसे इस रूप में कहा जाय कि बाबर के सम्पूर्ण शरीर में मातृपक्ष तथा पितृपक्ष के रक्त का प्रबल प्रवाह था। उनकी माँ चंगेज खान के वंश की बेटी थी और बाबर के पिता तैमूर लंग के खानदान के थे। इस कारण से बाबर के जीवन पर दोनों पक्षों का बहुत प्रभाव पड़ा था।

इसी क्रम में बाबर की शरीर में प्रवाहशील मातृपक्ष तथा पितृपक्ष के खून का विश्लेषण करना आवश्यक प्रतीत हो रहा है। इसी उभयपक्षीय रक्त ने बाबर के जीवन पर पूर्ण प्रभाव डाल रखा था।

मध्यकालीन इतिहास में एक समय संधिकाल के रूप में माना जाता है। उस समय नई और पुरानी परम्परायें[2] आपस में टकराहट को प्राप्त हो गयीं थीं। इस प्रकार की परिस्थिति के चलते एक नई व्यवस्था ने आखिरकार जन्म ले ही लिया था। इसी संधि काल के समय में मंगोल जाति के अन्तर्गत 1154 ई0 में चंगेज खान का जन्म हुआ था। वह अत्यधिक प्रतिभासम्पन्न, साहसी, कर्मशील और महत्वाकांक्षी अनेक गुणों का अपने में अकेले समावेश करके स्थित था।

वह चंगेज खान ऐसा व्यक्तित्व प्रधान व्यक्ति निकला, जिसने मंगोलों की विभक्त और इधर–उधर बिखरी मंगोल जातियों को एक कर सकने में अपनी स्वयं की सामर्थ्य रखता था। वह यह भी परख चुका था कि उसकी बिखरी शक्तियों को इकट्ठा किया जाय और उस शक्ति के बल पर विशाल साम्राज्य की स्थापना किए जाने का भविष्य बहुत अच्छा है। उस देश के अन्तर्गत चरागाहों में रहने वालों को उस चंगेज खान ने संघटित किया इन्हीं के बल पर चंगेज खान ने पड़ोसी तथा निकटवर्ती प्रदेशों पर आक्रमण कर ही दिया। इसी क्रम और प्रयास के लगातार जारी रहने पर एक समय ऐसा आ गया था कि सम्पूर्ण एशिया में उस चंगेज खान की जीत की पताकाएं फहराने लगी थीं। इतना ही नहीं अपितु अपने उस प्रयास के चलते चंगेज खान ने पेकिंग को जीत लिया था। इस प्रकार

धीरे–धीरे उस साहसी वीर ने उत्तरवर्ती चीन के ऊपर पूर्ण रूप से अपना अधिकार स्थापित कर लिया।

इस प्रकार की विजय के चलते उस मंगोल सेना का मनोबल बहुत ऊँचा होता चला गया था। चंगेज खान ने इसी सेना को लेकर मावराउन्न हेर के तुर्कों को भी नहीं बख्शा अपितु उन पर भी आक्रमण कर दिया। इसी क्रम में उसने खुरासान तथा ख्वारिजम नगरों के बारे में बहुत कुछ सुन लिया था इसके चलते उसने अपनी सेना को उन दोनो नगरों की ओर बढ़ा दिया। इस प्रकार उस साहसी व्यक्ति ने एक–एक करके सभी जातियों को लूट लिया और सबकी मिट्टी पलीत करता ही रहा। अब तक उसकी फौज का मनोबल उतना बढ़ चुका था कि वह सेना आँधी की तरह आगे की ओर बिना किसी रोक–टोक के बढ़ती चली गयी थी। इसी क्रम में उस सेना की आँधी कन्धार और गजनी पर भी बहुत कहर ढाई थी। उन सभी को अपने पैरों के तले रौंदती हुई उस शक्ति ने सिन्ध नदी के तट को भी पार कर लिया था। उतना ही नहीं अपितु उस दुर्दान्त शक्ति ने तुर्कों के प्रभाव और सत्ता को भी नष्ट भ्रष्ट कर दिया ही था।

चंगेज खान एक अदमनीय वीरता के साथ अपनी दूरदर्शिता की कोई सानी नहीं रखता था। वह बहुत ही दूर की सोच का कार्य करता था। वह जानता था कि उसके द्वारा जीते गये लोगों को बहुत समय तक दबाना संभव नहीं था। वह यह भी भली–भाँति जानता था कि किसी भी संस्थापक की मृत्यु के बाद भी कोई भी राज्य स्थिर नहीं रहता है। वह यह भी विचार करता था कि तलवार के बल पर ही शासन नहीं किया जा सकता

है। पुरानी जातियाँ जो जीती गयी हैं, वह कभी भी अपना सिर उठा सकती हैं और अपने अधिकार और अपनी सत्ता को चाह सकती हैं।

पुरानी तथा नवीन मान्यताओं को एक साथ मिला कर बहुत समय तक नहीं रखा जा सकता है। इस प्रकार की अनेक परिस्थितियों पर चंगेज खान ने खूब विचार किया और अपने ही जीवन काल में अपने विशाल साम्राज्य के विभक्त कर देना उसने अच्छा समझा। इस परिस्थिति को अंदाज कर चंगेज खान ने अपने बड़े बेटे को (जिसका नाम जूजी था) किचपाक का मैदान प्रदान कर दिया था। दुर्भाग्य से उस बेटे की मौत चंगेज खान के जीवन काल में हो गयी। इस पर चंगेज खान ने इस भाग को अपने दूसरे बेटे बातू को प्रदान कर दिया। बातू का यह क्षेत्र बहुत बड़ा था। उसने अपने पराक्रम के द्वारा और विकास किया था। इसके परिणामस्वरूप उसने अपने साम्राज्य की सीमा पूर्वी यूरोप तक बढ़ा लिया था।

उसी बातू की नवीं पीढ़ी में उज़वेग नामक ऐसे व्यक्ति का जन्म हुआ जिसने अपने वंश के गौरव की परम्परा को भी सुनियोजित ढंग से बढ़ाया था और उसके साथ ही उसने एक गौरवशाली तथा शक्ति सम्पन्न साम्राज्य की स्थापना करते हुए उस समय मध्य एशिया की राजनीति के अन्तर्गत अपनी आँधी लाकर उथल–पुथल की लहर उत्पन्न कर दिया था। उसी उज़वेग की ही प्रेरणा का प्रभाव रहा कि उजवेग की स्मृति को स्थायी बनाने के लिए जूजी जाति के लोगों ने इस्लाम धर्म को ग्रहण कर लिया और सभी के सभी उजवेग जाति के रूप में जाने गये थे। उतना ही नहीं इस जाति के लोगों ने उजवेग खान के जीवन की राजनीति में खूब

बढ़–चढ़ कर भाग लिया था। इस प्रकार उजवेग खान को इन सभी ने हर प्रकार से सहयोग प्रदान करते हुए उनकी शासन सत्ता को बहुत ही प्रभावशाली और मजबूत बनाने में सहयोग प्रदान कर दिया[3]। इस प्रकार से बाबर की माँ जिसका नाम कुतलुग निगार खानम था के पक्ष का प्रभाव बाबर पर बहुत प्रबल रहा जिसके चलते बाबर बहुत सारे काम बिना किसी प्रकार की थकान का अनुभव किए करता रहा था। इस प्रकार जहीरूद्दीन मुहम्मद बाबर के ऊपर माता के पक्ष का प्रभाव पूर्णरूप से था।

पितृ पक्ष की तरफ से बाबर तैमूर लंग की छठी पीढ़ी में गिना गया है। वह अमीर तैमूर एशिया का अद्वितीय पुरुष था जो बहुत ही महान् विजेता, साम्राज्य का संस्थापक तथा तत्कालीन एक कुशल रूप में शासन का संचालन करने वाला था। यही अमीर तैमूर था जिसने कि चंगेज खान की साम्राज्य परस्ती भावनाओं को पुनः पुनः उज्जीवित किया था। यद्यपि चंगेज खान के बारे में एक यथार्थता थी कि वह भयंकर आक्रमण करता था और अपनी विध्वंसात्मक कार्यवाही के कारण ही वह प्रसिद्ध था। इस रूप में मुसलमान ज्योतिषी उसे तैमूर लंग को बताया करते थे। इन सब परिस्थितियों के होने के बावजूद भी उसके द्वारा रौंदे प्रदेशों में उसकी गाथा बतायी जाती थी। वह सभी पर भारी पड़ता था। वहाँ के अन्य शासक भी अपने को उस मंगोल के वंश का बताया करते थे। इन सबके चलते भी अमीर तैमूर ने मंगोलों से अपने को भिन्न कर रखा ही था।

मंगोल खान तथा चंगेज खान में बहुत बड़ा अन्तर था। जहाँ तक शासक एवं विध्वंसकारी अमीर तैमूर का प्रश्न था वह बरलास जाति में एक

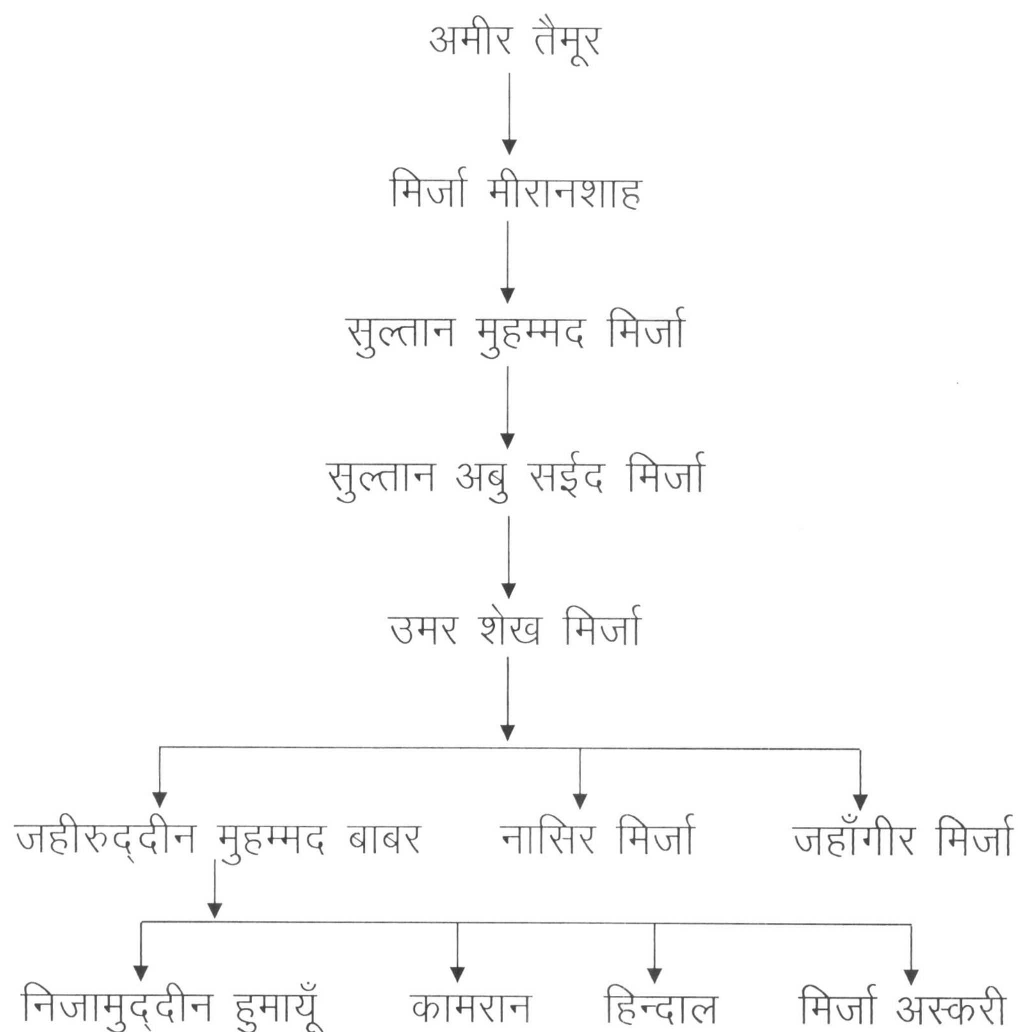
मुखिया था। तुर्कों की इस जाति की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वह सब जब भी किसी जाति के सम्पर्क में आये उन्हीं की सभ्यता और संस्कृति मे इन सभी ने अपने को रंग लिया था। तुर्कों की बरलास शाखा के एक बहुत ही पराक्रमी तैमूर ने ट्रान्स आक्सियाना में अपनी धाक जमा दिया था। इस प्रकार अमीर तैमूर लंग ने भी चंगेज खान के समान राजनीति में उथल–पुथल मचा दिया था। उसका सम्पूर्ण जीवन तथा कार्य साहस से पूरा का पूरा भरा हुआ आज भी जाना जाता है। अपने इन्हीं कुशल प्रयासों के चलते हुए वह ट्रान्स आक्सियाना के सिंहासन पर बैठा था। उसने इस ट्रान्स आक्सियाना के निकटवर्ती प्रदेशों पर भी खूब जोर से तूफानी आक्रमण कर दिया था। इस प्रकार चंगेज खान के गौरव को इस प्रदेश में पुनः प्रतिष्ठित कर दिया था।

थोड़े ही समय में उसने इतना नाम कमा लिया था कि अमीर तैमूर लंग का नाम चंगेज खान के साथ लोग लेने लगे थे। इतना ही नहीं बल्कि कुछ इतिहासकारों ने चंगेज खान और अमीर तैमूर लंग को एक ही पितामह की कुशल संतान के रूप में स्वीकृति प्रदान कर दिया था। तैमूर लंग ऐसा बाहुबली शासक था जिसने अपनी बुद्धि और बाहुबल के चलते एक विशाल राज्य की स्थापना कर लिया था। उसके उस विशाल साम्राज्य के अन्तर्गत टर्की से तुर्किस्तान तक और बोलगा से लेकर भारत की उत्तरी पश्चिमी सीमा तक के भू–भाग आ गये थे। उपर्युक्त उस विशाल भू–भाग उसने तथा उसके अश्वारोहियों ने पूर्णरूप से रौंद डाला था। उस अमीर तैमूर की विजयों की गाथा दिल को दहला देने वाली जानी जाती थी। लोग सुनकर थर्राते थे।

एक आक्रमणकारी विशेषता वाले उस अमीर तैमूर लंग में और भी विशेषताएं थीं जो कि बाबर में प्राप्त होती थीं। बाबर उसका प्रतीक था यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है।

अमीर तैमूर लंग जहाँ एक कुशल तथा भयंकर योद्धा था वहीं पर साहित्य और कला के प्रति भी अनुराग वाला था। उसने अपने शासन–काल में ईरानी सभ्यता और संस्कृति को प्रोत्साहित किया था। इस प्रकार ईरानी सभ्यता और संस्कृति को फिर से जागृत कर दिया था। उसकी इस प्रवृत्ति का यह प्रभाव हुआ था कि अनेक विदेशी साहित्यकार, कलाकार और दार्शनिक उस तैमूर लंग की सभा में प्रतिष्ठा को प्राप्त कर लिये थे। उसने साहित्य में रुचि लेकर उसका सृजन किया और सभी के सामने एक दूसरे ही प्रकार के आदर्श के रूप में अपने को प्रतिष्ठित कर दिखाया था। इस प्रवृत्ति का असर यह हुआ कि उसके परिवार के लोगों ने, वजीरों ने और उमरावों ने भी कवियों, साहित्यकारों, दार्शनिकों को खूब प्रश्रय दिया था। उस समय मध्य एशिया के अन्तर्गत अनेक कालेज, मस्जिद और लोकजीवन रक्षक अस्पताल भी स्थापित किये जा चुके थे। इस प्रकार तैमूर लंग के शासनकाल में एक विशेष प्रकार का नया अध्याय जुड़ गया था। उस काल के अन्तर्गत मध्य एशिया में जो बौद्धिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक विचारधारा प्रवाहित हुई थी, उस सभी प्रकार की प्रगति का श्रेय तैमूर लंग को ही दिया जा सकता है। इस प्रकार की शासन सत्ता कम ही उपलब्ध होती है। जहाँ पर कि राज्य की वृद्धि के साथ–साथ साहित्य और कला पर भी विशेष ध्यान दिया गया हो। इस प्रकार बाबर के जीवन के ऊपर बाबर के मातृ पक्ष और पितृ पक्ष दोनों का

पूर्णरूप से अमिट प्रभाव पड़ा था। इतिहासकारों ने बाबर के पिता की ओर से जो वंशावली प्रस्तुत किया है, उसके अनुसार बाबर छठवीं पीढ़ी में इस प्रकार आता था[4]।



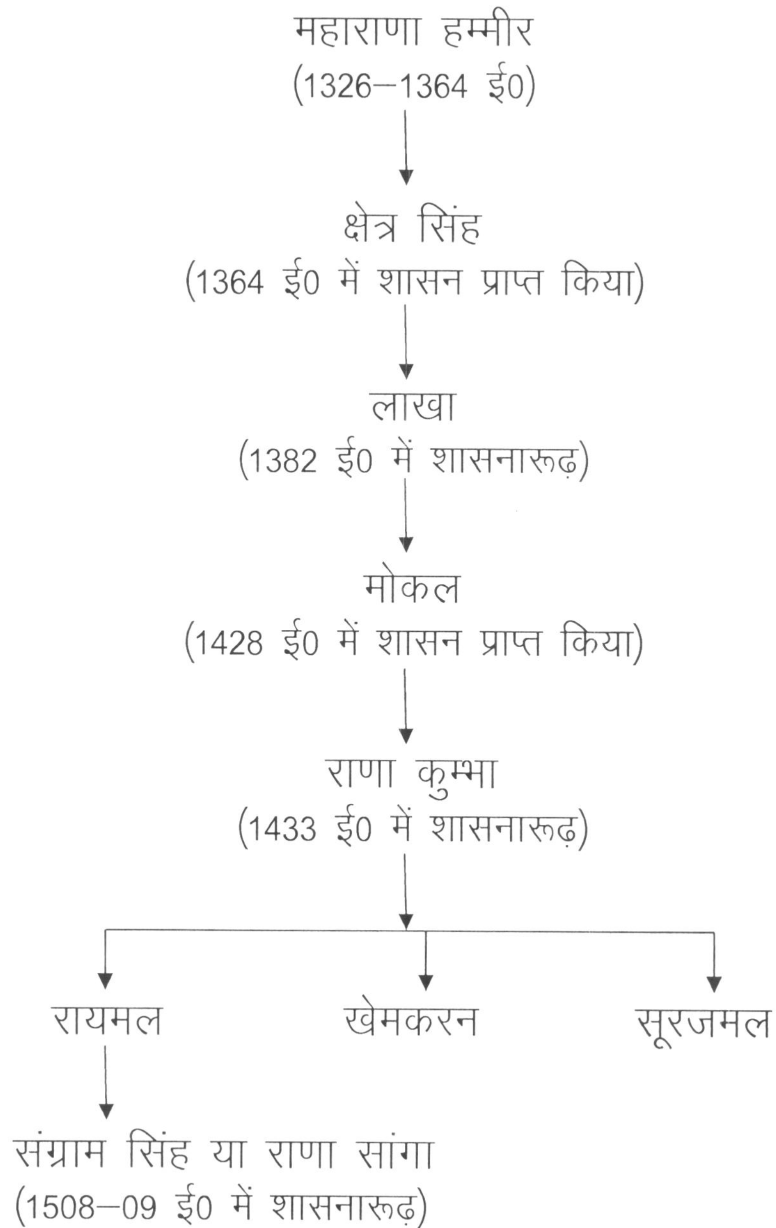
उपरिलिखित वंशावली के अनुसार बाबर उमर शेख मिर्जा का बड़ा बेटा था और उसी बड़ाई के साथ बाबर में उक्त छहों पीढ़ियों के गुण पिता के पक्ष की ओर से प्राप्त होते थे। ये ही गुण उसे सदा अपनी शासन सत्ता को बढ़ाने में प्रेरित करते रहे थे।

राणा सांगा का आरम्भिक जीवन

वीरों के सन्दर्भ में मेवाड़ बहुत प्रसिद्ध रहा है। इसके इस नामकरण के सन्दर्भ में विचारकों के अनेक मत प्राप्त होते हैं। आदि बराह के बाहड़ के शिलालेख में इस स्थान को मेदपाट[5] नाम प्रदान किया गया है। इसी क्रम में यह जानने योग्य है कि यही मेदपाट शब्द स्थानीय भाषा में जब प्रचलित हुआ तब इसी मेदपाट को मेवाड़ के रूप में कहा गया है। इसी सन्दर्भ में यह भी विचार किया गया है कि इस स्थान के ऊपर पहले मेद अर्थात् मेव अथवा मेर जाति का अधिकार हुआ करता था। इसी कारण से इस स्थान का नाम मेदपाट कहा गया है। इस तर्क को संगत करने के लिए कहा गया है कि मेवाड़ का एक भाग मेवल तथा दूसरा भाग मेरवाड़ा कहा जाता है। इस मेदपाट से मेवाड़ नाम पड़ा यह बहुत तर्कपूर्ण कथन नहीं लगता है, क्योंकि किसी एक जाति विशेष को आधार मानकर सम्पूर्ण क्षेत्र का नाम मेवाड़ में बहुत आधार नहीं प्रतीत होता है इसी क्रम के चलते यह भी विचार हुआ है कि मेवाड़ आज तक परम्परया शौर्य की दृष्टि से प्रसिद्ध रहा है। इसी तथ्य को और उजागर करते हुए कहा गया है कि मेद का अर्थ म्लेच्छ से है और पाट का अर्थ दुश्मन के विनाश से सम्बन्धित है। यह मेवाड़ शताब्दियों से अपने दुश्मनों के विनाश में अपना अथक प्रयास करता रहा है। अतः मेरे विचार से यही तर्क सर्वाधिक मान्य प्रतीत होता है।

राणा सांगा के जन्म स्थली को प्राप्त करने का पूर्ण सौभाग्य इसी मेवाड़ को उपलब्ध हुआ है। इस प्रकार मेवाड़ के शासक बहुत ही

प्रतापशाली और संघर्षशील रहे हैं, जिनका क्रम इस प्रकार से प्राप्त होता है–



उपर्युक्त वशावली में प्रत्येक शासक एक से बढ़कर एक प्रतिष्ठित नरेश हुए हैं, जिनमें से अधिकांश ने स्वार्थपरता का परित्याग करते हुए अपनी–अपनी शासन सत्ता को सुदृढ़ करते हुए अपनी प्रजा के चहुँमुखी विकास पर भी ध्यान केन्द्रित करते हुए अपने अपने सभी प्रकार के अभियानों में सफलता को प्राप्त किया था।



संग्राम विजेता महाराणा संग्राम सिंह

मेवाड़ के इतिहास के अन्तर्गत अनेक वीरों का नाम आता है, उनमें राणा सांगा का भी नाम बहुत आदर के साथ ही लिया जाता है।

महाराणा संग्राम सिंह को उनकी ख्यातिवश लोग महाराणा सांगा कहा करते थे। यह संग्राम सिंह महाराणा कुम्भा के पुत्र रायमल के तीसरे पुत्र थे। राणा रायमल के 11 रानियाँ थीं। उनसे उन्हें 14 पुत्र और दो पुत्रियाँ हुईं थीं, जिनमें पुत्रों के नाम हरबिलास सारदा ने इस प्रकार बताए हैं–

1. पृथ्वीराज
2. जयमल
3. संग्राम सिंह
4. कल्याण मल
5. फत्ता जी
6. राय सिंह
7. भवानी दास
8. किशेन दास
9. नरायन दास
10. शंकर दास
11. देवी दास
12. सुन्दर दास
13. इस्सर दास
14. बेनीदास

राणा रायमल की दो पुत्रियाँ भी इस रूप में प्रस्तुत हैं–

1. दामोदर कनवार (कुँवर)
2. हारकनवार (कुँवर)

उपरिलिखित राजकुमारों में पृथ्वीराज और संग्राम सिंह सगे भाई थे। इन दोनों के माता का नाम रतन कुँवर था। यह रतन कुँवर राजधर झाला की पुत्री थी। सांगा का कद न तो बहुत बड़ा और न बहुत छोटा था। वह मँझले कद के प्रतापी पुरुष थे। डॉ0 गोपीनाथ शर्मा के अनुसार यद्यपि इनके शरीर पर अस्सी घाव थे फिर भी इनका चेहरा विकृत नहीं था। इनके चेहरे से ऐसा तेज छलकता था जो राजा के चेहरा के लिए सर्वथा उचित था। संग्राम सिंह का मस्तक भी उनके कद के अनुसार छोटा ही था किन्तु उस छोटे से मस्तिष्क में कूटनीति के साथ–साथ बौद्धिक क्षमता की कोई सीमा नहीं थी। उनके भाल पर रेखायें प्रकट थीं, जो कि किसी के द्वारा देखी जा सकती थीं। वे रेखायें उनके प्रबल विचारों और अतुलनीय प्रतिभा की द्योतक थीं।

मेरा अपना मत है कि इन्हीं सभी शारीरिक संरचनाओं का प्रभाव हुआ कि संग्राम सिंह (राणा सांगा) संग्राम के अन्तर्गत सिंह थे।

राणा सांगा का आरम्भिक जीवन बहुत ही संघर्ष और अनिश्चितता से घिरा हुआ था। महाराणा कुम्भा प्रतापी और विद्वत्ता से भरे हुए शासक थे, किन्तु उन्हीं के बड़े पुत्र उदा (उदय सिंह) ने उनकी हत्या कर दिया था और 1468 ई0 में मेवाड़ के शासन पर आरूढ़ हो गया था। यह भारत में बहुत शर्मनाक हत्या थी। इस संकुचित भावना और महत्वाकांक्षी विचार को मेवाड़ के अधिकतर सिसौदिया सरदार नहीं सहन कर सके थे इसका परिणाम यह हुआ था कि उन सरदारों ने जो कि बहुत असरदार थे कुम्भा के दूसरे पुत्र रायमल को महाराजा बनाने के उद्देश्य से चित्तौड़ आने का आमंत्रण दे दिया और उदा की हार होती चली गयी थी। कुछ दिनों के

बाद ऊदा को भाग जाना पड़ा था इस प्रकार 1473 ई0 में रायमल का समूचे मेवाड़ पर अधिकार हो गया था। उन रायमल ने 1473 ई0 में मेवाड़ का शासन सम्भाल लिया था। यद्यपि रायमल ने 1473 ई0 से 1509 ई0 तक शासन किया था, किन्तु वे दृढ़ता पूर्वक अपना उत्तराधिकारी नहीं निश्चित कर सके थे। इसका फल यह हुआ कि इनके पुत्रों और इनके चाचा सारंगदेव के मध्य शासन को प्राप्त करने की ललक और कलह प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से चलती रही थी।

राणा सांगा का अधिकांश काल बहुत ही संघर्षमय रहा। इस संघर्ष के कारण सांगा के पिता रायमल की दुर्बल निर्णायक वृत्ति थी। यदि वह राय मल अपने जीवनकाल में अपने उचित उत्तराधिकारी की नियुक्त कर लेते तब यह कठिनाइयां और संघर्ष सांगा के सामने नहीं आते। इसके साथ ही सांगा और उनके अन्य भाइयों में जो संघर्ष और वैमनस्य का वातावरण अनवरत बना रहा वह शायद नहीं होता। रायमल की दुर्बलता निर्णायक वृत्ति के रहते सांगा के चाचा सारंगदेव भी मेवाड़ के एक प्रबल दावेदार के रूप में अपने को बराबर मानते रहे। इतना ही नहीं इसी छिपी हुई घातक भावना के रहते सारंगदेव अन्य भतीजों और अन्यों को बराबर उसकाया करते थे।

रायमल की दुर्बल निर्णायक वृत्ति के चलते रहते ही रायमल के सभी पुत्र वैमनस्य को ढो रहे थे और इसी वृत्ति के चलते सांगा के चाचा सारंगदेव अपने भतीजों, पृथ्वीराज, जयमल और सांगा को साथ लेकर उनके और भाग्य को अजमाने के लिए ज्योतिषी तक के पास गये। इसका परिणाम यह हुआ कि उस ज्योतिषी ने पृथ्वीराज, जयमल और सांगा के

जन्मपत्रियों का अध्ययन किया और अध्ययन कर चुकने के बाद सांगा के प्रबल राजयोग को बताया। वहाँ भी सांगा चाचा सारंगदेव चाह रहे थे कि वैमनस्य बढ़ता जाय। उस समय उस ज्योतिषी के भविष्य वचन का वह प्रभाव हुआ था कि पृथ्वीराज ने उस ज्योतिषी के द्वारा सांगा के प्रबल राजयोग के सुनते ही अपनी तलवार से सांगा के ऊपर पूरे जोर से वार कर दिया। उस वार से अपने को बचाने का प्रयास करने पर भी सांगा की आँख में पृथ्वीराज के तलवार की नोक धँस गई। इस पर सांगा के चाचा सारंगदेव ने ऊपर से बीच–बचाव बहुत किया था। अन्दर से तो चाहते ही थे कि सांगा जैसी मजबूत समस्या उन पृथ्वीराज के सामने से हट जाय। उस पर प्रहार का फल यह हुआ कि अनेक प्रकार के उपचारों को करवाने के बावजूद भी सांगा की वह आँख आखिर में खराब हो ही गयी। इस प्रकार की अनेक समस्याओं के जनक और जिम्मेदार के रूप में सांगा के पिता रायमल ही रहे। यदि वह सही समय पर सही निर्णय ले लेते तब सांगा को जो एक आँख गँवानी पड़ी थी तो कम से कम उसकी बचत तो हो ही सकती थी।

यही गलती सारंगदेव ने फिर किया था कि भीमल गाँव की चमत्कार –शील पुजारिन के यहाँ भविष्य को जानने के आशय से पृथ्वीराज, जयमल और सांगा को साथ लेकर प्रस्थान किया। जब उस पुजारिन ने वहाँ भी सांगा के प्रबल राजयोग को बताया तब पृथ्वीराज ने अबकी बार जयमल के साथ तुरन्त आक्रमण करने के उद्देश्य से सांगा को दौड़ा लिया। उन तीनों के मध्य घमासान युद्ध का आरम्भ हो गया। सारंगदेव ने फिर बहुत प्रयास करके सांगा को बचाया था। इस घमासान युद्ध में पड़े सांगा को

अब भागना पड़ा। सांगा घायल अवस्था में भाग रहे थे तब भी उनका भाई जयमल मारने के लिए सांगा का पीछा कर रहा था। सेवन्त्री गाँव के राठौर बीदा ने सांगा को आश्रय देकर जान बचाया था। उस बचाव का परिणाम वह हुआ था कि जयमल ने वार किया और उस प्रहार के कारण राठौर बीदा[9] को अपने प्राणों की आखिरकार आहुति देनी ही पड गई।

इतने पर भी सांगा का संकट नहीं टला था। सांगा वहाँ से भी भागकर गोड़वार होता हुआ किसी प्रकार से अजमेर जा पहुँचे थे। वहाँ पर कर्मचन्द्र पंवार ने सांगा को पनाह दी थी। यहाँ से सांगा अपने लिए बहुत खतरा समझते थे इस संकट के चलते वहाँ पर भी सांगा को कई दिनों तक अज्ञातवास करने के लिए बाध्य होना पड़ा था। उपर्युक्त प्रकरणों में सांगा के ऊपर सम्पूर्ण संकट आने के कारण सांगा के पिता ही निश्चित रूप से जिम्मेदार ठहरते हैं।

डॉ0 कालूराम शर्मा ने अपना विचार प्रकट किया है कि पृथ्वीराज, जयमल और सांगा यह सब अपने–अपने पक्ष को ज्यादा मजबूत बनाने के लिए एक दूसरे के विरुद्ध गठबन्धन करने में सदा प्रयासशील रहा करते थे। सांगा के चाचा सारंगदेव का बीच–बचाव करना मात्र एक नाटक अथवा छल हुआ करता था। भीतर–भीतर वह सारंगदेव भी किसी तरह से अपना पक्ष मजबूत किया करते थे। इसके साथ–साथ अपने राजपूत साथियों के साथ सारंगदेव का भीमल गाँव आना और भीमल गाँव की चमत्कारिक पुजारिन के पास आना मात्र एक छल ही था। इन सभी षड्यन्त्रों से बच निकलना सांगा की उस समय सतर्कता ही थी। यदि

सांगा थोड़ा भी निश्चिंत और असावधान हो जाते तब निश्चय ही मेवाड़ के अन्य दावेदार उन सांगा की हत्या कर डालने में कोई भी कसर किसी प्रकार नहीं छोड़ते। इस प्रकार देखा गया है कि सांगा का उपरिलिखित समय उनके लिए पग–पग पर अनेक कठिनाइयों द्वारा पूर्ण रूप से घिरा हुआ था। उनकी सार्थकता और उनके भाग्य के चलते ऐसा हुआ था कि सांगा हर संघर्ष में देर सबेर कहीं बचते और कहीं पर खुद खतरों को हमेशा झेलते रहे हैं।

सांगा का राज्याभिषेक

जिस समय सांगा का अज्ञातवास का काल था उस समय भी मेवाड़ के शासन को प्राप्त करने की सांगा के लिए कोई भी सम्भावना की किरण नहीं दिखाई पड़ रही थी। इस विषमता की परिस्थिति के चलते भी कुछ परिस्थितियाँ धीरे–धीरे बदलने और कुछ–कुछ अनुकूल होने लगीं थीं। इस प्रकार आशा की किरणें प्रतीत होने लग गई थीं। सांगा का एक विरोधी जयमल राव सुल्तान के हाथों मार दिया गया। उसऐ एक घरेलू संकट सांगा के ऊपर से अपने आप टल गया था। मेवाड़ के शासन का एक और दावेदार पृथ्वीराज बहुत चालाक था। इसी चालाकी के कारण राव सुल्तान की पुत्री के साथ उस पृथ्वीराज ने विवाह कर लिया था। इस विवाह को करने का उद्देश्य तारा के पिता राव सुल्तान को अपने अनुकूल करना था। जो जैसा होना होता है वैसे ही हो जाया करता है। पृथ्वीराज अधिक समय तक उस अपने नये वैवाहिक जीवन का सुख नहीं ले पाया था। इसका कारण था कि पृथ्वीराज किसी समय अपने बहनोई जयमल के यहाँ बहन आनन्दा बाई से मिलने सिरोही गया था। वहाँ से आते समय उसके

बहनोई ने उसे मार्ग में खाने के लिए विष मिला लड्डू दिया था। उस विषैले लड्डू को खा लेने से उस पृथ्वीराज की मृत्यु हो गयी थी। इस प्रकार यह कांटा भी उसके मार्ग से ईश्वर ने स्वयं ही हटा दिया था।

तीसरा कांटा सारंगदेव बराबर सांगा पर अपनी कुदृष्टि लगाए था तो उसे किसी न किसी प्रकार से मेवाड़ का राजा बनाने का अवसर प्राप्त हो जाय किन्तु एक बार पृथ्वीराज ने अपने चाचा सारंगदेव को मौत के घाट उतार दिया था।

इस प्रकार सांगा के लिए अब मेवाड़ की शासन सत्ता को प्राप्त करने की अनुकूलता संयोगवश बनती चली गयी थी। विषम परिस्थिति अब अनुकूल बनने लगी थी। कुम्भा के छोटे भाई खेमकरन का पुत्र सूरजमल तो रायमल को भी मेवाड़ का शासक कभी नहीं मानता था। यह भी सांगा के मार्ग का एक तीखा कांटा था। वह सूरजमल नये राज्य की स्थापना के उद्देश्य से कांठल की ओर प्रस्थान कर दिया था। इस प्रकार सांगा के सभी विरोधी धीरे–धीरे सांगा के रास्ते से हटते चले गये और सांगा का रास्ता साफ हो चला था। एक परिस्थिति ऐसी हो गयी कि मेवाड़ के शासन का कोई अन्य उत्तराधिकारी उस समय नहीं बचा था। उस समय कर्मचन्द्र पंवार ने महाराणा रायमल को सांगा के अज्ञातवास करने की जानकारी प्रदान कर दिया था। महाराणा रायमल सांगा के तेज और शक्ति को भलीभाँति पहचानते थे। उस समय महाराणा रायमल ने सांगा को अपने पास बुला लिया और मेवाड़ के महाराज कुमार का पद प्रदान कर दिया था।

इसके बाद महाराणा रायमल की मृत्यु हो गयी और वह सांगा ही महाराणा संग्राम सिंह के रूप में मेवाड़ की सिंहासन पर आरूढ़ हुए थे। सांगा के राज्याभिषेक को लेकर इतिहास वेत्ता एकमत नहीं हैं। कुछ विद्वान् सांगा का राज्याभिषेक 5 मई 1509 ई0 में माना है। ओझा के अनुसार सांगा 24 मई 1509 ई0 में सिंहासनारूढ़ हुए थे। कुछ भी समय रहा हो किन्तु अधिक महत्पूर्ण तथ्य यह था कि महाराणा सांगा का शासन काल मात्र मेवाड़ के ही परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण नहीं था अपितु सम्पूर्ण उत्तर भारत के इतिहास में वह काल भारत के इतिहास के अन्तर्गत बहुत ही प्रमुख और महत्व से युक्त था।

कुल मिलाकर सभी इतिहासकारों ने सांगा के अभिषेक का काल 16वीं शताब्दी माना है। वस्तुतः सांगा भारत के इतिहास में ऐसा वीर महाराजा हुए जो प्रबल धैर्य, शासन, साहस और प्रचण्ड शूरता के प्रतीक के रूप में आज तक गिने जाते हैं। अपने सभी गुणों का परिचय सांगा ने अपने अज्ञातवास के समय ही आवश्यक लोगों को करा दिया था। वह मेवाड़ के इतिहास में एक विशेष अध्याय जोड़ने वाले के रूप में जाने जाते हैं। यद्यपि उनकी एक आँख और एक टाँग जाती रही किन्तु इन शारीरिक विषमताओं के चलते भी सांगा के साहस में कभी किसी भी प्रकार की कमी किसी को देखने को नहीं मिली थी। उनके शासन को संभालते ही पड़ोसी जितने भी शासक थे सभी सहम गये थे। इसका कारण यह था कि सभी जानते थे कि सांगा को कभी दबाया नहीं जा सकता है और न ही उन्हें कभी मोड़ा जा सकता है। सांगा हर समय कुशलता, सतर्कता और उत्साह के प्रतीक बने रहे। इसी प्रकार के गुणों से ओत–प्रोत होकर सांगा ने

मेवाड़ के ऊपर अपनी पकड़ बना रखी थी और कभी उन्होंने किसी भी शत्रु के साथ अपने राज्य के विपरीत किसी भी प्रकार का समझौता नहीं किया था।

राणा सांगा की समस्यायें/कठिनाइयाँ

राणा सांगा जैसे ही मेवाड़ की सत्ता सँभाले वैसे ही उन्होंने यह जान लिया था कि उनका राज्य चारों ओर से शत्रुओं से घिर गया है। उस समय राजनीति में बहुत ही अधिक अस्तव्यस्तता हो रही थी। उसी समय दिल्ली की सल्तनत सिकन्दर लोदी (1489–1517) के हाथ में चल रही थी और वह सिकन्दर लोदी अफगानी सरदारों की ताकत को कुचल डालने में लगा हुआ था। उसने बिहार को जीत लिया था और मध्य भारत पर अपना असर डाल रखा था। उसने अपने इस प्रयास से दिल्ली की सल्तनत का विस्तार धौलपुर, अवन्तगढ़, नरवर और चन्देरी को जीतकर कर लिया था। समय आने पर उसकी मृत्यु हो गयी और इब्राहिम लोदी दिल्ली सल्तनत के ऊपर शासक बन गया। इस शासक ने जब राजस्थान को अपने कब्जे में लेने का प्रयास किया तब सांगा द्वारा वह पराजित कर दिया गया था।

सांगा के अभिषेक के समय मालवा पर भी सुल्तान नासिरूद्दीन का शासन था। उसकी मौत के बाद मालवा के उत्तराधिकारियों का आपस मे संघर्ष चलने लगा। इस मालवा पर एक बार महमूद खिलजी द्वितीय फिर उसका छोटा भाई साहिब खान और फिर महमूद खिलजी द्वितीय शासन में आ गया था। इसी क्रम में गुजरात का मुजफ्फर शाह द्वितीय शासन में आया उसका भी सांगा के साथ युद्ध हुआ था।

अतः राणा सांगा को दिल्ली, मालवा तथा गुजरात के शासकों से हर समय समस्यायें बनी रहीं थी। राणा सांगा यह जानते थे कि वह तीनों शक्तियाँ अकेले अकेले मेवाड़ की ओर आँख उठा नहीं सकती थीं किन्तु तीनों के एक हो जाने पर राणा सांगा के लिए बहुत बड़ा खतरा सिद्ध हो सकता था। उस स्थिति में बुद्धिमान राणा सांगा ने अज्ञातवास के समय स्वयं को आश्रय देने वाले कर्मचन्द्र पंवार का बुलाकर अजमेर, पर्वतसार, मांडल, फुलिया के परगनें उन्हें जागीर के रूप में देकर उत्तर पूर्व की सीमा की सुरक्षा का दायित्व प्रदान कर दिया। दक्षिण और पश्चिमी सीमा की सुरक्षा के लिए सिरोही तथा बागड़ के शासकों के साथ राणा सांगा ने मैत्री कर लिया था।

राणा सांगा बड़े वीर और बहुत मर्यादित शासक थे। 1919 के अभियान में राणा सांगा ने मुहम्मद द्वितीय को कैद कर तो लिया किन्तु उन्हें चित्तौड़ में 6 माह रखा था। इसके बाद सम्मान के साथ उसके घर भेज दिया था[10]। यद्यपि राणा सांगा ने अब अपनी सीमा को अपनी कुशल नीति के द्वारा सुरक्षित कर लिया था, किन्तु वे सदैव सावधान रहा करते थे। एक समय तो उस प्रकार का आ गया था कि राणा सांगा को अपने राज्य से लगी सीमा वाले दिल्ली सल्तनत, गुजरात और मेवाड़ से एक साथ[11] लड़ना पड़ गया था। सरदार हरविलास ने उस सन्दर्भ में अपना मत इस प्रकार से व्यक्त किया हैः–

मेवाड़ नरेश राणा सांगा और मालवा के सुल्तान महमूद खिलजी द्वितीय एक दूसरे के पूर्ण विरोधी थे। महमूद खिलजी द्वितीय की प्रबल

इच्छा थी कि वह उत्तर भारत पर अपना आधिपत्य जमा ले और महाराणा सांगा भी एक महत्वाकांक्षी शासक थे। यह भारत का सौभाग्य था कि राणा सांगा अपने को हिन्दू और हिन्दू संस्कृति का संरक्षक मानते थे। हिन्दुओं पर किसी के द्वारा किया गया कोई भी अत्याचार उन्हें कभी भी सहन नहीं हुआ था। मालवा का सुल्तान न केवल अपने राज्य के हिन्दुओं पर बहुत अत्याचार करता था अपितु जब भी अवसर मिला करता था तब पड़ोसी हिन्दू राज्यों के सीमा वर्ती क्षेत्रों में आने वाले हिन्दुओं पर भी बहुत अत्याचार किया करता था।

With all these Monarchies Sanga had to wage wars, and it is due to his military genius that Mewar came out successful in every one of them. It has been recorded to his glory that he not only vanquished them and extended his kingdom at their expense but made them respect frontiers established by them.

इसी क्रम में वह हिन्दुओं के मन्दिरों और मूर्तियों को भी तुड़वा डालता था। उन परिस्थितियों के चलते हुए हिन्दू जनता, हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति के विरोधियों से लड़ना राणा सांगा के लिए एक अनिवार्य कर्तव्य की परिस्थिति थी। इस प्रकार मेवाड़ और मालवा के मध्य लड़े गये अनेक युद्धों के मूल्य में भी यही स्वाभिमान और महत्वाकांक्षा का कारण विद्यमान था।

राणा सांगा की कठिनाइयों अथवा समस्याओं का कारण उनका स्वाभिमान और हिन्दुओं का पक्ष लेना भी था। इस कारण के चलते ही राणा सांगा को अपने जीवन में अनेक कठिनाइयों को झेलना पड़ा था।

इसका ज्वलन्त उदाहरण था कि महमूद खिलजी द्वितीय ने मेदिनीराय के विरुद्ध अभियान छेड़ रखा था। उस कारण से मेदिनीराय ने राणा सांगा से सहायता लेना उचित समझा था। जब मेदिनीराय राणा सांगा से सहायता लेने गए थे तब उसी समय महमूद खिलजी द्वितीय ने मेदिनीराय के माण्डू नामक दुर्ग पर बहुत भीषण आक्रमण कर दिया था। उस आक्रमण में मेदिनीराय के पुत्र और उनके परिवार के बहुत लोग मार डाले गये थे। उस घटना को जानकर महाराणा सांगा को बहुत ही गहरा दुःख हुआ था। राणा सांगा ने तुरन्त अनुभव कर लिया था कि मेदिनीराय को इस विनाश को सहन करना न पड़ता यदि वह समय पर मेदिनीराय की सहायता के लिए पहुँच गये होते। उस कारण से महमूद खिलजी को उस अपराध के लिए दण्ड देने का मन राणा सांगा ने बना लिया। मेदिनीराय का माण्डू (Mandu) दुर्ग उनके हाथ से निकल गया था।

हिन्दू राणा होने के कारण और हिन्दू शासकों का पक्ष लेने के कारण सांगा ने महमूद खिलजी द्वितीय पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान कर दिया था। उस अभियान के चलते राणा सांगा ने गुजरात और मालवा की सेनाओं के साथ युद्ध करना उचित नहीं समझा था। उस कारण से मालवा के गागरोण दुर्ग पर आक्रमण करके उस दुर्ग को अपने कब्जे में ले लिया था किन्तु हिन्दू पक्ष के होने कारण उस विजित दुर्ग को मेदिनीराय को प्रदान कर दिया था।

इस सन्दर्भ में डॉ0 कालूराम शर्मा का विचार है कि राणा सांगा की वह नीति बहुत उचित थी। जब राणा सांगा दूर में विद्यमान माण्डू पर अपना नियंत्रण लगातार न रख पाते तो खिलजी को मुक्त कर देने की

उदारता से खिलजी के हृदय को जीतने का एक बहुत उचित कदम उठाया था। दूसरा लाभ यह भी हुआ कि उस दुर्ग पर मेदिनीराय को स्थापित करने से राणा सांगा की माण्डू से लगी सीमा पुनः सुरक्षित हो गई थी। उस दुर्ग में रहकर मेदिनीराय अपनी और अपनी सीमा को सुरक्षित करते रहे। उस प्रकार की नीति कोई नई नीति नहीं थी। वही नीति महाराणा कुम्भा की अपनाई गई नीति का अनुसरण मात्र थी। वह बात अलग थी कि उस नीति के चलते हुए कुछ समय के लिए मालवा द्वारा मेवाड़ पर संभावित संकट टल गया किन्तु दोनो पक्षों में आपसी तनाव बराबर बना ही रहा। राणा सांगा के सामने शत्रुओं द्वारा दी गयी समय–समय पर चुनौती विद्यमान थी।

गुजरात के तत्कालीन शासक मुजफ्फरशाह द्वितीय के आदेश के अनुसार अहमदनगर के निजाम–उल–मुल्क ने भारमल को ईडर का शासक बना दिया था। यह कार्य करके निजाम–उल–मुल्क पुनः अहमदनगर वापस लौट गया। रायमल द्वारा ईडर पर आक्रमण करके ईडर को कब्जिया लिया गया। उस संघर्ष में बहुत सारे मुस्लिम सैनिक मार डाले गये थे। इस मुस्लिम विनाश को सुनकर गुजरात का सुल्तान बहुत क्रोधित हुआ और पूरे जोर के साथ उसने ईडर पर आक्रमण कर दिया था। उस अभियान में बहुत रक्तपात हुआ था। इस बार गुजरात के शासक ने गुजरात पहुँचने पर एक जानवर का नाम सांगा रख दिया और उसे उस नगर में प्रवेश के द्वारा पर बाँध रखा था। इस कुकृत्य की सूचना जब सांगा को मिली तो उन्होंने ईडर पर आक्रमण करने का निश्चय कर लिया। कुछ लोगों का कथन है कि गुजरात के सुल्तान ने जिस अमीर

मुबारिज–उल–मुल्क को ईडर का शासन सौंप रखा था उस मुबारिज–उल–मुल्क ने अपने भरे दरबार में राणा सांगा के लिए अपमान एवं आपत्तिजनक शब्दों का प्रयोग किया था। किसी तरह वह बात छनकर राणा सांगा तक पहुँच गयी। अपने कानों से सुनी बात की अपेक्षा दूसरे के द्वारा कही गयी बात बहुत ठेस पहुँचाती है। उसी प्रकार उस बात को सुनकर राणा सांगा का खून उबाल पर आ गया और उन्होंने ईडर पर आक्रमण करने का निश्चय कर लिया था। कुछ भी रहा हो किन्तु इतना तो सत्य था कि राणा अपने स्वाभिमान के सामने किसी को कुछ नहीं समझते थे। अतः आक्रमण के निश्चय के अतिरिक्त उन्हें और कुछ नहीं सूझा। राणा सांगा के अबकी बार के आक्रमण में किसी से कोई सहायता न पाने के कारण मुबारिज–उल–मुल्क ने अपनी सेना को अपने साथ लिया और तुरन्त वहाँ से भाग खड़ा हुआ। इस भीषण आक्रमण में राणा सांगा ने ईडर को तो अधीनस्थ कर ही लिया और अहमदनगर के दुर्ग पर भी अपना अधिकार कर लिया था। मुबारिजउल मुल्क घायल होकर भी सांगा के डर के मारे अहमदाबाद की ओर भाग गया। इस आक्रमण का प्रकट लाभ यह हुआ था कि उस बार राणा सांगा का अभियान अनवरत चलता रहा और सांगा कुल जीतते हुए चित्तौड़ पहुँच गऐ थे।

बाबर का आरम्भिक जीवन

बाबर एक ऐसा मुस्लिम स्वयंभू नेता था जो अपने साम्राज्य को बराबर बढ़ाने तथा धन–प्राप्त करने का लक्ष्य बना चुका था। इन दोनो के प्राप्त होने में जो भी संभावित या प्रकट बाधा थी उसे वह बिना देर किये दूर करना अथवा हमेशा के लिए नष्ट कर देना अपना उद्देश्य बना चुका

था। यही दो कारण अथवा उद्देश्य उसके जीवन में उसके जीवन भर संघर्ष करने के लिए प्रेरित करते रहे थे। उसे इसी लक्ष्य को हासिल करने के लिए जीवन भर लड़ाइयाँ लड़नी पड़ी थी। बाबर के खून में माता एवं पिता दोनों के पक्षों का प्रभाव प्रभावशाली थे। जैसा कि इसके पूर्व प्रसंग आया है कि उसके पिता तैमूर और माता चंगेज खाँ के वंश से सम्बन्धित थी। इसका सीधा असर यह हुआ कि बाबर के रक्त में हर पल मंगोलों की क्रूरता और तुर्कों के साहस का अजीब मिश्रण था। इसका परिणाम यह रहा कि बाबर ने अपने जीवन में कभी किसी पर दया नहीं दिखाई तथा एक क्रूर व्यक्ति की तरह आक्रमण करता हुआ सदा आगे बढ़ने का ही उसने अपने जीवन का लक्ष्य बना रखा था।

ए0एल0 श्रीवास्तव[12] का इस सन्दर्भ में मत रहा है कि एक अकाल प्रौढ़ बालक था। उसकी मानसिक शक्तियों का एक ऐसा सुन्दर विकास हुआ था कि वह राजनैतिक घटनाओं के महत्व को बहुत ही आसानी से परख लेता था। और मानव के चरित्र को आसानी से पढ़ लेता था।

जब बाबर के पिता उमरशेख मिर्जा मर गए तब बाबर बहुत छोटा था। लगभग 11 वर्ष की अवस्था में अपने पिता की गद्दी पर बैठा था। इसकी इस अवस्था को देखकर इस बाबर के सम्बन्धी विश्वास पात्र नहीं थे वे सभी के सभी विश्वासघात कर रहे थे। इतना ही नहीं उन सभी ने मिलकर बाबर के विरुद्ध षड्यन्त्र करना आरम्भ कर दिया था। उनके भी मन में बाबर की गद्दी ही दिखाई पड़ रही थी। बाबर के पिता उमरशेख मिर्जा एक शिक्षित और सौम्य व्यक्ति थे लेकिन उनका कोई भी इस

बालक पर प्रभाव नहीं पड़ सका था। बाबर की शिक्षा आदि के सम्बन्ध में यद्यपि कोई भी जानकारी प्राप्त होती है किन्तु इतना अवश्य रहा होगा कि जो पिता धार्मिक प्रवृत्ति का और कुरान और मसनवी का अध्ययन करने वाला रहा हो उस पिता ने निश्चय ही अपने बेटे के अध्ययन के लिए जरूर ही उचित प्रबन्ध किया रहा होगा। इतना तो स्पष्ट रूप से कहा जा सकता ही है कि जिस समय बाबर के पिता की मृत्यु हुई थी उस समय बाबर अंदीजान में चारबाग में था। वहीं पर उसे अपने पिता उमरशेख मिर्जा की मौत का समाचार 9 जून 1494 ई0 को मंगलवार के दिन दिया गया था और उसने आकर गद्दी संभाल लिया था। इस गद्दी को संभालने के समय उसकी उम्र 11 वर्ष 4 माह 8 दिन की[13] थी।

उपर्युक्त संकट की जिस घड़ी में बाबर ने जिस शासन सत्ता का संभाला था यदि वह बाबर पराक्रमी और बुद्धिशील नहीं होता तब वह शासन सत्ता को संभालने की हिम्मत न करता और यदि किसी प्रकार की हिम्मत को जुटाकर गद्दी पर बैठ भी जाता तो वह सफल न हो पाता और गद्दी से उतार दिया जाता। इस विषम परिस्थिति के चलते भी बाबर ने गद्दी संभाला और बड़ी ही होशियारी से वह अपने शासन की सीमा को बढ़ाता रहा। उसने कभी कोई इस प्रकार से कार्य नहीं किया था जिसमें कि उसकी कभी शिथिलता प्रकट हुई हो। उसके जीवन में कभी आलस्य नहीं आया था। वह हर समय सक्रिय ही बना रहा। इसी सक्रियता के रहते उसने अपने जीवन में जब भी जो चाहा उसे प्रायः देर सबेर प्राप्त कर लिया था। बाबर को आरम्भ से ही अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने और

स्थिर करने के लिए बहुत ही परिश्रम करना पड़ा था। उस समय अवस्था कम होने से बाबर प्रायः प्रत्येक कार्यों के लिए परामर्श लिया करता था।

बाबर के गद्दी पर बैठने का समाचार बाबर के चाचा अहमद मिर्जा को कुछ भी अच्छा नहीं लगा था। वह उस राज्य को हड़पने की ताक में बराबर था। जब 1495 में अहमद मिर्जा की मौत हो गयी तब बाबर को गद्दी सम्भाले हुए मात्र एक वर्ष ही बीता था कि बाबर ने बहुत ही कुशलता और धैर्य का परिचय दिया था। उस अहमद मिर्जा की मृत्यु के बाद बाबर ने देर नहीं किया था और अहमद मिर्जा के राज्य समरकन्द पर भीषण आक्रमण कर दिया था। इस अभियान में समरकन्द बाबर के अधिकार में आ गया था किन्तु बाबर के साथ एक ऐसी घटना घटी कि बाबर वहाँ बीमार हो गया था। इस अस्वस्थता के चलते परिणाम यह रहा कि बाबर के अधिकार से फरगना और समरकन्द निकल गए थे।

स्वस्थ होते ही बाबर शान्त बैठने वाला नहीं था इसके कारण बाबर ने फरगना और समरकन्द को हाथ में लेने का प्रयास तो किया किन्तु उस अभियान में बाबर को असफलता ही हाथ लगी थी। इस असफलता के साथ बाबर के दिन बहुत बुरे आ गये थे। 1497 ई0 से 1504 ई0 तक बाबर का समय बहुत खराब रहा था। बाबर को कहीं कोई शरण देने वाला नहीं था। इसलिए इस काल में बाबर को निर्वासित जीवन बिताना पड़ा था। वह बहुत ही परेशान हुआ था और इसी काल में बाबर को दर–दर की ठोकरें खाते हुए समय बिताना पड़ा था। इस प्रकार के जीवन को बिताते हुए बाबर को निराश हो जाना पड़ा था। इस निराशा के चलते उसे

जब कुछ नहीं सूझा था तब बाबर चुपचाप काबुल चला गया था और किसी प्रकार उसने अपना समय बिताया था।

काबुल में रहते रहते काबुल पर बाबर की निगाह लग गई थी। बाबर चुप बैठने वालों में नहीं था। बाबर ने काबुल के सरदारों का असरदार सहारा लेकर 1505 ई0 में पूरे काबुल को अपने कब्जे में ले लिया था। इस सन्दर्भ में बाबर ने स्वयं लिखा था[14]– ''अक्टूबर 1504 के अन्तिम 10 दिनों में बिना किसी लड़ाई, बिना किसी प्रयत्न के मैंने काबुल और गजनी पर अधिकार कर लिया था।'' इस प्रकार से बाबर ने 1505 ई0 से 1525 ई0 तक काबुल पर राज्य किया था। यहीं से वह फरगना और समरकन्द को भी अपने हाथ में लेने का प्रयास बराबर करता रहा था किन्तु उसे इस कार्य में सफलता नहीं मिल सकी थी।

अभी बाबर के शासन सम्भालने का आरम्भ का ही समय था। इस प्रकार 1525 ई0 तक बाबर 42 वर्ष का हो चुका था। उसे इस काल तक बहुत सारे अनुभव हो चुके थे।

काबुल पर शासन करते–करते बाबर की निगाह हिन्दुस्तान पर लग गयी थी। वह हिन्दुस्तान को जीतने के लिए बार–बार तुला हुआ था। इतनी उतावली स्थिति होने पर भी वह कुछ कार्यवाही इसलिए नहीं कर सका था क्योंकि उसके अमीर सभी जगह दुर्व्यहार करते थे। उनके दुराचरण तथा उसके भाइयों के विरोध के कारण बाबर ने कोई महत्वपूर्ण निर्णय नहीं लिया था।

बाबर ने यद्यपि 1519 ई0 से 1524 ई0 के बीच भारत के पंजाब पर चार बार आक्रमण कर डाले थे किन्तु उसे सफलता नहीं मिली थी। जिसके कारण बाबर लाहौर तक ही सीमित रह गया था। वह लाहौर के आगे नहीं बढ़ सका था। इस प्रकार बाबर कुछ दिन फिर शान्त रहा। इस बीच में बाबर अन्दर ही अन्दर अपनी स्थिति का आकलन करते हुए रणनीति की तैयारी में लगा हुआ था।

इसके बाद बाबर और इब्राहिम लोदी के मध्य पानीपत में भीषण युद्ध हुआ। इस युद्ध के पूर्व बाबर 25000 सैनिकों और 700 तोपों के साथ इब्राहिम लोदी और उसके एक लाख सैनिकों के साथ युद्ध करने के लिए उतावला था। एक दूसरे से इतने भयभीत थे कि पानीपत के मैदान में बाबर और लोदी की सेनाएं एक सप्ताह तक आमने–सामने खड़ी रहीं किन्तु आक्रमण नहीं कर सकी थीं। इसका कारण यह था कि दोनों पक्ष एक दूसरे से डरे हुए थे। अन्त में 21 अप्रैल 1526 ई0 को बाबर ने अपनी सेनाओं को आक्रमण करने के लिए दिन में नौ–दस बजे के लगभग आदेश दे दिया। घमासान युद्ध होता रहा इस युद्ध में 16,000 सैनिकों के साथ इब्राहिम मारा गया था।

बाबर की समस्यायें/कठिनाइयाँ

जैसा कि पूर्व में कहा गया है कि बाबर ऐसा व्यक्ति था जो कि अपने जीवन में कभी शान्त बैठने वाला नहीं था। वह हर पल सक्रिय और बुद्धि के बल पर अपनी उन्नति के लिए कुछ न कुछ विचार अवश्य करता रहता था। अपने राज्य के विस्तार के लिए बाबर बराबर सक्रिय रहा करता था।

बाबर के आरम्भिक काल से अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित रहीं जिनका सामना बाबर को जीवन भर करना पड़ा था। कम अवस्था में शासन का सम्भालना, अपनों के द्वारा विरोध करना, धन संग्रह की आदत, राज्य का विस्तार करने का विचार, महत्वपूर्ण स्थानों पर अपने आधिपत्य जमाने का विचार, स्वाभिमान तथा दूसरों के प्रभाव का सहन न करना बाबर के लिए जीवन–काल पर्यन्त कठिनाइयाँ लाते रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि बाबर को अपने जीवन भर में कुल मिलाकर युद्ध ही करना पड़ा था। जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है कि– बाबर लगभग 11 वर्ष की आयु में ही गद्दी पर बैठा था। इस प्रकार के उदाहरण इतिहास के पन्नों पर ढूंढने पर भी नहीं मिलते हैं। बाबर की उस अवस्था को देखकर उसके अपने ही ईर्ष्या करने लगे थे। इतना ही नहीं बाबर के जितने भी नजदीकी थे वह सब इस ताक में थे कि वे किसी न किसी प्रकार से बाबर को शासनच्युत कर देना चाह रहे थे।

आरम्भिक काल में बाबर के प्रधानरूप से दो शत्रु थे। प्रथम रूप से बाबर के शत्रु के रूप में अबुल खैर का प्रतिभाशाली प्रपौत्र था। उसे ही युवराज मुहम्मद शैबानी के नाम से इतिहास में[14] जाना जाता था वह उस समय 'शाह–ए–वख्त' के रूप में जाना जाता है इसे ही 'भाग्यशाली' हिन्दी में माना जाता है। उस शैबानी ने अपने युवावस्था में अनेकों इस प्रकार के कार्य करके अनेक प्रकार के महत्वपूर्ण उदाहरण दूसरों के लिए आदर्श के रूप में प्रस्तुत कर दिये थे। आगे समय अपनी गति से बढ़ता गया और यही शैबानी बाबर के समय का था फिर भी उस समय बाबर का बहुत

बड़ा कट्टर प्रतिद्वन्दी था। बाबर का विरोध बाबर के लोग ही करते रहे। यद्यपि विरोध कहीं भी हो सकता है किन्तु बाबर एक ऐसा शासक था जो कि अपने को सबसे बड़ा शासक के रूप में देखना चाहता था। इस प्रबल इच्छा के चलते उसे प्रायः हर जगह विरोध पर विरोध झेलना पड़ा था। इसका अधिकांशतः दुष्परिणाम यह हुआ कि बाबर के काफी धन की हानि तो हुई ही उसके साथ बाबर के साथ रहने वाले बहुत सैनिक भी मारे गये थे।

यद्यपि फरगना का राज्य बाबर को अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् विरासत में प्राप्त हुआ था। यह राज्य इतना बड़ा था कि कम उम्र के बाबर को उस राज्य को सुरक्षित करने के लिए बहुत प्रयास सावधानीपूर्वक करने पड़े थे। डॉ0 राधेश्याम[15] के अनुसार पिता की मृत्यु के बाद विरासत के रूप में प्राप्त फरगना का राज्य 50000 वर्गमील तक विस्तार में था। उस राज्य की जलवायु उत्तम थी। वहां अनेक प्रकार की फसलें उत्पन्न हो जाया करती थीं। इतना ही नहीं उस फरगना राज्य में ऐसे भी स्थान थे जहाँ पर कि रहकर शिकार खेलने में बहुत सुविधा रहती थी। इस प्रकार प्रकृति ने फरगना राज्य को प्रभु प्रदत्त (God Gifted) बना दिया था।

उस फरगना राज्य की भौगोलिक परिस्थिति उस प्रकार की थी कि तीनों तरफ पर्वत विद्यमान थे। यह पर्वत पश्चिम दिशा को छोड़कर शेष तीनों तरफ से उस फरगना राज्य की सुरक्षा के कवच साबित होते थे। इस फरगना राज्य के पूर्व में कशगर, पश्चिम में समरकन्द तथा दक्षिण में बदख्शाँ के पर्वत थे। इन पर्वतों की घाटियों में से सर्र नदी पश्चिम से पूर्व

की ओर बहा करती थी। इस प्रकार इस सर्र नामक नदी के उत्तर में सात प्रशासनिक क्षेत्र हुआ करते थे। उस सर्र नदी के दक्षिण में जो प्रशासनिक क्षेत्र थे उस पर आक्रमणकारी सदा आक्रमण किया करते थे वे स्थान जो आक्रमण को झेलते थे वे इस प्रकार थे–

1. अन्दीजान
2. उश
3. मर्गिनान
4. असफेरा
5. खोजन्द
6. कन्द ए बादाम
7. हा दरवेश

फरगना राज्य की राजधानी दक्षिणी प्रवेश में बन्दीजन नामक शहर था। बाबर[16] ने अपने द्वारा लिखित बाबरनामा में लिखा है कि माउराउन्नेहर में समरकन्द तथा केश के अतिरिक्त अन्दीजान दुर्ग से बड़ा दुर्ग कोई भी नहीं था। इनमें तीन द्वार की बात कही गयी है। किले के भीतर प्रवाहित होने वाली 9 जलधाराओं को बताया गया है। बाबर ने यह भी लिखा है कि सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह है कि इन सभी प्रवाहित होने वाली जलधाराओं का उद्‌गम मात्र एक ही नदी थी। किले के बायीं ओर पत्थर की एक बड़ी चौड़ी सड़क की भी चर्चा बाबर ने किया है।

इतना ही अन्दीजान के पश्चिम में 47 मील तथा 4.5 फर्लांग की दूरी पर मर्गीनान स्थान की चर्चा बाबर ने किया है। वह मर्गीनान स्थान उस समय में अंगूर और खूबानी के लिए मशहूर था। इस प्रकार के महत्वपूर्ण राज्य की सुरक्षा के लिए बाबर को सचेष्ट रहना होता था। वह क्रियाशील बाबर हर समय उस फरगना को सुरक्षित किया करता था। इस प्रकार का महत्वपूर्ण राज्य किसी को भी सुरक्षा के लिए बाबर प्रेरित कर सकता था तो बाबर जैसा महत्वाकांक्षी शासक और योद्धा फिर चुपचाप भला कैसे बैठता ? यह बाबर की विशेषता तो थी ही किन्तु यह सक्रियता बाबर के लिए हमेशा समस्या के रूप में विद्यमान रही जिसे कि बाबर को जीवन पर्यन्त झेलना पड़ा था।

बाबर की आदत धन संग्रह करने की थी। किसी को भी विकास करने के लिए धन की आवश्यकता हुआ ही करती है उस पर भी सब जगह विजय की कामना करने वाले को तो पग–पग पर धन की आवश्यकता पड़ती ही रहती है। सैनिकों की व्यवस्था तथा उनके लड़ने के योग्य साज–सामान के लिए अपार धन और साधन की जरूरत पड़ती रही है। बाबर इसी श्रेणी में थे जिन्हें धन की आवश्यकता बहुत हुआ करती थी। बाबर ने इसी धन की प्राप्ति के लिए अनेकों बार आक्रमण किये थे। यद्यपि बाबर के पास बहुत अधिक सेना नहीं थी किन्तु बाबर की आर्थिक स्थिति बहुत सुदृढ़ रही। इसका परिणाम यह हुआ कि सेना का मनोबल कभी धन की कमी में नहीं टूट पाया था। जब कभी सेना का मनोबल कम हुआ भी तो बाबर ने अपने उपदेश देते हुए अपने सैनिकों में फिर से जान फूँकी और उन सैनिकों को लड़ने के लिए मृत्युपर्यन्त प्रेरित किया। इस

उपदेश के चलते यह प्रभाव हुआ कि बाबर के सैनिक फिर से पहले जैसे उत्साह वाले होकर बाबर का पूरे मनोबल के साथ सहयोग करने में अपने को अर्पण कर दिए थे।

अपने स्थान को विस्तार करने की प्रवृत्ति प्रायः सब में हुआ करती है। बाबर इसी प्रवृत्ति का महत्वपूर्ण पुरुष था। वह जब फरगना का शासक बन गया था तभी से उसके भीतर कुछ ईश्वर प्रदत्त शक्ति थी कि अल्प अवस्था का शासक होने पर भी वह राजनीति और युद्धनीति में बहुत तेज था। जहाँ पर जिस प्रकार की राजनीति की जरूरत हुआ करती थी वह बाबर वहाँ पर उसी प्रकार की नीति का प्रयोग करता था। जिस देश में जिस प्रकर की नीति वह उचित और शान्ति व्यवस्था को बढ़ाने वाली जानता था तब वह उस देश में वही नीति का प्रयोग करता था और सफल हो जाया करता था। जैसे भारत का वह अखण्ड सम्राट बनने का सपना देख ही रहा था। जब उसने यह जान लिया कि भारत की जनता गोबध की विरोधी है तब उसने तुरन्त अपने सेना में गोबध बन्द करा दिया था। इतना ही नहीं अपितु बाबर ने मदिरा को बन्द करा दिया। मदिरा के पात्रों को फेंकवा कर ही दम लिया था।

उसकी कुशलता का प्रभाव वह भी था कि जब राजपूतों की सेना बयाना से आगे बढ़ी जा रही थी तब बाबर की सेना में उत्साह कम हो चुका था। बयाना की हार और राजपूतों के साहसी कार्यों की प्रशंसा बाबर के खेमे में बहुत तेजी से पहुँच गई थी। बाबर के सैनिकों के चेहरे के नूर उतरते जा रहे थे। उस स्थिति में जब काबुल से आने वाले एक ज्योतिषी मुहम्मद शरीफ ने अपनी भविष्यवाणी कर दिया, ''इस समय मंगल तारा

पश्चिम में है। इसलिए उधर से लड़ने वालों से हम पराजित होंगे'' इस भविष्यवाणी ने अत्यधिक निराशाजनक वातावरण बना दिया।

बाबर उस समय मुहम्मद शरीफ की भविष्यवाणी से थोड़ा भी विचलित नहीं हुआ। उसने अपने हतोत्साहित सैनिकों को बुलाया और बहुत गम्भीर भाषण देकर सैनिकों में पूरे जोर और जोश के साथ नई स्फूर्ति लाने के उद्देश्य से कहना शुरु किया–

''सरदारों और सिपाहियों! प्रत्येक मनुष्य जो संसार में आता है, अवश्य मरता है। जब हम चले जायेंगे तब एक ईश्वर ही बाकी रहेगा। जो कोई जीवन का भोग करने बैठेगा उसको अवश्य मरना होगा। जो इस संसार रूपी सराय में आता है उसे एक दिन बिदा भी होना पड़ता है। इसलिए बदनाम होकर जीने की अपेक्षा मरना अच्छा है। मैं भी यही चाहता हूँ कि कीर्ति के साथ मेरी मृत्यु हो तो अच्छा होगा। शरीर जो नाशवान् है। परमात्मा ने हम पर बड़ी कृपा की है कि इस लड़ाई में हम मरेंगे तो शहीद होंगे और जीतेंगे तो गाजी कहलायेंगे। इसलिए सबको कुरान लेकर कसम खानी चाहिए कि शरीर में प्राण के रहते कोई भी पीठ दिखाने का विचार न करे।''

यह सारा का सारा भाषण खानवा के युद्ध की तैयारी की भूमिका के रूप में था। सैनिकों का गिरा हुआ उत्साह फिर सैनिकों में आकर द्विगुणित हो गया था। बाबर ने अपने इस भाषण में उन तथ्यों तथा उन कर्तव्यों के प्रति नाटकीय रूप से अपने उन सभी के सभी सैनिकों का ध्यान इस प्रकार से अपनी ओर ला दिया था कि कुछ भी देर नहीं लगी सभी पहले जैसे हो चले थे। यद्यपि बाबर के सैनिक बाबर के प्रति बहुत भरोसा रखा

करते थे ही फिर भी इस क्रान्तिकारी बाबर के नाटकीय भाषण ने सैनिकों के शरीर में जान फूंक दिया। सभी सैनिकों में नई शक्ति और साहस का अभूतपूर्व संचार हो गया था। सभी सैनिकों के चेहरे पर अब चमकने वाला नूर बहुत ही गर्मजोशी की सूचना दे रहा था। सभी सैनिक पूरे जोश के साथ अपने दुश्मनों पर टूट पड़ने का मन बना चुके थे और युद्ध करने के लिए वह पूरे मन से बेताब दिखते भी थे। बाबर को अपने इस भाषण का बहुत ही लाभ मिला। सारे हतोत्साहित सैनिक बाबर के साथ तो शरीर से थे ही किन्तु उस भाषण को सुनकर पूरे के पूरे मन से भी जीने, लड़ने और मरने के लिए भी बाबर के साथ सदा के लिए तैयार दिखाई देने लगे थे।

इस प्रकार अपने साम्राज्य को और बढ़ाने की एक नाटकीय नीति भी बाबर के अन्तर्गत विद्यमान हो गई थी जो कि विषम परिस्थिति को उस समय पूरे रूप से अनुकूल कर देने वाली साबित हो गयी थी। आखिरकार बाबर उस अपनी नाटकीय नीति में पूर्णतः सफल हो भी गया। कोई भी ऐसा सैनिक नहीं बचा था जो किस उत्साह की लहर से सराबोर न हो गया हो।

मेरा अपना विचार है कि बाबर उस नाटकीय नीति का सहारा न लेता और उस प्रकार का भाषण उतनी गर्मजोशी के साथ नहीं देता तब वह निश्चित रूप से उन हतोत्साहित सैनिकों के बल पर कुछ अच्छा करने की हालत में न होता। बाबर बहुत चालाक कुशल योद्धा के साथ ही साथ कुशल भाषणकार साबित हुआ। बाबर की उस समय उस नीति ने उसकी सेना में एक अजीब और नूरानी जोश पैदा कर दिया। उसके उस भाषण

का विशेष असर यह हो चला था कि प्रत्येक सैनिक मन से उस समय मौत का भय बहुत दूर जा चुका था। जो भाषण मृत्यु से न डरने का हमारे भारतीय मनीषियों ने समय–समय पर प्रस्तुत किया था उस भाषण को बाबर जो भारत वर्ष से किसी प्रकार से सम्बन्धित भी नहीं था फिर भी भारतीय मनीषी के समान भाषण देकर अपनी सेना में जान डालकर उस समय सभी सैनिकों को तैयार कर दिया था।

इसके बाद बाबर को उसके उस भाषण और नाटकीय नीति का सबसे अधिक लाभ यह हुआ कि उसे अपनी विजय की पताका को आगे बढ़ाने और फहराने में कोई विशेष अड़चन नहीं आयी। कोई भी युद्ध निश्चय ही हर पक्ष के लिए कमोवेश रूप में नुकसानदेह होता ही है। सबका सब फायदा ही नहीं होता फिर भी बाबर को अपनी उस नीति का पूरा का पूरा लाभ नकद होने की सीमा पर आ पहुँचा था। इस प्रकार से बाबर ने अपने को एक ऐसा कुशल शासक सिद्ध कर दिया कि वह अपने राज्य का विस्तार करने के लिए दूसरों पर हथियार के बल से विजय प्राप्त करने की क्षमता वाला है और अपनों पर भी तो जीभ रूपी कमान और वचन रूपी तीर को चलाकर बाजी जीत लेने की क्षमता किसी से कम नहीं रखता है।

काबुल में रहते हुए बाबर ने जो कठिनाई का अनुभव किया था उसका बाबर ने स्वयं ही उल्लेख किया है। इस समय कन्धार पर शैबानी खान ने आक्रमण कर दिया था उस समय उसके उस भीषण आक्रमण के कारण बाबर कुशल एवं राजनैतिक होते हुए भी बहुत डर गया था। उसे कोई उपाय उस समय नहीं सूझ रहा था। उस आक्रमण से डर कर बाबर

के सामने दो विकल्प दिखाई पड़ रहे थे। उन दोनो विकल्पों में किसी भी एक का सहारा लेने के परिणामस्वरूप बाबर को अपनी सुरक्षा की किरण दिख रही थी। वह बदखशाँ द्वारा भी अपने को सुरक्षित महसूस नहीं कर रहा था और यह भी सोच रहा था कि भारत जाने पर भी उसकी परेशानी दूर हो सकती थी। इन दोनो रास्तों में से किसी भी एक का सहारा लेने पर बाबर उजवेगों की डरावनी तथा घातक छाया से दूर होने का एहसास कर रहा था।

अपने ऊपर आयी हुई उस कठिनाई को देखकर बाबर ने अपने अधीनस्थ अमीरों को परामर्श देने के लिए एक सभा का आयोजन किया था। उस सभा में भी दो पक्ष हो चले थे। कासिम वेग तथा शेरिम तगाई ने बाबर को परामर्श दिया कि बाबर को बदखशाँ की ओर तुरन्त प्रस्थान कर देना चाहिए। दूसरा पक्ष यह हुआ कि बाबर हिन्दुस्तान की ओर बढ़ जाय। बाबर उस समय बहुत बुरी परिस्थिति में फँसा था। बाबर ने काबुल की देखरेख के लिए अपने विश्वासपात्र अब्दुर्रज्जाक को नियुक्त किया। इसी क्रम में शाहबेगम की राय के अनुसार बाबर ने मिर्जा खान को बदख्शाँ जाने को कह दिया। इस प्रकार अपनी व्यवस्था करके बाबर ने सितम्बर 1507 ई0 को हिन्दुस्तान ही जाने का निर्णय ले लिया और अपने निर्णय के अनुसार बाबर हिन्दुस्तान की ओर ही गया। बाबर ने काबुल में रहते जो भी कठिनाई का अनुभव शैबानी खान के आक्रमण से किया था, उसका ज्वलन्त वर्णन[19] अधोलिखित रूप में बाबर ने किया था:–

इस प्रकार भयभीत अवस्था के चलते बाबर हिन्दुस्तान की ओर प्रस्थान कर ही गया। वह किसी प्रकार से अफगान प्रदेश को पार किया और अपनी सेना के चार भाग कर दिए थे। प्रत्येक उस टुकड़ी को अफगानों के सफाया करने तथा उनके सभी सामान छीन लेने का आदेश अपनी सेना की टुकड़ियों को दे डाला था। बाबर ने यह भी आदेश कर दिया था कि सभी अफगानी लोगबाबर की अधीनता को स्वीकार कर लें। इस प्रकार अपने अभियान को चलाता हुआ बाबर किसी तरह मन्दरवार के पास पहुँच सका था।

उस मन्दरवार प्रदेश में रहकर बाबर ने अपनी कठिनाई के समय किसी प्रकार बिताए थे। इसी बीच मन्दरवार में रहते हुए बाबर निश्चिन्त नहीं बैठा था। बाबर शैबानी खान से इतना डरा हुआ था कि दूर रहकर भी उसने अपने प्रबल शत्रु शैबानी खान की गतिविधियों की सूचना लेता रहा था और अपनी योजना भी बना रहा था। इस प्रकार अपने साम्राज्य को बढ़ाने तथा अपना आधिपत्य जमाने की भावना के चलते बाबर बहुत कठिनाइयों में ही रहा।

राणा सांगा और बाबर

राणा सांगा एक ऐसे आदर्श थे जो प्रायः हर समय परेशानी में रहे फिर भी उन्होंने अपना साहस कभी कम नहीं होने दिया था। डी0आर0 मांकेकर के अनुसार सांगा यूनिक पर्सनालिटी[20] के धनी योद्धा थे। वह जिस प्रकार अंगहीन दिखते थे उसका कोई भी दुष्प्रभाव उनके शरीर और विचार पर कभी नहीं दिखाई दिया था। इनके भालपट्ट से एक विशेष

प्रकार का तेज चमकता और छलकता था। उन सांगा में अपने अदम्य साहस के बल पर अपने विरोधियों के न केवल छक्के छुड़ा दिये थे अपितु अपने विरोधियों पर अपना दबदबा बराबर बनये रखा था। यद्यपि अपने ही बहुत ही दुश्मन थे किन्तु कुछ सांगा के भाग्य नें कुछ सांगा के साहसिक कदमों ने और कुछ उनके सहयोगियों के सहयोग ने राणा सांगा को इतनी शक्ति प्रदान कर दिया था कि सांगा अपने समय में उत्तर भारत के अन्तर्गत न केवल एक प्रभावशाली शासक के रूप में उभर के सबके प्रिय बने अपितु तत्कालीन हिन्दुओं के कुशल संरक्षक के रूप में भी राणा सांगा की एक अमिट पहचान बन गई थी। हिन्दुओं की दृष्टि उनकी ओर हर पल लगी रहती थी। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि राणा सांगा भी इस भावना की कद्र करते थे। कभी भी राणा सांगा ने अपने जीवन के किसी भी क्षण में हिन्दुओं की शान के विपरीत कोई भी कार्य नहीं किया था। राणा सांगा की उस प्रकार की भावना से मेवाड़ के विरोधी हिन्दुस्तानी नवाब ही नहीं बाबर तक भी राणा सांगा को हिन्दुस्तान की एक बहुत बड़ी शक्ति के रूप में स्वीकार करते थे। राणा सांगा के अदम्य साहस के चलते बाबर और राणा सांगा के अदम्य साहस के चलते बाबर और राणा सांगा एक दूसरे को जानने के प्रयास में रहते थे।

राणा सांगा ने अपने सिद्धान्त और देश के साथ कभी कोई समझौता करने की बात भी मन में कभी नहीं आने दिया था। खानवा के युद्ध में आहत होने के बाद जब राणा सांगा को जयपुर की विरासत बसवा[21] में ले जाया गया तो उस समय राणा सांगा बेहोश थे। होश आने पर राणा सांगा

ने अपने घोड़े की मांग करते हुए युद्ध के मैदान में जाने का मन बना लिए थे। जब राणा सांगा ने बाबर से अपनी सेना की पराजय सुनी तब राणा सांगा के गालों पर आँसू के बूंद नाचने लगे थे। इस घटना के द्वारा आहत होकर राणा सांगा ने कभी चित्तौड़ न जाने की शपथ ले डाली थी, जब तक कि वह शत्रु से बदला न ले लेते। यह सब राणा सांगा का देश प्रेम ही तो था।

मेरे विचार से बाबर और राणा सांगा का जो था उस समय इस धरती पर राणा सांगा और बाबर दो ही महान् दल और बल रखने वाली शक्तियाँ थीं। यह दोनो एक दूसरे को समझने का प्रयास करते रहे। राणा सांगा भारतीय परम्परा और आदर्श मर्यादा के प्रतीक थे। राणा सांगा ने कभी किसी को उजाड़ा नहीं अपितु स्वाभिमान से युक्त राणा थे। यदि राणा सांगा का शरीर क्षतिग्रस्त न होता तो राणा सांगा कुछ भी कर सकते थे और उनकी बराबरी का कोई शासक उस समय नहीं हो सका था। राणा सांगा एक ऐसे हिन्दू एवं राजपूत थे कि उन्होंने विरोधी राजाओं को केवल झुकाया ही था, कभी उन्हें नष्ट नहीं किया था। वह राणा सांगा तो कालिदास के महाराज अज के समान थे जिन्होंने विरोधी को झुकाया ही था। जब विरोधी राजा ने हार मान ली अथवा उनके सामने विनम्रता प्रकट कर दी तब राणा सांगा ने भी उसे क्षमा कर दिया। इस प्रकार राणा सांगा मध्यमवर्गी और उस समय के लौह पुरुष थे। अयोध्या के नरेश महाराज अज भी उसी प्रकार थे। कालिदास ने लिखा है, "अज न तो बहुत कठोर थे और न तो बहुत कोमल। अज ने बीच का मार्ग पकड़ रखा था। इस कारण से अज ने अपने शत्रु राजाओं का बिना उनकी गद्दी से उतारे ही

उनको उसी प्रकार झुका दिया था। जैसे मध्यम गति से बहने वाला वायु वृक्षों को उखाड़ता तो नहीं पर झुका अवश्य देता[22] है।

राणा सांगा का अपना सैनिक जीवन था जो कि सफलताओं के प्रारम्भिक सोपान से आरंभ हुआ था। जैसे कि पूर्व में कहा जा चुका है कि राणा सांगा ने 1508–09 ई0 में शासक बना था । 1520 और 1540 ई0 के बीच में राणा सांगा ने मालवा और दिल्ली के सुल्तानों को अनेक बार हराया था। ऐसी मान्यता[23] है कि राणा सांगा इतने अधिक शक्तिशाली और कुशल शासक थे कि मालवा और दिल्ली के सुल्तानों के साथ राणा सांगा को अट्ठारह बार युद्ध अवश्य करना पड़ा था किन्तु राणा सांगा ने अपनी सैन्य कुशलता के चलते मेवाड़ और दिल्ली के सुल्तानों को अटठारहों बार पीछे की ओर भगा दिया था। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि प्रथम बार जब दिल्ली और मेवाड़ के सुल्तानों के साथ युद्ध हुआ होगा उसके बाद दोनो सुल्तान और सावधान हुए होंगे और पहले की अपेक्षा अधिक तैयारी के साथ युद्धभूमि में आते रहे होंगे किन्तु अट्ठारहों बार राणा सांगा के साथ उनका (दिल्ली और मेवाड़ के सुल्तानों का) मात खाना राणा सांगा की शक्ति सम्पन्नता ही तो थी। अपने इसी शक्ति सम्पन्नता के चलते राणा सांगा को प्रत्येक बार विजय श्री की प्राप्ति होती चली गयी थी।

राणा सांगा ने अपनी शक्ति सम्पन्नता और कुशलता के चलते महमूद द्वितीय को गागरौन के पास युद्ध में पकड़ लिया था। यद्यपि उस लड़ाई में वह महमूद बहुत बुरी तरह घायल हो गया था। उस शत्रु को भी

सांगा ने सम्मानित रूप में रखा था और उसका उपचार भी करवाया था। यद्यपि राणा सांगा उस महमूद को चित्तौड़ जरूर ले गया था फिर भी महमूद को राणा सांगा ने सम्मान के साथ उसके राज्य की ओर भेज दिया था। यद्यपि इस राणा सांगा की भूल के रूप में कुछ इतिहासविद्ों ने माना था किन्तु यह सांगा की राजनैतिक कुशलता के प्रतीक रूप में था।

इस प्रकार से राणा सांगा ने महमूद द्वितीय पर दया करके अपने राज्य की सीमा को सुरक्षित ही नहीं किया अपितु राणा सांगा ने दिल्ली के सुल्तान को बहुत कमजोर भी बना डाला था। इस युक्ति के प्रसंग से मालवा और दिल्ली के सुल्तानों में एक गुट और एकजुट होने की सम्भावना को बहुत करारा झटका लगा था और आगे चलकर भी वह दोनो एक दूसरे के निकट नहीं आ सके। मेदिनी राय को भी अपना आश्रित बनाकर राणा सांगा ने मेदिनीराय को अपने और मेवाड़ की सीमा पर एक सशक्त संरक्षक की जैसे नियुक्ति कर दी थी। वह कुशल नीति महाराणा कुम्भा की नीति का अनुसारण मात्र थी। यह नीति प्रत्येक दृष्टि से समयोचित नीति थी। इसका परिणाम यह हुआ कि महाराणा सांगा को गुजरात और मालवा की ओर से कभी किसी प्रकार का भय नहीं था।

इस विधि से राणा सांगा ने भारतीय सुल्तानों को हरा करके बहुत ही महत्वपूर्ण ख्याति प्राप्त कर ली थी। इसके साथ ही एक कुशल शासक के रूप में अपने को सिद्ध कर दिखाया था। इन सब अनुकूल परिस्थियों के चलते भी राणा सांगा को और शक्ति सम्पन्न और अधिक कुशल शासक के रूप में सिद्ध करना था क्योंकि वह बाबर ऐसा विरोधी था जो कूटनीति क्षेत्र में राणा सांगा से किसी प्रकार से कहीं भी कम नहीं प्रतीत

हो रहा था और कोई दूसरा नहीं अपितु बाबर ही था। इस प्रकार अपने आपको भारतीय शासकों में अपनी विजयों से और राजपूतों के नेता होने के कारण राणा सांगा ने अपने को भारत के भविष्य का निर्णायक बना लिया था। इसी के साथ अपने राज्य और देश के शत्रुओं के साथ टक्कर लेने के चलते अपने को युद्ध का आदी बना लिया था। उस समय जितने भी स्थानीय राजपूत और अन्य सहयोगी थे सभी के सभी राणा सांगा से यह अपेक्षा रखा करते थे कि अब शीघ्र ही पतनोन्मुखी सल्तनत को समाप्त करके राणा सांगा दिल्ली में फिर से हिन्दू राज्य की स्थापना करने में समर्थ होगा। अब राणा सांगा में उतनी शक्ति सम्पन्नशीतला के चलते राणा सांगा उस प्रकार के व्यक्तित्व के रूप में अपने को उभार चुके थे जो बाबर का विरोध करने और टक्कर लेने की क्षमता रखा करते थे।

दूसरे पक्ष में देखने पर सत्य यह था कि फारस और टर्की को छोड़कर बाबर भी एशिया का एक महत्वपूर्ण और शक्तिसम्पन्न शासक के रूप में अपने को सिद्ध कर चुका था। बाबर ने भी राणा सांगा की भाँति अपने जीवन–काल में अनेक प्रकार के उथल–पुथल देखकर स्वयं ही खट्टे और मीठे अनुभवों को प्राप्त कर अनेक प्रकार की सबकें सीख रखी थीं। बाबर को अपने बन्धुओं से विरोध करने में तथा अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखने में अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था।

बाबर की उजवेगों, तुर्क तथा फारस के अनेक तत्कालीन नेताओं से भिड़न्तें हुईं थीं जिनके चलते बाबर को अपना अस्तित्व स्थिर कर देना पड़ा था। हाँ, इतना अवश्य था कि अपने धैर्य, साहस, बल और राजनैतिक

कूटशक्ति के चलते बाबर ने काबुल का नया राज्य अवश्य प्राप्त कर लिया था। इतना होने पर भी बाबर जैसा महत्वाकांक्षी शासक उस छोटे से काबुल मात्र को प्राप्त कर कभी संतुष्ट रहने वाला नहीं था। इस प्रकार की इच्छाशक्ति के चलते बाबर उस समय हिन्दुस्तान पर अपना आधिपत्य स्थापित करने के लिए पूरे जोर, जोश और मन से उतावला हो चुका था। यद्यपि बाबर ने फरगना और समरकन्द को जीतने के लिए अनेक बार प्रयास किये किन्तु अनेक प्रयासों के करने पर भी बाबर फरगना और समरकन्द को जीत नही सका और बाबर को असफलता ही हाथ में लगी थी। युद्ध, कूटनीति, महत्वाकांक्षा, कुशलता और इच्छाशक्ति के चलते बाबर एक सुयोग्य और कुशल नेता था। उधर दिल्ली के सुल्तान सिकन्दर लोदी को हराकर राणा सांगा ने काफी ख्याति अर्जित कर लिया था। उसी क्रम में मालवा और गुजरात के सुल्तान क्रमशः महमूद द्वितीय और मुजफ्फरशाह द्वितीय को भी अपनी नीति के चलते दबा देने के कारण राणा सांगा का भी हिन्दुस्तान में बहुत दबदबा बन चुका था। इसके कारण राणा सांगा की किसी से कम न तो महत्वाकांक्षा थी और न ही धन, बल, जन, कूटनीति और इच्छाशक्ति की दृष्टि से किसी से किसी भी प्रकार कम ही अपने को मानता था।

इस भाँति उधर बाबर जैसे महत्वाकांक्षी और राणा सांगा जैसे महत्वाकांक्षी दोनो कुशल शासकों की एक जैसी स्थिति के चलते उन दोनो के मध्य उस समय टकराहट होनी स्वाभाविक हो चली थी जिसे कोई भी उस समय रोकने में अपनी सामर्थ्य कभी नहीं रखता था। बाबर ने यद्यपि उत्तर पश्चिम भारत पर विजय प्राप्त कर लिया था और इब्राहिम लोदी को

भी हरा दिया था किन्तु बाबर बराबर यह अपने ध्यान में रखता था कि केवल दिल्ली और आगरा की ही विजय बाबर को समूचे भारत का स्वामी कभी नहीं बना सकती थी। यदि उस बाबर को उस भारत की शासन, सत्ता को प्राप्त करना ही था तब तो उस समय बाबर को राजपूत शासकों और अफगान के विरोधियों से मुठभेड़ करना अपरिहार्य हो चला था। उस समय बाबर के मन में दो प्रकार की विचारधारायें आन्दोलित हो रही थीं।

1. अफगानियों के साथ मुठभेड़ की जाय।
2. राजपूतों के साथ लड़ाई लड़ी जाय।

इन दोनों विषम समस्याओं के चलते किसे छोड़ा जाय और किस की ओर प्रस्थान किया जाय ? यह निश्चय कर पाना बाबर के लिए एक चुनौतीपूर्ण, महत्वपूर्ण प्रश्न था। इस विषम परिस्थिति से परेशान होकर बाबर ने अपनी सैन्य–समिति[24] को बुलाया और उसके समक्ष इन दोनों प्रकार के विचारों को प्रस्तुत किया।

उस आहूत समिति नें बाबर को परामर्श दिया कि राणा सांगा को जीतने के विषय को बाबर फिलहाल एक किनारे कर दे और अफगानों से ही निपटने की बात अपने मन में आने दे। इसमें यह तर्क दिया गया था कि पानीपत के युद्ध में हार जाने का क्षोभ अफगानों में बहुत अधिक है और वे वर्तमान में भी उपद्रव कर रहे हैं। वे कभी आक्रमण कर कर सकते हैं किन्तु राणा सांगा की ओर से कभी किसी प्रकार का कोई भी खतरा अवश्यंभावी नहीं है।

बाबर बहुत विचारशील था उसने सैन्य समिति के उस निर्णय को उचित नहीं माना। उसने राणा सांगा से ही टकराहट करने का स्वयं निर्णय इसलिए लिया कि राणा सांगा भी बाबर के समान महत्वाकांक्षी था। इसका एक दूसरा कारण यह भी था कि अफगान और भारतीय नरेश दोनो राणा सांगा के कुशल नेतृत्व का उस समय लोहा माना करते थे। अतः राणा सांगा पर धावा बोलने तथा राणा सांगा को जीत लेने से अफगान आपने आप को स्वयं कमजोर मान लेते यह प्रबल संभावना बाबर को बराबर दिखाई पड़ रही थी। बस यही कारण था कि उस समय बाबर ने सोच लिया था कि राणा सांगा जैसी समस्या को प्राथमिकता के साथ निपटा देने पर अफगान समस्या आने आप समाप्त हो सकती है। इस प्रकार के महत्वपूर्ण विचार के चलते बाबर ने उस समय आगरा सैनिक–भर्ती आरम्भ करके सशक्त संगठन बनाना भी तेज कर दिया था।

इस प्रकार की तैयारी के चलते भी अब बाबर के सामने एक नवीन प्रश्न उठ खड़ा हुआ था कि सांगा के साथ युद्ध करने का कोई सटीक कारण भी तो होना चाहिए। अकारण तो युद्ध ठान देना और कुछ नहीं पागलपन ही सिद्ध हो जाता है। इसके साथ ही ऐसा कदम दुष्ट[25] होने का प्रमाण–पत्र साबित हो सकता था। किसी पर्याप्त कारण के अभाव में युद्ध करने लगना सैनिक नीति के विरुद्ध रखा गया कदम माना जाता था। बाबर ने एक बहाना ढूंढ़ निकाला वह बहाना था कि बाबर के काबुल में रहते राणा सांगा ने बाबर से वायदा कर लिया था कि पानीपत के युद्ध में वह बाबर की मदद करेगा। इसके साथ ही राणा सांगा अपनी सैन्य शक्ति

के साथ पहुंचकर बाबर के पक्ष में लड़ाई लड़ेगा किन्तु आगरा और दिल्ली को जीत लेने पर भी सांगा के युद्ध के लिए प्रस्थान करने का कोई नामोनिशान भी नहीं संकेतित हुआ था। असहयोग के माध्यम से बाबर ने राणा सांगा पर किये जाने आक्रमण को न्यायोचित करार दे डाला था।

यद्यपि बाबर के उक्त आरोप को भारतीय इतिहासविदों ने उचित ठहराया था किन्तु राजपूत–स्रोत उपर्युक्त आरोप को विपरीत मानते थे। उनका तर्क यह था कि बाबर ने काबुल में रहते हुए इब्राहिम को स्वयं के द्वारा पराजित करने के लिए राणा सांगा से मदद माँगी थी। यह कथन राणा सांगा के प्रधान पुरोहित ने डायरी में लिखा हुआ है। इसके साथ यह भी प्रस्ताव था कि इब्राहिम के हार जाने पर दिल्ली बाबर के राज्य में रहेगी और आगरा के पास पीलियावाल तक की भूमि राणा सांगा की राज्य सीमा में रहेगी। इस आशय की वार्ता सिलहदी के माध्यम से हुई थी। वास्तव में यहाँ तक का प्रस्ताव तो तर्क संगत प्रतीत होता है किन्तु बाबर ही अनजान देश में जाने की दृष्टि से राणा सांगा से सहायता की माँग कर सकता था। साँगा की ओर से कोई भी सहायता प्रस्ताव नहीं भेजा गया था। वैसे भी राजपूत किसी भी विषय मे अनावश्यक रूप से अपना हस्तक्षेप नहीं करना चाहते थे। इस आशय की कोई भी जानकारी बाबरनामा में भी नहीं उपलब्ध होती है और यदि हो भी तो कोई आवश्यक नहीं कि बाबरनामा की हर बात सत्य ही है। इसके पक्ष में उदाहरण किया गया है कि बाबरनामा में लिखा गया है जिसका भाव है कि बाबर और इब्राहिम के साथ युद्ध के चलते इब्राहिम के पास 12,000 सैनिकों का दल था किन्तु वास्तविकता तो इससे बहुत अधिक की थी। अतः बाबर के द्वारा

राणा सांगा पर लगाया गया आरोप कदापि सत्य के निकट भी नहीं लगता है।

इतना अवश्य था कि बाबर एक लूटपाट करने वाला था और राणा सांगा ने अपने मन में सोचा होगा कि बाबर इब्राहिम लोदी के राज्य को लूटपाट कर फिर काबुल वापस चला जायेगा और इब्राहिम लोदी बहुत कमजोर हो जायेगा इस आशय और पक्ष को अपने मन में रख करके राणा सांगा ने बाबर को मदद की स्वीकृत दे दिया रहा होगा किन्तु जब राणा सांगा ने विचारमन्थन किया होगा तो लगा होगा कि बाबर उत्तरी भारत में लगातार बढ़ता ही चला जा रहा है और उसका व्यवहार एक कठोर शासक की तरह स्पष्ट दिखाई पड़ रहा है तब राणा सांगा को अपने आश्वासन अपनी मान्यता में बहुत अन्तर दिखा होगा। अतः सांगा को बाबर के आचरण पर सन्देह साबित हुआ होगा। तत्काल पंजाब में बाबर का अधिकार होना और उस प्रान्त में बाबर द्वारा अपनी शासन सत्ता जमाना उस समय राणा सांगा को बहुत नागँवार गुजरा और बहुत अखरा।

बाबर की नीति से राणा सांगा जैसे कुशल राजनेता ने अन्दाज कर लिया कि बाबर एक अच्छे मित्र के रूप में नहीं हो सकता है कुछ ही समय के बाद एक भीषण शत्रु के रूप में सामने आने के संकेतों को दे रहा है। राणा सांगा ने यह भी समझ लिया था कि बाबर को किसी प्रकार की मदद देना वास्तव में बाबर के हाथ की कठपुतली बनना हो जायेगा।

बाबर के पक्ष में राणा सांगा द्वारा मदद न करने का एक कारण और भी था कि जैसे बाबर ने सैन्य समिति के सामने निर्णय प्राप्त करने के लिए प्रस्ताव रखा था उसी प्रकार राणा सांगा ने भी एक सभा का

आयोजन किया। सामन्तों को जब पता लगी कि राणा सांगा एक विदेशी को सहायता देने जाने वाले हैं तब उन सामन्तों ने एक मत होकर राणा सांगा को बाबर की सहायता करने से रोंका और यह भी समझाया कि बाबर की सहायता करना साँप को दूध पिलाना है। किसी साँप को दूध पिलाने से जैसे साँप का विष उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है और साँप पूर्वापेक्षा ओर घातक होता ही जाता है उसी प्रकार बाबर को मदद देना उसके आक्रमणकारी नीति को बढ़ावा देना है। बाबर अपना और पराया सांप की ही भांति नहीं मानने वाला है।

इस प्रकार अपने सामन्तों के निर्णय की उपेक्षा करना राणा सांगा ने अनुचित नहीं माना क्योंकि वैधानिक रूप से तो राणा सांगा के द्वारा सामन्तों के सम्मति का सम्मान करना ही था। यद्यपि एक बार राणा सांगा ने उपेक्षाभाव व्यक्त कर दिया था। अब उस प्रकार की परिस्थिति में राजहित और राजनैतिक दूरदर्शिता ने राणा सांगा को सामन्तों की सम्मत्ति के अनुसार तटस्थ रहना ही था। उस प्रकार के निर्णय से हटकर कुछ भी करना वास्तव में पूर्व स्वीकृति से हट जाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं था।

यदि उस समय इब्राहिम लोदी और बाबर की परिस्थिति का गहन अध्ययन किया जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि बाबर हिन्दुस्तान जैसे अनजान देश के अन्तर्गत लोदी जैसे वीर और साधन–सम्पन्न वीर से लड़ने को तैयार था जबकि लोदी की अपेक्षा बाबर के पास सभी साधन सीमित और अल्प थे। बाबर को यह भी तो विश्वास नहीं था कि वह लोदी के साथ लड़ाई लड़ने में विजय पा ही जायेगा।

उपर्युक्त सभी प्रकार की परिस्थितियों का आकलन कने से स्पष्ट हो जाता है कि उस प्रकार की परिस्थिति में बाबर ने ही राणा सांगा से मदद माँगी होगी। राणा सांगा के द्वारा बाबर से सहायता माँगना तो किसी भी प्रकार से तर्क संगत नहीं लगता है। वैसे भी राणा सांगा ने उस समय बहुत अधिक यश एक विजेता और कुशल राजनेता के रूप में प्राप्त कर रखा था। वैसी परिस्थिति में बाबर ने राणा सांगा से अवश्य ही सहायता माँग रखा होगा। यही तथ्य वास्तव में समयोचित रूप में प्रतीत भी होता है।

वास्तविकता तो यह थी कि राणा सांगा की प्रगति से बाबर बराबर परिचित था और सहन कर नहीं पा रहा था इसके अनेक कारण उपस्थित थे। उन पर अधोलिखित रूप में विचार किया जाना कालोचित प्रतीत होता है–

1. बाबर और इब्राहिम लोदी की भीषण लड़ाई में जब राणा सांगा ने यह स्पष्ट जान लिया कि इब्राहिम लोदी की हार हो चुकी है तब राणा सांगा ने उन भागों पर अधिकार करने में अपनी बहुत बड़ी सतर्कता प्रकट किया जो दिल्ली सल्तनत के अधिकार में राजस्थान के भाग थे।
2. राणा सांगा ने तुरन्त ही खण्डार के दुर्ग पर भी अपना अधिकार जमा लिया था जिससे किसी दूसरे की सम्भावना न रह जाय।
3. राणा सांगा ने तुरन्त कार्यवाही किया और 200 गाँवों के ऊपर अपना कब्जा कर लिया था जहाँपर मुसलमानी बस्तियाँ थीं।

4. खण्डार के दुर्ग पर कब्जा करके राणा सांगा ने हसन को दुर्ग से बाहर भगा दिया था।
5. पानीपत के युद्ध से भागकर महमूद लोदी राणा सांगा के पास उपस्थित हो गया था।
6. महमूद लोदी और राणा सांगा ने बाबर को दिल्ली से बाहर निकालने की योजना बना डाली थी।
7. हसन मेवाती भी भागकर राणा सांगा की शरण में उपस्थित हो गया था।

इस प्रकार उपर्युक्त अनेक विचारों के मन्थन से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि बाबर ने राणा सांगा के विरुद्ध हमला करने की योजना जो बनायी थी उसका एक मात्र कारण राणा सांगा की उन्नति मात्र थी। अब राजपूत और अफगान के गठबन्धन की संभावना को हमेशा के लिए ही बाबर ने राणा सांगा के विरुद्ध अपना कदम उठाना चाहा था। इस हमले के द्वारा राणा सांगा के द्वारा बाबर को दिये गए आश्वासन की उपेक्षा का परिणाम देने का उतना अच्छा अवसर कहाँ मिल पाने वाला था। उसी के एक कदम के रूप में राणा सांगा की शक्ति को वहीं पर रोक देने की नियति से बाबर ने मेंहदी ख्वाजा के बयान पर अपने अधिकार थोपने की लिए भेजा था।

उपरिलिखित सभी घटनाचक्र को अपने समक्ष रखते हुए बाबर ने राणा सांगा की स्वीकृति का बहाना ढूँढ कर राणा सांगा को दोषी ठहराया था। इतना ही नहीं अपितु राणा के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही के रूप में बाबर ने युद्ध की तैयारी प्रारम्भ कर दी थी।

उपरिलिखित दोनो महान योद्धाओं के वैमनस्य को और बढ़ावा देने में राजनैतिक घटनाक्रम प्रमुख काल के रूप में तो थे ही उसके अतिरिक्त धार्मिक और सांस्कृतिक पक्षों का भी दोनों की वैमनस्यता बढ़ाने में बहुत बड़ा हाथ था। जैसे– राणा सांगा अपने को हिन्दू धर्म का रक्षक माना करते थे। इसके साथ ही साथ राणा सांगा यह भी माना करते थे कि बाबर का इस प्रकार मनमानी ढंग से आगे बढ़ते रहना राणा सांगा और हिन्दुओं के हित के पूर्णतः विपरीत ही था। राणा सांगा हिन्दू और अपने हित की सुरक्षा करना अपना नैतिक कर्तव्य समझते थे, जो कि उचित भी था।

बाबर भी अत्यधिक महत्वाकांक्षी वीर था। जब राणा ने लोदी की हार के बाद कुछ क्षेत्रों पर अपना अधिकार करते हुए वहाँ के मुसलमानों को भगा दिया था तब से बाबर का खून और भी खौलने लगा था क्योंकि बाबर भी अपने को इस्लाम धर्म का रक्षक माना करता था। यद्यपि वह वैसा कुछ भी नहीं करता था। बाबर के समय में भारत के अन्तर्गत इस्लाम धर्म 400 वर्षों से पनपता हुआ चला आ रहा था।

बाबर यह समझ बैठा था कि राणा सांगा पर आक्रमण करके बाबर भारत में रहने वाले इस्लामियों के अन्तः स्थल में घर कर लेगा और अपनी प्रभुसत्ता को भारत में जमाने का उससे और अच्छा कोई भी अवसर नहीं हो सकता था। बाबर ने भी राणा सांगा आगे और बढ़ना मुस्लिम हित के पूर्णतः विपरीत मान लिया था। इसके अतिरिक्त बाबर ने अपने बाबरनामा में राणा सांगा के द्वारा मुस्लिम बस्तियों पर किये गय अत्याचार का बहुत ही दुःख के साथ उल्लेख किया था।

इस प्रकार हिन्दू धर्म की दृष्टि से बाबर का आगे बढ़ना हिन्दुओं के विपरीत था और बाबर की दृष्टि में राणा सांगा का आगे बढ़ते जाना और अधिक प्रभावशाली होते जाना इस्लाम धर्म के विपरीत लग रहा था। वास्तव में यही कारण प्रमुखता की भूमिका को निभाने वाले थे जिसने कि तत्कालीन दोनो महान योद्धाओं को एक दूसरे पर आक्रमण करने के लिए लगातार विवश कर ही दिया था। इस प्रकार सावधानीपूर्वक चिन्तन करने से यह निष्कर्ष स्पष्ट सामने आ जाता है कि उस समय दोनो महान् योद्धाओं के व्यक्तिगत और राजनैतिक कारणों ने मेवाड़–मुगल संघर्ष के लिए राणा सांगा और बाबर को आखिरकार प्रेरित कर दिया था।

हरविलास सारदा[26] ने राणा सांगा और बाबर दोनों का सूक्ष्म अध्ययन प्रस्तुत करते हुए इसी प्रकार अपने विचार प्रस्तुत किये हैं।

बाबर के द्वारा लिखित बाबरनामा से यह स्पष्ट हो जाता है कि बाबर को इस्लाम इलाके के ऊपर किए गये राणा सांगा के व्यवहार से बहुत कष्ट था। बाबर इस्लामी बस्तियों एवं वहाँ के परिवेश से बेहद परेशान था। इस प्रकार के सभी भाव बाबर ने अग्रलिखित रूप में प्रकट किए थे। सम्भवतः वह परिवेश बाबर को राणा सांगा के युद्ध करने के लिए बराबर प्रेरित करता ही रहा जिसके चलते बाबर युद्ध के करने की दृष्टि से उतावला हो चुका था[27]।

इस प्रकार बाबर का अपने इस्लाम धर्म के प्रति कट्टरतापूर्ण भाव स्वयं स्पष्ट हो जाता है। जबकि राणा सांगा के इस प्रकार के व्यवहार का

किसी भी इतिहासविद् ने कहीं पर नहीं किया है जिससे कि बाबर को इस प्रकार के उतावलेपन असर हुआ हो।

इस प्रकार अनेक विचार और विमर्श करने के बाद यह तथ्य स्वयमेव स्पष्ट हो जाता है कि बाबर और राणा सांगा के बीच चाहे परस्पर तनाव का प्रसंग रहा हो अथवा दोनों के मध्य युद्ध करने की स्थिति बनी रही हो किन्तु उपरिलिखित व्यक्तिगत अथवा राजनैतिक जो भी कारण रहे हों राणा सांगा और बाबर जैसे योद्धाओं के मध्य युद्ध होना अनिवार्य हो चला था। कुछ समय पूर्व से ही एक दूसरे की शक्तियों को ध्यान में रखते हुए दोनो पक्ष अपनी–अपनी विजय के लिए युद्ध की पूरी तैयारी में लगे हुए थे।

वास्तव में राणा सांगा उस समय हिन्दुस्तान के अन्तर्गत सबसे शक्तिशाली एवं कुशल योद्धा थे। वह असामान्य युद्ध की सामग्री और महत्वपूर्ण साधनों के स्वामी थे। कर्नल टाड ने राणा सांगा की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा किया है। उनके विचार[28] से राणा सांगा जहाँ साधनों से सम्पन्न थे वहीं उनका उस समय बहुत प्रभाव था। उनके प्रभाव के कारण ही उनके इशारे का इन्तजार उनके साथी नरेश, राव, रावल और रावत किया करते थे। इतना ही नहीं वह सभी लोग उनके आदेश पाते ही सब कुछ करने और मर मिटने के लिए विना विचार किए पूरे मन से तैयार रहा करते थे। उस प्रकार की शक्ति से सम्पन्न राणा सांगा के साथ बिना युद्ध किए और जीते बाबर किसी भी दशा में हिन्दुस्तान में मुगल साम्राज्य का

सपना भले ही देख लेता किन्तु वह सपना कभी भी साकार होने वाला नहीं था।

बाबर के पूर्व अनेक मुस्लिम आक्रमणकारी हिन्दुस्तान आए और लूटमार करके फिर वापस चले गये। राणा सांगा को यह विश्वास था कि बाबर भी उन्हीं सभी की भाँति वापस लौट जाएगा और उन्हें भारत के अन्तर्गत हिन्दू–पद–पादशाही स्थापित करने में किसी प्रकार की समस्या नहीं होनी चाहिए किन्तु जब राणा सांगा को बाबर के निर्णय एवं दृढ़ निश्चय का पता चला कि बाबर वापस होने वाले मुस्लिम आक्रमणकारियों जैसा नहीं है वह तो समूचे भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना करने की ठान रख ली है तब तो राणा सांगा के सामने एकमात्र रास्ता दिखाई पड़ रहा था और वह एकमात्र था बाबर के साथ युद्ध करना। इस प्रकार महाराणा सांगा और बाबर की अपनी–अपनी महत्वाकांक्षाओं का असर हुआ कि हिन्दुस्तान की धरती के ऊपर बाबर और महाराणा सांगा के मध्य महासंग्राम अत्यधिक भीषण रूप में लड़ा गया था।

महाराणा सांगा एक बहुत ही कुशल राजनीति के जानकार थे। देश, काल और परिस्थिति के अनुसार महाराणा सांगा ने बाबर को शक्तिहीन और भारत से भगा देने की नीयत से इब्राहीम लोदी के भाई महमूद लोदी के साथ हाथ मिला लिया था। वास्तव में बाबर ने उस प्रकार के राजपूत और अफगान के गठजोड़ को अपने लिए बहुत ही संकट के रूप में अन्दाज कर लिया था। यह गठबन्धन ऐसा हुआ कि भारत के इतिहास में खानवा के युद्ध के बाद वह गठबन्धन वास्तव में राष्ट्रीय स्मिता की सुरक्षा के लिए एक विदेशी आक्रान्ता के विरुद्ध संयुक्त रूप से राष्ट्रीय एकता का

प्रयत्न था। इस प्रयत्न को एक ऐतिहासिक आदर्श के रूप में आज भी स्वीकार करने की आवश्यकता है और आगे भी इसकी आवश्यकता बनी रहेगी।

पानीपत के युद्ध के तुरन्त बाद बाबर ने बयाना के ऊपर अपना प्रभुत्व स्थापित कर दिया था। उधर तो राणा सांगा भी बयाना को अपनी विरासत मान बैठे थे जिसका प्रभाव यह हुआ कि राणा सांगा ने अपने सफल प्रयास के परिणाम के रूप में उस बयाना पर अपना पुनः अधिकार जमा लिया था। इस कारण से भी बाबर और राणा सांगा के मध्य युद्ध का होना स्वाभाविक और अवश्यंभावी हो चुका था।

राणा सांगा एक कुशल राजनीति के जानकार थे। राणा सांगा ने राजपूत शासकों और अपने सामन्त योद्धाओं का एक विशाल संघ बना लिया था। ऐसा संघ बनाकर राणा ने बाबर के सामने एक लोहे का पंजा फेंक दिया था और बाबर के लिए चुनौती दिया था कि वह उस पंजा को उठा ले। राणा सांगा अपने राज्य की सीमा का विस्तार करने के लिए व्याकुल हो चुके थे। उसी के साथ राणा सांगा की महत्वाकांक्षायें राजपूतों की खोई शक्ति को फिर से पाने के लिए बार–बार प्रेरित करती रहती थीं। इस प्रकार अपने राज्य–विस्तार और खोई हुयी राजपूतों की शक्ति को फिर से प्राप्त करने के लिए राणा सांगा को बहुत बहुत प्रयास करना आवश्यक प्रतीत हो रहा था। इन्हीं की क्षतिपूर्ति के लिए राणा सांगा ने एक, दो, तीन और चार नहीं अपितु अपने पास के शासकों के साथ 18 बार युद्ध किया था और विशेष उपलब्धि थी कि राणा सांगा को कभी हार नहीं देखने को मिली। प्रत्येक युद्ध में महाराणा सांगा विजयी रहे थे। ऐसी

18 लड़ाइयाँ लड़ते हुए महाराणा सांगा ने हर बार विजय हासिल किया था। इस प्रकार की विजयों के चलते राणा सांगा की गौरव–गाथा में चार चाँद लग गये थे और राणा सांगा का मनोबल बहुत बढ़ चुका था।

इस प्रकार चाहे व्यक्तिगत कारण रहा हो अथवा राजनैतिक कारण रहा हो दोनों मिलाकर मेवाड़–मुगल संघर्ष के रूप में जातिगत रूप धारण कर ही लिया था। महाराणा सांगा ने उस समय रणभेरी का नाद बजाना आरम्भ कर दिया था। इतना ही नहीं अपने सहयोगियों के और अनुयायियों को इस संघर्ष में पूरे मनोयोग से अपने साथ लड़ाई लड़ने के लिए चतुर्दिक् पत्र प्रेषित करने आरम्भ कर दिये थे। इस क्रम में जैसे–जैसे सहायता मिलनी शुरू हुई वैसे–वैसे राणा सांगा बाबर से आगे होने वाले युद्ध में विजय के प्रति आशक्त होने लगे थे। वास्तव में यह आह्वान उस समय बयाना पर विजय के लिए किया गया था। इस संगठित सैन्य शक्ति का प्रभाव बहुत अधिक उस समय मालूम हुआ जबकि 16 फरवरी 1527 ई0 को राजपूतों की बयाना पर विजय हो गई। इस बयाना की विजय के बाद महारणा सांगा की प्रतिष्ठा चरमोत्कर्ष को प्राप्त कर चुकी थी। इस विजय के बाद उत्तरवर्ती भारत के चित्तौड़, रणथम्भौर, खण्डार और बयाना जैसे महत्वपूर्ण स्थान महाराणा सांगा के अधिकृत केन्द्र बन चुके थे।

राणा सांगा और बाबर की युद्ध की तैयारी और खानवा के लिए प्रस्थान

बयाना के किले में यद्यपि राजपूत और मुगलों की थोडे ही समय तक मुठभेड़ हुई थी किन्तु मुगल सैनिकों के चेहरे से नूर उतरने लग गए

थे। मुगल सैनिक उस युद्ध से हताश और भयातुर हो गये थे। इस युद्ध से चगवाई तुर्कों को स्पष्ट संकेत मिल गया था कि उन्हें भारत की भूमि पर रह करके ऐसे शत्रु से लोहा लेना है जो अफगानों की शक्ति से भी कहीं अधिक घातक हैं। इस प्रकार बयाना का वह युद्ध मुगलों के लिए बहुत ही दुःखद अनुभव वाला सिद्ध हो गया था।

राजपूत सेना जब बयाना से आगे की ओर बाबर से युद्ध के लिए आगे बढ़ी थी तो उस समग्र सेना का नेतृत्व महाराणा सांगा स्वयं कर रहे थे। राणा सांगा इस बयाना की विजय के कारण देश–प्रेम की भावना से इतना प्रफुल्लित थे कि वह सीधा सीकरी नहीं गए अपितु भुसावर के रास्ते चलकर सीकरी के लिए चल पड़े थे।

यद्यपि यह प्रस्थान अधिक समय व्यर्थ में बिताने वाला और भविष्य में होने वाले युद्ध के लिए हानिकारक अवश्य रहा। शायद राणा सांगा ने उस टेढ़े रास्ते का चुनाव इसलिए किया था जिससे कि दिल्ली और काबुल से आने वाली रसद बाबर की सेना तक न जा सके, उसे कहीं बीच में ही रोक दिया जाय। यदि राणा सांगा उस टेढ़े रास्ते से सीकरी न जाकर सीधे सीकरी गये होते तब भारत वर्ष की भूमि पर मेवाड़–मुगल–संघर्ष का इतिहास बहुत ही महत्वपूर्ण और भारतवर्ष के लिए आदेश के रूप में सिद्ध हो जाता। उस टेढ़े मार्ग से जाने के कारण राणा सांगा को युद्ध–भूमि तक पहुँचने में एक माह का बेकार में समय बिताना पड़ा। इस बिलम्ब से पहुँचने का दुष्परिणाम रहा कि बाबर को राणा सांगा की गतिविधियों की जानकारी बराबर प्राप्त प्राप्त होती रही और बाबर उसके हिसाब से अपनी युद्ध–नीति की तैयारी करता रहा।

बाबर ने एक माह में अपनी सारी की सारी चाक चौबन्द पूरी कर लिया था। वह बाहर की तैयारी महाराणा सांगा के लिए बहुत ही घातक सिद्ध हो चली थी। उसे ऐसा कहा जा सकता है कि राणा सांगा उस बिलम्बित चाल तथा और एक माह की बाबर की सैन्य तैयारी ने राणा सांगा के भाग्य के दरवाजे को बहुत ही मजबूती के साथ बन्द कर दिया था जिससे कि राणा सांगा भाग्य का निकल पाना न केवल असम्भव रहा अपितु राणा सांगा को घायल अवस्था में अपने ही लोगों द्वारा विष भी खाना पड़ा और भारतवर्ष के बहुत ही महत्वपूर्ण सूर्य का हर प्रकार से समापन हो गया था और मुगल सैनिकों के हौसले हर प्रकार से बुलन्द हो गये थे। राजपूतों का पतन भी उन्हीं राणा सांगा के साथ ही हो चला था।

बयाना के युद्ध में पराजित होने के बाद बाबर ने राणा सांगा के विरुद्ध लड़ाई लड़ने के लिए अनेक प्रकार की तैयारियाँ करना आरंभ कर दिया और उसे जहाँ–जहाँ कमी लगी उन–उन बिन्दुओं को ध्यान में रखकर युद्ध के लिए सम्पूर्ण तैयारी कर लिया था। इस बयाना के युद्ध के बाद बाबर ने रसद का बहुत संग्रह कर लिया था और उसके साथ–साथ अपने तोपखानों को हर प्रकार के साथ ही सुदृढ़ कर डाला था। बाबर ने फतेहपुर सीकरी अपने और अपनी सेना के लिए बहुत उपयुक्त मानकर अपने अन्य सामग्रियों को भी वहीं पर पहुँचा दिया था। वहीं पर पहाड़ी के पास बाबर ने सेना की मोर्चाबन्दी और सेना के जमा होने का उपयुक्त स्थान माना था।

तोपखाने के अग्रभाग मे जो सेना थी उसकी सुरक्षा के लिए सेना की गाड़ियों का लम्बी पंक्ति को बाबर ने जंजीर से बंधवा दिया था। जिस

स्थान पर गाड़ियां नहीं लगाई जा सकती थीं वहाँ पर सैनिकों ने अपने अनुकूल खाइयों को बना डाला था। इतना ही नहीं पहियों वाली तिपाइयों को बन्दूक चलाने वालों के आगे सहारा के लिए लगा दिया था। तोप चलाने में महारथ हासिल किये हुए विश्वस्त मुस्तफा और उस्ताद अली को बाबर ने तोपखाने को सौंप दिया था। अन्य जितने भी बाबर के प्रतिष्ठित अधिकारी थे उन्हें बाबर ने दायें और बायें पार्श्वों पर स्थापित कर दिया था।

उपरिलिखित तैयारी कराने के अलावा भी बाबर ने एक ऐसी सैन्य शक्ति बनाया था जो बाबर की सेना को जहाँ भी आवश्यकता होती वहीं पर लगाने की व्यवस्था करके बाबर कुशल नेतृत्व कर रहा था। इस प्रकार बाबर ने एक माह के समय का सदुपयोग अपनी सैन्य शक्ति को हर प्रकार से मजबूत से मजबूत बनाने के लिए किया था। बाबर उस हर दृष्टि से मजबूत होकर अपने और अपनी सेना के उत्साह को बढ़ाया था। किसी भी बिन्दु पर कोई कमी बाबर ने बाकी नहीं छोड़ा था। इस प्रकार से बाबर ने राणा सांगा के साथ लम्बी लड़ाई लड़ने की आशा में सेना, धन और रसद का अपूर्व भण्डार इकट्ठा करवा दिया था जिससे कि सेना को कोई कमी न रह जाय।

इतिहासविद् राधेश्याम का विचार है कि बाबर की सेना में उस्ताद अली एक तोपची था। उस पर बाबर बहुत विश्वास करता था। बाबर ने उसे अपने तोपखाना विभाग का अध्यक्ष नियुक्त किया था। इसी तोपची और अन्य अश्वारोहियों के संयुक्त प्रयोग के सटीक प्रयास का फल था कि



खानवा संग्राम में राजपूत वीरों की हुंकार

बाबर को बहुत अधिक न केवल ख्याति मिली अपितु बाबर उस समय संसार के एक महान् विजेता के रूप में प्रतिष्ठित हुआ था।

वास्तव में बयाना की हार और वहाँ राजपूतों के साहसी कार्यों की प्रशंसा बाबर के सैन्य बल में बहुत तेजी से फैल गयी थी। प्रायः सैनिकों में उत्साह हीनता आ गयी थी। उनके चेहरे घबराहट की झलक प्रकट कर रहे थे। इसी बीच काबुल से मुहम्मद शरीफ नामक एक ज्योतिषी आये और उसने पश्चिम में मंगल तारा उस समय होने के कारण बाबर की पराजय की भविष्यवाणी कर डाली थी। उस समय प्रभाव हुआ कि सभी भयाकुल और हतोत्साहित होते जा रहे थे। उस समय बहादुरी और हिम्मत की बात तक करने वाला कोई एक भी सैनिक बाबर की सेना में नही था। चाहे कोई नेक सलाह देने वाला वजीर होता अथवा सम्पत्ति को भोगने वाला अमीर होता। कोई भी न तो वीरता की बात करता था और न ही कोई वीरपुरुषोचित परामर्श देने का नामोंनिशान ही लेता था। उस समय बाबर की सेना में चारों ओर घबराहट और बौखलाहट का वातावरण छाया हुआ था। किसी में किसी के धैर्य को बँधाने की क्षमता उस समय थोड़ी भी शेष नहीं थी। कुल मिलाकर अनिश्चितता का माहौल था। उस ज्योतिषी की भविष्यवाणी से बाबर कुछ भी विचलित नहीं हुआ। उस बाबर ने अपने सैनिकों के सामने बहुत ही नाटकीय विधि से जोशीला भाषण देकर सभी सैनिकों के उत्साहहीन शरीर में जान फूँक डाला। सभी सैनिक तरोताजा हो गये और सबने पवित्र कुरान को हाथ में लेकर लड़ाई लड़ने की कसम खाई और बाबर के प्रति फिर सबके भाव पहले जैसे हो गये।

बाबर ने ज्योतिषी की बात पर कुछ भी विश्वास नहीं किया बल्कि उस मुहम्मद शरीफ ज्योतिषी को बहुत भला बुरा भी कहा और उसकी उस बयानबाजी के चलते उसे बाबर ने बन्दीगृह की सैर करा दिया था। यदि बाबर के सैनिकों की घबराहट के समय भी महाराणा सांगा ने उस समय उन उत्साहहीन सैनिकों पर पूरे जोर और पूरे जोश के साथ धावा बोल दिया होता तब भी महाराणा की विजय अवश्य हो जाती क्योंकि महाराणा सांगा के पास विद्यमान सैनिकों और बाबर के पास विद्यमान सैनिकों की संख्या में बहुत अन्तर था।

खानवा की लड़ाई के लिए राणा सांगा भुसावर होते हुए 13 मार्च 1527 को खानवा के निकट पहुँच गये फिर भी बाबर की सेना से राणा सांगा की सेना की दूरी चार मील के आस–पास रह गयी थी। उसी स्थान पर राणा सांगा ने सेना का जमावड़ा कर दिया था। जमावड़ा उसी प्रकार था जिस प्रकार का जमावड़ा राणा सांगा ने बयाना के घेरे के समय किया था।

इस युद्ध के लिए सबसे विशेष, और बड़ी बात कही थी कि राणा सांगा अपने को भी उस युद्ध में झोंकने को तैयार ही थे जबकि बाबर की सैन्य पद्धति नई थी। बाबर नये कमजोर पड़ने वाले अपने सैनिकों के हौसले बढ़ाने के लिए तथा उन्हें सैन्य शक्ति देने के लिए एक कुशल निरीक्षक के रूप में आरक्षित सैन्य शक्ति को अपने पास में रखा था और आवश्यकतानुसार उन्हें उचित अवसर पर पहुँचाने की कुशल ताक में थ।

इस प्रकार दोनो पक्षों की तैयारी अलग–अलग विधि से थीं डॉ0 गोपीनाथ शर्मा के अनुसार 17 मार्च 1527 ई0 को प्रातः 09 बजकर 30



खानवा के मैदान में राजपूत और मुसलमान

मिनट पर दोनो पक्षों के बीच घमासान युद्ध उस समय आखिरकार आरम्भ हो ही गया जिसकी प्रतीक्षा दोनो को चिरकाल से रही थी। उस समय राजपूतों के वाम पार्श्व में विद्यमान मेदिनी राय और मालदेव जैसे प्रमुखों ने अपने साथियों के साथ मुगल सेना के दक्षिण पार्श्व पर विद्यमान मलिक कासिम और खुसरों को कुलताश तथा उनके सहयोगियों पर बहुत ही भीषण धावा बोल दिया था। यद्यपि इस आक्रमण को झेलने और सहन कर सकने की क्षमता मुगल सैनिकों में नहीं थी किन्तु कुशलता से युद्ध का निरीक्षण कर रहे बाबर ने वहाँ पर अपनी तत्काल सैन्य बल को प्रेषित कर उन्हें केवल बचा लिया अपितु उस बचाव का परिणाम यह हुआ कि राजपूतों के वाम पार्श्व केन्द्रीय दल के बीच की दूरी बहुत हो चली थी। उस स्थिति को देखकर मुस्तफा जो कि तोपखाने का अध्यक्ष था, ने अपनी तोपों से बहुत ही भीषण गोलों की बरसात करना आरम्भ कर दिया था।

यद्यपि राजपूत सैनिकों ने उस समय अपने शौर्य के प्रदर्शन में कोई कसर नहीं आने दिया और वे जी जान लगाकर टूट पड़े थे किन्तु गोलों की बौछार के आगे राजपूतों की पुरानी युद्ध नीति के हथियार बेअसर सिद्ध होने लग गए थे। इस प्रकार मुस्तफा ने गोलों की बौछार करके राजपूतों की नाकों में दम कर डाला था। बारूद के भीषण प्रयोग से और उसी के साथ बाबरी घुड़सवारों ने उस समय युद्ध की स्थिति को और गम्भीर से गम्भीर बना दिया था।

धीरे–धीरे उस समय राजपूत वीर धराशायी होने लगे। इसी अवधि में राजपूतों की ओर से कुशल योद्धा हसन खाँ की बन्दूक की गोली से शिकार हो चले थे।

एक बार तो राजपूतों ने बाबर के तोपखाने के उपकरण भी अपने अधिकार में ले लिया परन्तु मुगल सैनिकों ने उसे पुनः प्राप्त करते हुए राणा सांगा के ध्वजधारी विशाल हाथी को भी पकड़ लिया जिसे प्राप्त करने में राजा कर्णसिंह डोडिया ने अपने प्राणों की आहुति भी दे दी थी। इस प्रकार के भीषण संग्राम के चलते मुख्य–मुख्य वीर मुगलों की सेना के द्वारा मारे जाते रहे। इस प्रकार की दशा में अपने इने गिने सैनिको को अपनी तरफ आगे की ओर बढ़ते देखकर राणा सांगा अपने को रोक नहीं पाए वह शत्रुओं के सामने प्रकट हो गये और अपने को युद्ध में झोंक ही दिया। उसी समय देर नहीं लगी और मुगलों की ओर से सरसराती एक तीर की भीषण चोट राणा सांगा को लगी और वह अचेत हो चले।

राणा सांगा के साथ महाराणा सांगा को कुशलतापूर्वक युद्ध से बाहर निकाल कर बसवा पहुँचा दिए थे। इसी बीच सरदारों ने हलवद के राजा अज्जा को राणा के राज्यचिह्नों से विभूषित कर सम्मानित किया था।

इस नई व्यवस्था के अनुसार प्रत्येक पंक्ति का सैनिक युद्ध में बराबर भाग लेता था और राणा सांगा की अचेतावस्था की भनक न तो राणा सांगा के सैनिको में लगी और मुगलों की सेना को तो भनक लगने का सवाल ही नहीं था। किसी प्रकार जब राणा सांगा के अचेतावस्था की सूचना राणा सांगा के सैनिकों में पहुँची तब चारों ओर अनिश्चितता का माहौल उत्पन्न हो ही गया था। उस समय राजपूतो में भी भगदड़ मच गई। उसी समय अपने स्वार्थ की सुरक्षा के प्रति भयातुर कायर और देशद्रोही सिलहदी बाबर की सेना से जा मिला और राणा सांगा की युद्ध में अनुपस्थिति और अचेतावस्था से मुगलों को आखिरकार अवगत करा ही

दिया। उस सिलहदी के दल–विचलन ने राजपूतों के भीतर अनिश्चितता और अव्यवस्था का संचार उत्पन्न कर दिया था। राजपूतों की भगदड़ और मुगलों की विजय एक साथ सुनिश्चित हो चली थी। बचे हुए राजपूत योद्धा या तो युद्ध के मैदान को छोड़कर भागते हुए चले गये या फिर यदि वे स्थिर भी रहे तो उन्होंने अपने प्राणों की आहुति दे डाली थी। इस प्रकार खानवा की युद्ध–भूमि में मुगलों की जीत और राजपूतों की अकथनीय पराजय हो गई। बसवा पहुँचने के कुछ समय बाद राणा सांगा सचेत हो गये। उसके बाद राणा सांगा अपने घोड़े और शस्त्र की मांग किये और युद्ध के लिए मन बना लिए किन्तु जब राणा सांगा को अपनी हार की खबर प्राप्त हुई तब उन्होंने शपथ लिया कि शत्रु को बिना पराजित किए वह चित्तौड़ की पोल पर कभी नहीं जाना चाहेंगे। उसने अपने सिर पर साफा बाँधना आखिरकार छोड़ ही दिया था और अपनी अंतिम साँस तक के चलते भी राणा सांगा ने साहस का त्याग थोड़ा भी नहीं किया था। सब कुछ गड़बड़ होने पर भी राणा सांगा ने आत्म–विश्वास बनाए ही रखा था।

इतने पर भी जब राणा सांगा ने सुना कि बाबर चन्देरी का घेरा बना रहा है तब राणा सांगा ने चन्देरी की ओर प्रस्थान कर दिया। इस प्रकार तैयारी करके बाबर कालपी के समीप इरिच तक पहुँकर उसे उस हालत में भी अपने घेरे में ले लिया था। यद्यपि वहाँ के गवर्नर से राणा सांगा का जमकर मुकाबला भी हुआ किन्तु उसी रात में राणा सांगा का स्वास्थ्य अचानक बिगड़ने लगा था।

वास्तव में राणा के साथी अब दोबारा राणा सांगा और बाबर का युद्ध होने के पक्ष में थोड़ा भी नही रहे इसलिए राणा सांगा को विष दे दिया गया था। इस प्रकार कालपी में ही 30 जनवरी 1528 ई0 को राणा सांगा जैसे उदित सूर्य का अस्त आखिरकार हो ही गया। कालपी से राणा सांगा के शव को मांग्लगढ़ लाया गया और वहाँ पर उसका सम्मान विधि से दाह संस्कार कर दिया गया। राणा सांगा की स्मृति में वहाँ एक छतरी का निर्माण करा दिया गया। वह विद्यमान छतरी आज भी उस परमवीर के पुण्य बलिदान का स्मरण दिलाया करती है। इस प्रकार राणा सांगा के साथ ही राजपूतों का भविष्य अन्धकार में चला गया।

इस प्रकार राणा सांगा जैसे पुरुष सिंह का अन्त हो गया जिसे तत्कालीन हिन्दुस्तानी बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ हर क्षण देखा करते थे। महाराणा की मृत्यु मात्र एक दुःखान्त परक घटना ही नहीं थी अपितु उस समय हिन्दू राष्ट्र के समक्ष बहुत बड़ा संकट उठ खड़ा हुआ था। हिन्दुस्तान में उस समय बाबर का आधिपत्य हो जाना किसी भी हिन्दू के लिए अनिष्ट का प्रकट रूप से संकट था। जहाँ पर सभी लोग हिन्दू के पक्ष में अच्छे भविष्य के लिए राणा सांगा के प्रति जितना अधिक आशान्वित थे उसके अनुरूप कुछ भी नहीं अपितु विपरीत दशा में सब का सब अमंगल ही हो गया था। उस समय कोई भी दूसरा व्यक्ति राणा सांगा के विकल्प में नहीं प्रतीत हो रहा था जो कि हिन्दुओं का पक्ष उठाकर आगे कुछ करने के लिए अग्रसर होता दिखाई पड़ता। उस समय एकाएक हिन्दुस्तान के प्रौढ़ सूर्य का अस्त हो चला था जिसका कि परिणाम हुआ कि समग्र हिन्दू राष्ट्र के ऊपर गहन अन्धकार के भीषण बादल चारों ओर

छाए हुए थे। एक भी छोटा नक्षत्र तक उस समय हिन्दुओं के पास में कुछ भी कर सकने में सामर्थ्यहीन रहा था। वास्तव में राणा सांगा ने यह अनुभव ही नहीं किया था कि बाबर की पानीपत में हुई विजय मात्र विजय ही नहीं थीं अपितु वह विजय मुगलों को राणा के विरोध में भी आमने सामने ला सकती थी। इस प्रकार राणा सांगा अनिश्चिततारम्भ के लिए घातक हो चुकी थी। इसी प्रकार के भाव डॉ0 मंकेकर[29] ने भी व्यक्त किया है।

सांगा और बाबर के युद्ध की समीक्षा

जिस समय महाराणा सांगा चित्तौड़ से अपनी सेना की अगुवाई करते हुए बाबर के ऊपर आक्रमण के लिए निकले थे उस समय से लेकर युद्ध के क्षण तक राणा सांगा पूर्णरूप से आश्वस्त थे कि अपने सहयोगियों और अपनी सेना की मदद से वह बहुत ही जल्दी शत्रु को परास्त करके निश्चय ही विजय प्राप्त कर लेंगे। इसका कारण राणा सांगा का अपने ऊपर होने वाला प्रबल विश्वास था। उनके सहयोगी भी बहुत उत्साही थे जो राणा सांगा के इशारे मात्र से सब कुछ करने को तैयार थे यहाँ तक कि राणा सांगा के आह्वान पर अपने अपने प्राणों को अर्पण करने के लिए सदा सदा के लिए तैयार रहा करते थे। इन सभी अनुकूलताओं के चलते सभी हिन्दुस्तानी के मन में बराबर भाव उठा करते हैं कि उस प्रकार के योद्धा के सदा तैयार रहते और उसके मनोबल सदा ऊँचा रहने के बावजूद भी राणा सांगा की उस प्रकार की बेहद बुरी पराजय नहीं होनी चाहिए थी फिर भी वह हार किसी न किसी दिशा में कमी के फलस्वरूप हुई थी।

हार के कुछ कारण अधोलिखित रूप में अंकित करने के प्रयास किये जा रहे हैं।

प्रथम दृष्ट्या महाराणा की फौज अनेक सरदारों को मिलाकर बनी हुई थी जिसमें उस प्रकार के लोग थे जो अपनी अपनी जाति के असरदार सरदारों से संबद्ध थे। उनका अपने सरदारों पर ही विश्वास रहा करता था। उन सभी की युद्ध लड़ने की अपनी–अपनी विलक्षण परंपरा वाली विधियाँ थीं। उस युद्ध प्रणाली में योद्धाओं का आपसी तालमेल नहीं था। इसके साथ ही सेना में मजबूती प्रदान करने वाला अनुशासन नहीं रहा था। सभी लगभग स्वतंत्र विचार वाले योद्धा थे। कोई किसी का दबाव महसूस तक नहीं करता था। इस प्रकार आपसी तालमेल और अनुशासन की कमी महाराणा सांगा के पराजय के कारण के रूप में सिद्ध हुई थी।

दूसरा कारण राणा सांगा की सेना के अन्तर्गत भीड़ का जमावाड़ा था जहाँ भीड़ होती है वहाँ पर अनुशासन बन पाना बहुत कठिन हुआ करता है। राजपूतों की उस सेना में पैदल सैनिकों की मात्रा बहुत अधिक थी। यह पैदल सैनिक बाबरी सैनिकों की तुलना में घटिया योद्धा थे। मुगलों के सैनिक बहुत त्वरित गति से किसी कार्य को अंजाम पूरे मनोयोग से दिया करते थे एक दूसरे का मुँह ताकने की आदतें उनकी नहीं थी। कमजोर पड़ने पर साहस उत्पन्न कर देने के कारण वे सभी के सभी शेर की तरह आक्रमण मात्र करने में ही अपने विश्वास रखते थे। उन मुगल सैनिकों का मुकाबला पैदल और सुस्त तथा एक दूसरे की ओर ताकने वाले सैनिक खनवा की युद्धभूमि में नही कर पाये और न ही मुगल सैनिको के सामने टिक पाये थे। उसी का दुष्परिणाम रहा कि वे सारे के सारे

मुगल सैनिक भारी पड़ते चले गए और राजपूतों के पैदल सैनिक हल्के तो पड़े ही साथ में महाराणा की पराजय के कारण बन ही गए थे।

तीसरा कारण बाबर का मजबूत तोपखाना विभाग था जिसे आटोमन तुर्क मुस्तफा का कुशल प्रशिक्षण प्राप्त था। वह मुस्तफा बहुत ही भीषण रूप में तोप के गोलों की उस प्रकार बरसात करते थे जिससे कि राणा सांगा की सेना चाहे पैदल सैनिक रहे हों अथवा सवार सैनिक रहे हों उनके द्वारा उस गोलों की बरसात को झेल सकना उस समय उनके वश की बात थी ही नहीं जब राणा सांगा के सैनिक टिक ही नहीं पाते थे तो वह किस प्रकार से अपनी युद्ध की गतिविधियों को संचालित कर पाते ? बाबर की सेना के तोपों का आक्रमण भला सांगा की सेना के तीर भला कैसे समर्थ हो सकते थे ? अतः ''तीर कभी गोलियों और गोलों का उत्तर सटीक रूप में देने के लिए कारगर सिद्ध नहीं हो सकते'' कहावत बहुत ही ठीक कही गयी है। इस प्रकार युद्ध की पुरानी पद्धति के चलते भी महाराणा सांगा की हार हो गयी थी।

चौथा कारण यह भी हो सकता है कि बाबर की सेना में मुगलों के लिए किसी की हत्या करना अथवा मरते देखना बहुत आसान था। उनमें कुछ भी दया का लेशमात्र भी नहीं था। दूसरी ओर भारत के अन्तर्गत क्षमा करना धर्म[30] के अन्तर्गत पाठ के रूप में पढ़ाया जाता है। कोई भी हिन्दू स्वभावतः न तो मारकाट करने का आदी होता है और न ही मारकाट और लूटपाट में कभी विश्वास करता ही है। अतः एक पक्ष का हत्या में संलग्न

होना और दूसरे राजपूतों के पक्ष का उस हत्या, लूट, मार और छल आदि का आदी न होना भी राणा सांगा की पराजय का कारण सिद्ध हो गया।

पाँचवा कारण यह भी था कि राणा सांगा बाबर को समझ नहीं पाये थे। राणा सांगा बाबर को सिर्फ एक साधारण शत्रु मान बैठे थे। यह मानना राणा सांगा की बड़ी भूल और चूक थी। इन्हीं भूल और चूक दोनो के चलते राणा सांगा की विजय खानवा के युद्ध में नहीं हो पायी। अपार जनशक्ति के चलते भी महाराणा सांगा बाबर की ओर से आई हुई एक तीर की मार से अचेत होकर रणभूमि में गिर पड़े थे। महाराणा सांगा की युद्धनीति पुरानी पद्धति वाली ही थी और महाराणा सांगा को समयोचित जानकारी भी नहीं थी और न ही उन्होंने संग्राम विधि में कोई सुधार ही करना चाहा था। दूसरे पक्ष में बाबर को मात्र भारतीयों से ही युद्ध करने का स्पष्ट अनुभव नहीं था अपितु बाबर तुर्क, मंगोल, उजबेक, फारसी तथा अफगानी लड़ाकुओं से लड़ाई लड़ चुके थे। बाबर को हर प्रकार का अनुभव प्राप्त था। उन सभी लड़ाइयों में बाबर ने जो आवश्यकता का अनुभव किया था उन सभी की पूर्ति बाबर ने अपनी सेना के अन्तर्गत कर डाला था।

छाठवाँ कारण राणा सांगा की पराजय और बाबर की विजय का एक दूसरे के ठीक विपरीत था। खानवा की लड़ाई में बाबर युद्ध का बहुत सावधानी से निरीक्षण करता रहा। जहाँ कमजोरी और आवश्यकता का अनुभव बाबर करता था अपनी आरक्षित सेना को वह तुरन्त वहाँ पर भेज दिया करता था किन्तु कभी बाबर ने लड़ाई में अपने को नहीं झोंका था। राणा सांगा की नीति पूरे रूप में बाबर की नीति से उलटी थी। राणा

सांगा युद्ध में निरीक्षण तो करते रहे किन्तु जहाँ पर सैन्य बल की आवश्यकता होती थी अथवा उनकी सेना के पाँव उखड़े हुए अथवा उखड़ते नजर आते थे वहाँ राणा सांगा एक सैनिक की भाँति लड़ाई के लिए शुरू हो जाते थे। डॉ0 गोपीनाथ शर्मा[31] ने उपरिलिखित बिन्दुओं को बहुत अच्छी शब्दावली में उजागर किया है।

सातवाँ कारण यह भी था कि बाबर अपनी सेना में हमेशा सम्पर्क में बना रहा। वह अपनी फौज की निगरानी बड़ी सतर्कता से किया करता था जबकि राणा सांगा अपनी सेना में असरदार सरदारों के पूरे सम्पर्क में नहीं रहे और राणा सांगा भावनाओं में बह जाते थे जबकि बाबर कभी भावना में नहीं बहा था वह कोई भी लड़ाई नीति से लड़ता था। मात्र भावना के आधार पर कोई लड़ाई लड़ना तो सिर्फ उस योद्धा को अपने प्राणों का हवन करना ही हुआ करता है।

राणा सांगा ने जब चूड़ावत, रावत जग्गा, रावत बाध और कर्मचन्द्र को उस खानवा की युद्धभूमि में सुना कि वे सभी शहीद हो चुके तब राणा सांगा भावना में बहना आरम्भ कर दिए और जब कुछ अपने सरदारों को ललकारते हुए देखा तब राणा सांगा से उस क्षण रहा नहीं गया और राणा सांगा युद्ध–नीति को भूल गये और अपने को रोंक नहीं पाये। उसी का दुष्परिणाम वह हुआ कि राणा सांगा एक सैनिक की भाँति उस युद्ध के मैदान में उतर गये और अप्रत्याशित रूप से युद्ध भूमि के अन्तर्गत मात्र एक तीर की चोट से अचेत हो गये। अचेत होना ही उनकी पराजय का

कारण बन गया था। यदि वह अपने होश में रहते तो बहुत कुछ संभव था कि खानवा की लड़ाई कुछ दिन और भी चलती।

बाबर की जीत और राणा सांगा की हार का एक पक्ष और था कि सिलहदी राणा सांगा की सेना में सम्मिलित था किन्तु जब उस सिलहदी ने जान लिया कि राणा सांगा अचेत हो गये तो उसे अपनी सुरक्षा का बड़ा खतरा महसूस हुआ और वह शत्रु बाबर के खेमें में चला गया और राणा सांगा की उस अचेतावस्था की सूचना बाबर के खेमें के अन्तर्गत पहली बार सिलहदी ने दे दिया। उस कारण से बाबर के कुशल एवं लड़ाकू सैनिकों के हौसले और बुलन्दी को प्राप्त हो गये और वे और जोश के साथ उस खानवा की युद्ध भूमि में जी जान लगा कर लड़ने लगे थे। उसका असर वह हुआ कि राणा सांगा की सेना में अनिश्चितता का माहौल बन गया। भगदड़ होने पर सैनिक कुछ समझने में असमर्थ रहे और जो राणा सांगा के दृढ़ और विजयेच्छु सरदार अथवा सैनिक लड़ते ही रहे उन्हें अपना प्राण बचाना कठिन हो चला और वे सबके सब उस समय युद्धभूमि में मार दिए गए थे।

इस प्रकार से समीक्षात्मक अध्ययन करने पर यह तथ्य पूर्णरूप से स्पष्ट हो जाता है कि मुगल सम्राट् बाबर की विजय होना और महाराणा सांगा का अन्तकाल लगभग लगभग कुछ ही काल के अन्तराल में हुआ था किन्तु इतना स्पष्ट हो चला था कि मुगल सैनिकों के हौसले हर तरह से बुलन्द हो चुके थे और राजपूत–सूर्य अर्थात् महाराणा सांगा की पराजय के साथ राजपूतों के बुरे दिन उपस्थित हो चले थे।

महाराणा सांगा की मृत्यु मात्र एक दुःखद घटना ही नहीं रही थी अपितु राणा सांगा की पराजय के साथ ही राष्ट्रीय संकट का समय प्रबल रूप से आ चुका था। जैसे भी हो यदि राणा सांगा के चरित्र का सर्वेक्षण निष्पक्ष भाव से किया जाय तो एक कष्टकारक बिन्दु उभरकर सामने आ खड़ा हो जाया करता ही है कि राणा सांगा के अन्तर्गत समय के अनुसार कार्य करने की क्षमता का जहाँ अभाव था वहीं पर उनमें राजनैतिक सूझ बूझ का अभाव था। दूसरे पक्ष में बाबर का पूरा जीवन लगभग लड़ाई लड़ते ही बीत रहा था। अतः उसे कठिन से कठिन लड़ाई लड़ने और जीतने का अनुभव पूरा था। वह यह भी भली भाँति जानता था कि शत्रु के साथ किस प्रकार की युद्धनीति अपेक्षित हुआ करती है ? जहाँ तक बाबर के साथ राणा सांगा के सम्बन्ध के पर्यालोचन का प्रश्न है वहाँ उत्तर प्राप्त होता है कि राणा सांगा की नीति बिलम्ब की नीति थी जबकि बाबर किसी भी बिन्दु पर बिना किसी भी प्रकार का कोई बिलम्ब किये अपने कार्य को करता था और शत्रु को कमजोर करने की तकनीक उसे पूर्णरूप से प्राप्त थी। खानवा के युद्ध में बाबर तो पहले ही घात लगाए अपने सैनिकों को लेकर राणा सांगा के साथ लड़ाई लड़ने के लिए उतावला था ही किन्तु राणा सांगा सीधे युद्ध के मैदान की ओर न जाकर सेना के साथ भुसावर के रास्ते पर चल पड़े थे। उनका लक्ष्य था कि वहाँ घेरा बन्दी कर देने पर बाबर को दिल्ली की ओर से कोई सैन्य अथवा रसद सम्बन्धी सहायता नहीं प्राप्त हो सकेगी। अतः राणा सांगा का वह प्रस्थान नीति के तहत ही था किन्तु यदि राणा सांगा सीधे युद्ध के मैदान में जा धमकते तो बाबर के सैनिकों में जो आतंक राणा सांगा की ओर से छाया था उसका लाभ राणा

सांगा को प्राप्त हो जाता और राणा सांगा की पराजय आसानी से नही होती और विजय के आसार बहुत अधिक बढ़ जाते। राणा सांगा के घूमकर खानवा तक पहुँचने में लगभग एक माह का समय लग गया था उसका परिणााम वह रहा कि बाबर ने एक माह के समय का सदुपयोग किया और हर प्रकार से अपनी स्थिति को मजबूत कर डाला था जबकि राणा सांगा की सेना को अचानक युद्ध के मैदान में कूद जाना हुआ। अतः बिलम्ब की नीति ने राणा सांगा को न केवल पराजय का मुँह देखना हुआ अपितु सभी राजपूतों के उन्नति के योग्य दरवाजे बन्द हो चले थे। यदि राणा सांगा इब्राहिम लोदी से सांठ गाँठ कर लिया होता तब भी जो अफगान और अन्य बाबर के शत्रु सिद्ध हुए थे वे बाबर से भयातुर न होते और राजा के साथ मिलकर डटकर लड़ाई लड़ते और उस प्रकार से खानवा के युद्ध का स्वरूप निश्चय ही उस समय कुछ और ही होता। अतः राणा सांगा में दूरदर्शिता और समय की वास्तविक परख का अभाव था। उसी के चलते उन राणा सांगा की न केवल पराजय हुई अपितु उन्हीं राणा सांगा के सहयोगियों ने ही उन्हें विष दे दिया जिससे कि राणा सांगा की मृत्यु भी हो चली थी। इतना अवश्य है कि यदि कोई भी इतिहास का जानकार निरपेक्ष भाव से विचार करने लगे तो उसे यह स्पष्ट जानकारी अवश्य हो चलेगी कि राणा सांगा बहुत तेजस्वी राजपूत थे और उन्हें बाबर जैसे कूटनीति के खिलाड़ी ने अपनी कूटनीति का शिकार उस समय बहुत आसानी से बना डाला था।

सन्दर्भ–ग्रन्थ सूची

1. मुगल सम्राट् बाबर, अध्याय 1, पृष्ठ 1
2. मुगल सम्राट् बाबर, अध्याय 1, पृष्ठ 4
3. मुगल सम्राट् बाबर, अध्याय 1, पृष्ठ 7
4. मुगल सम्राट् बाबर, अध्याय 1, पृष्ठ 5
5. मेवाड़ मुगल सम्बन्ध, अध्याय 1, पृष्ठ 6
6. Maharana Sanga, Chapter 1, page 1

   Maharana Sangram Singh popularly called Rana Sanga was one of the greatest of the Maharas of Mewar
7. Maharana Sanga, Chapter III, page 12
8. मेवाड़ मुगल सम्बन्ध, अध्याय 2, पृष्ठ 9
9. राजस्थान का इतिहास, अध्याय 5, पृष्ठ 150
10. वहीं
11. Mewar Sanga, Chapter 4, page 18

    The Sultan was tr eated with great caurtesy and sent back hoe with an escort of 1000 horses.The later agreed to pay a war indemmity and surrender the gold cap and belts and to send his on to the Rana's court as a plege for future good relation between Malwa and Mewar.
12. Maharana Sanga, Chapter 5, page 40

    With all these Monarchies Sanga had to wage wars, and it is due to his military genius that Mewar came out successful in every one of them. It has been recorded to his glory that he not only vanquished them and extended his kingdom at their expense but made them respect frontiers established by them.

13. राजस्थान का इतिहास, अध्याय 5, पृष्ठ 157

14. मुगल कालीन भारत अध्याय 3, पृष्ठ 20

15. मुगल कालीन भारत अध्याय 1, पृष्ठ 32

16. मुगल कालीन भारत अध्याय 1, पृष्ठ 20

''अक्टूबर 1504 के अन्तिम 10 दिनों में बिना किसी लड़ाई, बिना किसी प्रयत्न के मैंने काबुल और गजनी पर अधिकार कर लिया था।''

17. मुगल सम्राट बाबर, अध्याय 1, पृष्ठ 9

18. वहीं, पृष्ठ 21

19. बाबरनामा (अनु0) भाग एक, पृष्ठ 3

20. मेवाड़ मुगल सम्बन्ध, अध्याय 1, पृष्ठ 18

21. वहीं पर

22. बाबरनामा, पृष्ठ 85

''शैबाक खाँ तथा उजबेक सरीखे प्राचीन शत्रु उन समस्त प्रदेशों के ऊपर अधिकार जमाए हुए हैं जो कि कभी तीमूर बेग की सन्तान के अधीन थे। जो तुर्क तथा चागताई कोनों एवं सीमान्त के भूभाग में पड़े हुए हैं। वे स्वेच्छा या उनकी इच्छा के विरुद्ध उनके सहायक बन गए हैं। केवल मैं ही बचा हूँ। मैं स्वयं काबुल में हूँ शत्रु अत्यन्त बलशाली है और मैं बड़ा शक्तिहीन। न तो मेरे पास ऐसे साधन है जिनके द्वारा मैं सन्धि कर लूँ और न इतनी शक्ति कि उनका विरोध कर सकूँ। ऐसे प्रभावशाली व्यक्ति की उपस्थिति में मैं हमें किसी न

किसी सुरक्षित स्थान की खोज करनी चाहिए जहाँ हम कठिनाई एवं परेशानी के समय जाकर शरण ले सकें।''

23. Sanga and Babar, Chapter 4, page 38

Rana Sanga was a unique personality. He was "Battle scarred vetran" long before he can to gaddi, having lost an eye and sustained many wounds in battle. Later he lost an arm in fighting. These gave physical handicaps failed to daunt him. He took on for after for and vanquished them but one.

24. Mewar Sanga, Chapter 4, page 41

Sanga was brought to the village of Baswa, in Jaipur- Territory when he came to, his first impulse ws to call for his horse and rush back into battle. When told of the rout his forces has sustained at the hand of Babar, Tears rolled down Sanga's cheeks and hs vowed that he would never enter the part of Chittor again until he had even get himself on the enemy.

25. कालिदास ग्रन्थावली रघुवंशम् 819

न खरो न च भूयसा मृदुः पवमानः पृथिवीरूहानिव।

स पुरस्कृतमध्यमक्रमो नमयामास नृपाननुद्धरन्।।

26. मेवाड़ मुगल सम्बन्ध, अध्याय 2, पृष्ठ 11

27. वहीं, पृष्ठ 12

28. नीति शतक, पृष्ठ 45

29. Maharana Sanga, Chapter 12, page 122

Sanga and Babar are the two outstanding personalities of the time in India. Though Sanga was no ordinary Rajput King. Babar was on eqeually remark able personality. Both were of about same age. Sanga

was born in A.D. 1482 and Babar in A.D. 1483. Both were men of Valour adn had received their training in the school of adversity. The early of Babar had been a continous record of trouble, disappointment and defeat. He had met with so many ups and downs in his life that he never lost courage. He wasMaharana Sanga's equal in courage and beter mination and not inferior to the Mahara in chivalry, heroism, generosity, highmindedness and devotion to the dictates of honour.

30. मेवाड़ मुगल सम्बन्ध, पृष्ठ 6

''इस्लाम इलाके के लगभग 200 बस्तियों के ऊपर विधर्मियों के झण्डे लहरा रहे थे। उन स्थानों की मस्जिदें धराशायी कर दी गयीं थीं। यहाँ के निवासियों की स्त्रियों और बच्चों को बन्दी बनाकर ले जाया गया था।''

31. मुगलकालीन भारत, अध्याय 3, पृष्ठ 25

अस्सी हजार घुड़सवार, 7 बड़े–बड़े नरेश, 9 राव, 104 रावल तथा रावत हर समय उने इशारे पर रणक्षेत्र में कूदनें के लिए तैयार रहते थे।

32. मुगल सम्राट् बाबर, अध्याय 5, पृष्ठ 217

''बाबर की सेवा में एक आटोमन तुर्क, जिसका नाम उस्ताद अली था, आया। बाबर ने उसे तोपखाने विभाग का अध्यक्ष नियुक्त किया। कुछ महीना पूर्व ही उसने अपनी शैन्य शक्ति को बढ़ाने तथा तोपों का प्रयोग करने का निश्चय किया था। जो सैनिक सुधार बाबर ने 1515–16 ई0 में लागू किए उन्हीं के कारण उसके भाग्य का पलड़ा उसकी ओर झुकने लगा। युद्धों में उसकी विजय होती रही। यही

नहीं तोपों तथा अश्वारोहियों के संयुक्त प्रयोग के सफल प्रयास के कारण उसे ख्याति मिली और वह संसार का एक महान विजेता समझा जाने लगा।"

33. Mewar Saga, Chapter 4, page 45

Sanga locked the foresight to realize that after Babur's victory at Panipat, the Mughal would turn on the Rana. Sanga utilized that precious inter regnum in pushing the Afgans out of Rajsthan and extenting his rule, instead of preparing himself for the day when Babur came for him.

34. मेवाड मुगल सम्बन्ध, अध्याय 2, पृष्ठ 20

ज्यों ही सांगा ने अपने चुने हुए सरदारों को आगे आते हुए देखा तो उसने अपने आपको युद्ध में झोंक दिया। इस स्थिति से वह शत्रुओं के सामने अभिदर्शित हो गया।

****

सप्तम अध्याय

राणा सांगा कालीन सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति

सप्तम अध्याय

राणा सांगा कालीन सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति

मानव एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज के मध्य रहकर ही अपेक्षित विकास कर सकता है। समाज के अभाव में उसका विकास एकांगी ही रह जाता है। समाज के महत्व के सम्बन्ध में मैकाइवर महोदय का मत है कि समाज राज्य का पूर्ववर्ती है और यह समाज किसी भी संगठित अथवा असंगठित जन समुदाय को उत्साहित किया करता जाता है।[1] यही कारण है कि मानव को समाज का विशिष्ट अंग कहा जाता है। इसीलिए ''समम् अजन्ति जनाः अस्मिन्निति समाजः'' कथन अक्षरशः सत्य प्रतीत होता है। इसी समाज में संस्कृति का रूप निहित होता है। वास्तविकता यह है कि व्यक्ति को सामाजिक प्राणी बनाने में जितने भी तत्वों का योगदान होता है उन सभी तत्वों की सामाजिक व्यवस्था को संस्कृति कहा जाता है। हर्सविट्स का कथन है कि, ''संस्कृति पर्यावरण का मानव निर्मित भाग है।[2]''

प्रत्येक देश, प्रदेश और आवासीय व्यवस्था का अपना अपना सामाजिक स्वरूप और संस्कृति का स्वरूप होता है। यही संस्कृति व्यक्ति को सामाजिक प्राणी बनने में सहायता प्रदान करती है। इसी समाज में रहने वाला मानव सामाजिक कहलाने का अधिकारी होता है। सामाजिक जीवन में अनेक इस प्रकार के अवसर उपस्थिति होते हैं जिन्हें देखकर कोई भी व्यक्ति वास्तविकता का परिज्ञान नहीं कर सकता है। इन कार्यकलापों और गतिविधियों का प्रकटीकरण व्यक्ति समाज में ही करता

हुआ सुख अथवा दुःख की अनुभूति किया करता है। इसीलिए कहा गया है कि दो या दो से अधिक मनुष्यों के समूह का नाम समाज है[3] जिसके अन्तर्गत कल्याण की भावना से मानव के व्यवहारों का आदान प्रदान हुआ करता है। यही भावना रहने पर समाज कहा जाता है और इस भावना से रहित कार्य करने वाले दो या दो से अधिक जन समूह को 'समाज'[4] की संज्ञा प्रदान की जाती है। इन्हीं भावनाओं का अध्ययन ऐतिहासिक स्रोतों (राजकीय डायरियों, ऐतिहासिक ग्रन्थों और काव्यों) द्वारा कर लिया जाता है[5]।

सामाजिक–स्थिति

जहाँ तक राणा सांगा कालीन सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति का प्रश्न है, राणा सांगा एक कुशल योद्धा, राजनीतिज्ञ और देश प्रेमी शासक थे। किसी भी देश की सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थिति वहाँ के शासक की भावनाओं एवं कार्यविधि पर निर्भर होती है। उसके द्वारा किये गये कार्यों का वहाँ के समाज तथा वहाँ की संस्कृति पर विशेष प्रभाव परिलक्षित हुआ करता है। उदाहरणार्थ, यदि शासक धार्मिक और देश भक्त है तब प्रजा पर उसका प्रभाव अवश्य पड़ता है और उस शासक के अनुयायी और प्रजाजन भी उसी का अनुसरण करने में अपना मन अवश्य लगाती है।[6]

महाराणा सांगा स्वाभिमानी, निर्भीक और देश प्रेमी शासक के रूप में मेवाड़ के इतिहास के अन्तर्गत स्वीकार किए जाते हैं। राणा सांगा ने कभी भी अपने विचारों, अपने धर्म और अपने कार्यों को अपनी प्रजा पर नहीं

थोपा था[7]। केवल इतना ही नहीं था अपितु उसने अपने द्वारा विजित अथवा अपने अधीन रहने वाले क्षेत्रों पर भी अपनी भावनाओं और कानून कायदों को लादने का कभी प्रयास नहीं किया था। वह मात्र अपने राजनैतिक प्रभुत्व से संतुष्ट रहे। इसका कारण यह था कि उन विजित अथवा अधीनस्थ क्षेत्रों पर अपनी रुचि के अनुसार अपने को सर्वोच्च बनाना उनकी रुचि थी। अपने व्यक्तिगत जीवन के अन्तर्गत भी राणा सांगा ने हिन्दू धर्म तथा संस्कृति के उन्नति हेतु बहुत कार्य किया। इसी गुण से प्रभावित होकर लोगो ने राणा सांगा को 'हिन्दूपति' कहना प्रारम्भ कर दिया था। यह राणा सांगा की लोकप्रियता का फल ही था और यह एक शासक की सबसे बड़ी उपलब्धि मानी जानी चाहिए [8]।

हमारे प्राचीनतम ग्रन्थ में हिन्दू समाज का विभाजन निवास करने वालों के गुण और कर्म को आधार[9] मानकर यह हिन्दू समाज क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र के रूप में चार प्रकार से विभक्त किया गया था। इन चारों वर्णों के कार्य[10] मनु ने अपने अनुसार विहित किया है। इसी प्रकार के कार्य को करने में उन वर्णों की प्रतिष्ठा स्वीकार की गयी है। इस प्रकार के कार्य सम्पादित करने में समाज में समुचित व्यवस्था संचालित होती है। 15वीं शताब्दी के आसपास प्रतिष्ठित लेख एवं विचारक जम्बोजी[11] ने अपने समकालीन समाज के अन्तर्गत अधोलिखित वर्गों का समुल्लेख किया है–

1. राजवर्ग
2. व्यापारी वर्ग

3. कृषि–कार्यकर्ता

4. कला–प्रदर्शक

5. शिल्पकार और मजदूर वर्ग

6. राजाश्रित विद्वद् वर्ग

7. निम्न अथवा साधु वर्ग

अपने समय में समाज के प्रति समर्पित एवं प्रसिद्ध शासक के रूप में राणा सांगा माने जाते थे। प्रजा उन्हें बहुत चाहती थी। इसी कारण से हिन्दू समाज के अन्तर्गत महाराणा सांगा अमरत्व[12] को प्राप्त कर लिए थे। वह ऐसे नेता थे जिन्होंने अपने नेतृत्व में भारतीय जातियों को कोई भेदभाव किए विना संगठित किया था। उनके कुशल नेतृत्व में शताधिक राजा और महाराजा स्वयमेव संगठित हो गये थे। यद्यपि राणा सांगा का समय शक्ति का नहीं था। वह अपने जीवन में प्रायः लड़ाई लड़कर अपने देश की रक्षा करते रहे।

राणा सांगा को देश, काल और परिस्थिति का पूर्ण ज्ञान था। इस अवसर को पहचानते हुए राणा सांगा ने जातीय जीवन को स्थिर बनाने की दृष्टि से तथा देश के सम्मान को स्थिर करने के लिए पूर्ण मनोयोग से कार्य किया था। जनता ने भी उनको पहचाना था और इनके उच्च आदर्शों और देशाभिमान से प्रेरित होकर उनका पूर्ण साथ दिया था। उन्होंने अपने चरित्र के बल पर यह पूर्णतः सिद्ध कर दिया था कि किसी उच्च पद और चातुर्य की अपेक्षा अपने देश की रक्षा और मानव धर्म का पालन करने का महत्त्व अधिक हुआ करता है। यही कारण था कि राणा सांगा ने अपने

देश की रक्षा करने के लिए अदम्य हिम्मत, मर्दानगी और वीरता को बहुत अधिक महत्व दिया था। उन्हीं आचरणों ने उन्हें अमर बना दिया है। उनके जीवन के उद्देश्य आज भी हम भारतीयों के आदर्शस्वरूप होते हुए अनुकरणीय हो गये हैं।

जम्बोजी का उल्लिखित विभाजन समाज में आज भी सार्थक और सामयिक सिद्ध होता है। उल्लिखित विभाग चार प्रकार के वर्णों के अन्तर्गत अन्तर्भूत हो जाते हैं। वास्तव में यदि देखा जाय तो प्राचीन वर्ण–व्यवस्था राणा सांगा के समय तक परिवर्तित हो रही थी। इसका मुख्य कारण यदि देखें तो वह उस समय का प्रतिफल था। उस समय सामन्त वर्ग का उदय हो रहा था। यह सामन्त वर्ग अपने को अन्य सभी वर्गों से श्रेष्ठ मानकर समाज में उसी प्रकार अपने व्यवहार प्रकार भी करते थे। उससे कभी–कभी समाज में निराशा बलवती हो जाती थी। मनु ने समाज के अन्तर्गत समुचित व्यवस्था स्थापित करने के उद्देश्य से समाज में ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों के कार्य निर्धारित कर दिये थे। ब्राह्मण वर्ग का मुख्य कार्य[12] स्वयं विद्यार्जन करना और दूसरों को विद्या प्रदान करना आदि था। क्षत्रिय वर्ग का कार्य[13] रक्षार्थ अपने को तैयार और सुरक्षा करना आदि था। वैश्यों का कार्य[14] व्यापार करना था इसी प्रकार शूद्रवर्ण के कार्य[15] सेवा आदि करना विहित किए गए थे।

राणा सांगा के काल में भी ब्राह्मण का कार्य पढ़ना और पढ़ाना था। सामन्त वर्ग की प्रबलता इतनी थी कि क्षत्रिय वर्ग और सामन्त वर्ग का एक साथ रहना अथवा कार्य करना बहुत कठिन हो गया था। राणा सांगा के

समय ब्राह्मण परिवार में भी यह अन्तर आ गया था कि वे कृषि–कार्य भी करने में लग गए थे। समयानुसार उपरिलिखित चारों वर्णों के अतिरिक्त कुछ अन्य वर्गों का भी उदय हो चुका था। जैसे कायस्थ और जाट आदि। कुछ कारीगर भी अनेकानेक कार्य करने लग गये थे, जैसे– कुम्हार, माली, मोची, लोहार, सोनार आदि। वास्तव में इन्हें प्राचीन चार व्यवस्थाओं में रखना बड़ा कठिन हो गया था। सबको शूद्र वर्ण में रखना उचित भी नहीं था और कायस्थजन भी राजवर्ग में गिने जाने लगे थे। इन्हे राजकार्य में लेखा–जोखा व्यवस्थित करने के लिए नियुक्त कर लिया गया था। इसी प्रकार जाट जाति भी खेतिहर जाति थी। इन्हें उस समय वैश्यों के साथ रखना अनुचित था। इस प्रकार राणा सांगा के समय में प्राचीन आचार्यों द्वारा विहित जाति–व्यवस्था का निभाना और उन्हें उसी के भीतर सीमित कर देना भी उचित नहीं था। सभी अपनी–अपनी रुचि के अनुसार कार्य करने में स्वतंत्र रहते थे। इसी कारण से उस समय राजवर्ग, व्यापारी वर्ग, कृषि कार्यकर्ता, कला–प्रदर्शक, शिल्पी और मजदूर, राजाश्रित विद्वद् वर्ग और निम्न वर्ग और साधु वर्गों का रूप समाज में उपस्थित हो गया था। इस प्रकार यह समाज राणा सांगा के समय विकासशील दशा को प्राप्त कर गया था। जम्बोजी के अनुसार समाज के अन्तर्गत अधोलिखित वर्ग निवास कर रहे थे–

1. राजवर्ग

इस वर्ग के अन्तर्गत वे लोग समविष्ट थे जो राजा से अथवा राजकार्य से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में सम्बद्ध थे। अथवा इसे इस प्रकार कहा जा सकता है कि इस वर्ग के अन्तर्गत राजा, रानी, राजकुमार,

राजकुमारी, अन्य सदस्य, जागीरदार, पहरा देने वाले, मंत्री, सेना नायक आदि सम्मिलित थे। इन सभी को विशेष महत्व और विशेषाधिकार उपलब्ध था। ये सभी विशेषाधिकार से युक्त होने के कारण जन साधारण में श्रेष्ठता की पदवी को प्राप्त कर लिये थे। इतना ही नहीं इस प्रकार के लोग कभी –कभी अपने इस उपलब्ध विशेषाधिकार का दुरुपयोग भी कर लिया करते थे, जैसे– बाबर द्वारा घिर जाने पर जब राणा सांगा को बाहर ले जाया गया था तब राणा ने मर मिटने की ठान लिया था और फिर युद्ध करने का मन बना लिया था। उनके साहस को देखकर कि राणा ने अचानक रात में तबियत बिगड़ जाने पर भी लड़ सकते हैं उसकी जानकारी होने पर राणा के साथियों से न रहा गया। वे यह नहीं चाहते थे कि राणा सांगा का बाबर से फिर युद्ध हो। अतः राणा सांगा के साथ चलने वाले विशेषाधिकार से युक्त व्यक्ति ने अपने उस अधिकार का दुरुपयोग ही तो किया था कि जिससे उस व्यक्ति ने राणा सांगा जैसे कुशल तथा साहसी व्यक्ति को विष दे दिया था। इसके परिणामस्वरूप महाराणा सांगा का कालपी में ही 30 जनवरी 1528 ई0 को स्वर्गवास[16] हो गया।

2. व्यापारी वर्ग

इस वर्ग में वे सभी लोग आते थे जो व्यापार के कार्य में किसी न किसी प्रकार से जुड़े थे। इस वर्ग के अन्तर्गत अनेक प्रकार की जातियां आती थी। अग्रवाल लोग इसमें प्रथम स्थान पर आते थे। इसके पश्चात् ओसवाल, पोरवाल, माहेश्वरी, खण्डेलवाल, और पालीवाल इस वर्ग में आते थे। ये सभी पूर्ण मनोयोग से व्यापार के अन्तर्गत संलग्न होकर इस व्यापार

को आगे बढ़ाने का प्रयास करते थे। व्यापार करने के कारण यह वर्ग समाज में धन की दृष्टि से महत्वपूर्ण था क्योंकि इसके पास धन का आगमन होता रहता था।

3. खेतिहर वर्ग (कृषि कार्य में संलग्न)

किसी भी स्थान का प्रमुख पोषक धन्धा कृषि का है। इस कार्य के अन्तर्गत लगने वालों में जाट वर्ग प्रथम एवं मुख्य था। मेवाड़ के अन्तर्गत प्रायः सभी गाँवों में इस वर्ग की संख्या पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध थी। इसके अतिरिक्त अहीर, शिरवी, कुलवी और गूजर जातियां भी इसी खेती के कार्य में मनोयोग से कार्य कर रही थीं। यह लोग प्रायः दो प्रकार के कार्य करते थे। कृषि (खेती) के कार्य को करने के साथ इस वर्ग के लोग पशुपालन का कार्य भी करते थे। इसका प्रमुख कारण यह था कि पशुओं का चारा इनकी खेती से उपलब्ध हो जाता था और उन पाले गये पशुओं का सहयोग यह था कि इस वर्ग को दूध आदि प्राप्त होता था और उन पशुओं के गोबर खेती में उर्वरक का कार्य करते थे। यह वर्ग प्रायः आत्मनिर्भरता को प्राप्त कर गया था।

4. कला–प्रदर्शक

इस वर्ग में ऐसे लोग आते थे जो राजा अथवा समाज के समक्ष अपनी कलाओं का मनोयोग से प्रदर्शन करते हुए धनोपार्जन करते थे और कला के प्रभाव से प्राप्त धन के द्वारा अपने–अपने परिवार का भरण पोषण किया करते थे जो अनेक प्रकार की अपनी अपनी कलाओं का प्रदर्शन

किया करते थे। इस कला में संल्लग्न नटों के अतिरिक्त सँपेरों का विशेष महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था।

5. शिल्पकार और मजदूर वर्ग

अनेक वर्गों में यह वर्ग भी उल्लेखनीय था। इस वर्ग के अन्तर्गत वे सभी जातियाँ थीं जो कुछ न कुछ वस्तुएं तैयार कर समाज को दिया करती थीं। इस वर्ग के अन्तर्गत सोनार वर्ग विशेष था। वह आभूषण की तैयारी करता था। माली जाति के लोग माला तैयार करके उपलब्ध कराते रहते थे जिसका उपयोग तत्कालीन समाज के अन्तर्गत अनेक प्रकार से किया जाता था। इसमें लोहार, कुम्हार, धोबी भी आते थे जो कि समाज के उपकारक थे। उनके द्वारा किये गये अपने–अपने इस धन्धे से उनके और उनके परिवार का भरण पोषण बहुत अराम से होता था। यह वर्ग उस समय भी समाज का आवश्यक अंग बन गया था। इस वर्ग के लोगों का समाज के अन्तर्गत योगदान हुआ करता था। जिससे समाज को इनके सम्मान प्राप्त होते थे और समाज इन्हें उतने भर का धन दिया करता था। इस वर्ग में भवन का निर्माण करने वालों की समाज के अन्तर्गत बहुत आवश्यकता थी। इस वर्ग में मजदूर भी आते थे।

6. राजाश्रित विद्वद् वर्ग

इस वर्ग के अन्तर्गत वे लोग आते थे जो राजा के आश्रित रहते थे। इस वर्ग में राजा द्वारा सम्मान प्राप्त लोग थे। इसमें दरबार के समक्ष कविता सुनाने वाले कवि भी थे। इन्हीं कवियों में जो विशेष स्थान प्राप्त किये थे उन्हें कवि ही नहीं अपितु राजकवि की उपाधि प्राप्त थी। वैद्य और

ज्योतिषी आदि भी इसी वर्ग के अन्तर्गत आते थे। यद्यपि मेवाड़ राज्य के अन्तर्गत मध्यकाल तक चारणों को बहुत सम्मान प्राप्त नहीं था जबकि पड़ोसी अन्य राज्यो में चारणों को विशेष स्थान दिया गया था। यही कारण था कि मेवाड़ में चारणों के रचनाएँ अन्य राज्यों की अपेक्षा कम प्राप्त होती है।

7. निम्न अथवा साधुवर्ग

इस वर्ग के अन्तर्गत ऐसे भी लोग आते थे जिनके कार्य प्रायः बहुत निन्दनीय हुआ करते थे। इनमें जानवरों को काटने वाले और शिकार करने वाले लोग आते थे। कसाई जाति के लोग भी इसी वर्ग में आते थे। इन सभी में भील जाति के लोग अधिक हृष्टपुष्ट थे। इन्हें शासन की ओर से लाग बाग वसूल करने के कार्य में लगाया जाता था। ऐसे लोग नगर बस्तियों में तो कम किन्तु अधिकतर वे सब जंगल में ही किसी प्रकार अपना आवास बनाकर रहा करते थे। इतना ही नहीं इस प्रकार के लोग रास्ते से होकर जाने वालों से कर वसूल कर लिया करते थे और अपनी जीविका संचालित किया करते थे। साधु वर्ग भी इसी वर्ग के अन्तर्गत आते थे जो समाज में सम्मान के अधिकारी थे।

समाज में नारियाँ

द्वादश शताब्दी के पश्चात् जब मुस्लिम आधिपत्य हो चला था तब स्त्रियों की स्वाधीनता का समापन होने लगा था। अब उन्हें किसी भी प्रकार से स्वाधीनता नहीं रह गई थी। प्राचीन कालिक परम्पराओं के अनुसार उस समय महिलायें शिक्षा और दीक्षा से पृथक हो रहीं थी। वे

उस समय घर की चहरदीवारों अथवा घर तक ही सीमित रह गई थीं। उन्हें न तो कोई निर्णय लेने की स्वतंत्रता थी और न ही अपने विचार प्रकट करने का अवसर प्रदान किया जाता था। कुमारावस्था में पिता रक्षक होता था। यौवन की दशा में भर्ता रक्षक स्वीकार किया गया था। इसके पश्चात् वार्धक्य आने पर पुत्र रक्षक के रूप में स्वीकृत था। अतः नारी को कभी स्वतंत्र होने नहीं दिया गया था[17]। पर्दा की प्रथा दिनों दिन जटिलता को प्राप्त करती चली जा रही थी। मुस्लिमों के आ जाने पर यह प्रथा और भी जटिल हो चली थी। नारी को अपने पति की सम्पत्ति में अधिकार नहीं रह गया था। महाराणा रायमल के अभिलेख में यह प्रथा अंकित है। इनके काल के पूर्व तो पति के मृत्यु को प्राप्त हो जाने पर पति की सम्पूर्ण सम्पति को राज सम्पत्ति के रूप में घोषित कर दिया जाता था। राणा सांगा रायमल के पुत्र थे। अतः यह नारियों की दशा महाराणा सांगा के समय में भी अवश्य ही प्रचार प्रसार को प्राप्त कर गयी थी।

उस समय बहु विवाह की प्रथा प्रचलित थी। राजा, श्रेष्ठ और सामन्त वर्ग उस समय तो इतने स्वतंत्र थे कि उनके एक पत्नी की कल्पना करना भी बहुत कठिन हो गया था। राणा सांगा के पितामह महाराणा कुम्भा के लिए 1600 रानियों का उल्लेख प्राप्त होता है[18]।

उस समय बहु विवाह की प्रथा प्रचलित थी। इस प्रकार के विवाह के परिणामस्वरूप अनेक प्रकार के षड्यन्त्र और विवाद तथा बड़ी–बड़ी लड़ाइयां लड़नी पड़ रही थीं। महाराणा लाखा का विवाह रणमल्ल की बहिन हंसाबाई के साथ हुआ था उनके पुत्र चूड़ा को इसी विवाह के

परिणामस्वरूप राज्य का परित्याग कर वर्षों तक मालवे में पड़ा रहा। कुछ समय व्यतीत हुआ और फिर उसी हंसा बाई के संकेत मात्र से ही महाराणा रणमल्ल की हत्या कर दी गयी थी। उस समय एक तो प्रधान रानी होती थी, किन्तु जो रखैलें होती थीं उन्हें वारनारी की संज्ञा प्रदान की गयी थी।

उस काल में कन्याओं के अपहरण की अनेकानेक घटनायें समाज में घट जाती थीं। औरतों के कारण अनेक लड़ाइयाँ और अनेक प्रकार के विवाद खड़े हो जाया करते थे जिसके परिणामस्वरूप अनेक प्रकार की अप्रत्याशित घटनायें घट जाया करती थीं।

वेश्यावृत्ति

वेश शब्द का अर्थ पालन–पोषण होता है और एक मात्र यही पालन–पोषण जिसका जीवन हो जाय वह नारी[19] वेश्या के रूप में में हुआ करती है। समाज में अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त करने वाली वेश्या को **गणिका** की संज्ञा प्रदान की गयी है। राणा के समय वेश्यावृत्ति की भावना बलवती हो चली थी। उस समय वेश्याओं को अपने परिवार में रख लेना गौरव का प्रतीक हुआ करता था। इस प्रकार उस समय वेश्याओं के साथ ही नर्तकियों का भी प्रचलन समाज के अन्तर्गत बहुत था। राजा अथवा महाराजाओं के राजमहल के अन्तर्गत नाट्यशालायें होती थी जिनमें नर्तकियाँ नृत्य करती थीं और राजा, महाराजा और उनके साथ रहने वाले अन्य उस नृत्य को बहुत ही उत्साह के साथ देखा करते थे। महाराजा कुम्भा नेजो नृत्यशाला बनवाया था वही नृत्यशाला राणा सांगा के समय

तक रही और इसी प्रकार का प्रदर्शन वहाँ पर भी होता था। इस प्रथा के चलते भी कई प्रकार की लड़ाइयाँ लड़ी गईं और अनावश्यक रूप से हत्यायें कर दी जाती थीं। किसी समय इसी प्रसंग में गुजरात के शहजादा बहादुर खान ने गुजराती शैली का नृत्य करते एक लड़की को देखा तो वह बहुत ही प्रसन्न और आकर्षित हुआ किन्तु जब उसे यह पता चला कि वह अहमदनगर के काजी की बेटी है और युद्ध के समय जबरदस्ती लूट कर लाया गया था तब बहादुरशाह बहुत नाराज हुआ। इसी नाराजगी के चलते उन्होंने राणा के एक व्यक्ति की हत्या भी कर दी थी। उस काल में यदि यह वेश्याएं किसी शुभ अवसर पर मिलती थीं तब बहुत ही शुभ का प्रतीक माना जाता था। इसीलिए किसी भी शुभ अवसर पर इन वेश्याओं को अनिवार्य रूप से बुला लिया जाता था।

दासियाँ

किसी भी समाज में सबसे अधिक कष्ट देने वाली प्रथा दास और दासी बनने की प्रथा हुआ करती है। अपने वश में रहना सबसे बड़ा सुख है और पराधीनता सबसे बड़ा दुःख हुआ करता है[20]। यद्यपि दास और दासी–प्रथा प्राचीन भारत में थी इसके बाद भी मध्यकाल में सामन्ती अथवा सम्पन्न जन अपनी सुविधा और शौक की पूर्ति के लिए दास और दासियाँ रख लिया करते थे। इस प्रथा का प्रचलन राजपूतों और राजपूत राजाओं की उन्नति का फल था। इस प्रकार के लोगों ने अपने पास दास और दासियों को रख लिया था। अलबरूनी[21] ने स्वयं इसकी पुष्टि किया था कि उसे 14 दासियाँ भेंट में प्रदान की गईं थी। उस काल में (राणा सांगा

के काल में) दहेज के रूप में दासियों को बेटी के साथ ससुराल भेज दिया जाता था। राजपूतों की यह उस समय शान में चार चाँद माना जाता था। यदि वे अपनी बेटी के विवाह के समय कुछ दासियाँ विदा कर देते थे और वे अपनी पूरे जीवन तक सेवा–कार्य किया करती थीं। यह उस समय उस समाज में घोर अन्याय उदाहरण हुआ करते थे। एक कन्या को आराम प्रदान करने के उद्देश्य से अनेक कन्याओं के जीवन की आहुति प्रदान कर दी जाती थी। इस प्रकार विवश होकर वे सभी कन्यायें अपने को कुछ न समझकर सेवाभाव में ही अपना जीवन व्यतीत किया करती थीं। उनका जीवन बहुत नारकीय हो जाता था। उनकी स्वतंत्रता सर्वथा समाप्त हो जाती थी। यहाँ तक कि वे अपने किसी विचार को प्रकट नहीं कर सकती थीं। राजसी तथा सामंती ठाट–बाट ने इस प्रकार का परिवेश उत्पन्न कर दिया था कि छोटी अवस्था में वे ही कन्यायें राजपूतों के परिवार में रहकर राजकुमारी की सेवा करती थीं और जब उन राजकुमारी का विवाह हो जाता था तब उन्हीं कन्याओं को उस राजकुमारी के साथ सेवा करने के लिए विदा कर दिया जाता था। ऐसे में उनके जीवन का प्रारम्भिक भाग से अन्त भाग तक पूर्णरूप से पराधीन हो जाता था। उन्हें किसी प्रकार से उस पराधीनता से मुक्ति मिल पाने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता था। यह प्रथा बहुत ही निन्दनीय रूप में आज के समय में कही जाती है।

सती–प्रथा

सती प्रथा मध्यकाल की सबसे अधिक कष्टदायक और घिनौनी प्रथा थी। अपने पति को मृत्यु को प्राप्त हो जाने पर उनके जब दाहसंस्कार होते थे तब उस काल की प्रथा के अनुसार उसकी पत्नी को अपने पति

की चिता के ऊपर जबरदस्ती चढ़कर जल जाने के लिए विवश किया जाता था। अपने प्राण[22] सबको परम्प्रिय होते हैं। अपना शरीर[23] भी सबको परमप्रिय हुआ करता है। फिर भी यदि कोई उस मानव को शरीर का परित्याग करने को विवश करता ही है तब वह अत्याचार नहीं तो क्या होगा ? आचार का अर्थ होता है सज्जनों द्वारा संपादित व्यवहार, परन्तु जब वही आचार अति को प्राप्त कर जाता है तब 'आचरम् अतिक्रान्तः इत्यत्याचारः' का कथन सत्य हो ही जाता है। प्राचीन लेखो में लोगो ने इसी प्रथा को सहगमन की संज्ञा प्रदान की थी। अपने पति के मरने के पश्चात् उन्हें अनिवार्यतः उनकी चिता पर जल जाना होगा। इसलिए पत्नियाँ अपने पाँव में मेंहदी[24] नहीं लगाती थीं। वे इस सत्य को ध्रुव मानती थीं कि उनके वीरगति को प्राप्त होने के पश्चात् अथवा स्वाभाविक रूप से मृत्यु को प्राप्त कर लेने के बाद उन्हें निश्चय ही चिता का आलिंगन कर लेना ही है। यह महिलाओं के साथ बहुत ही घोर अत्याचार और उत्पीड़न हुआ करता था। यह कुत्सित–प्रथा उस समय सामान्य सी हो गयी थी। उस समय युद्ध में जाना भी गौरव का प्रतीक माना जाता था। उस समय जब भी कोई नारी अपने पति के साथ चिता पर जली थी तब उसका स्मारक बनाकर उसके कुल के लोग तथा अन्य लोग भी उसकी अनेक पीढ़ियों तक पूजन किया करते थे। उस समय जहाँ युद्ध में प्राण चला जाना गौरव का प्रतीक होता था वहीं पर किसी को सती हो जाना भी गौरव व आदर्श माना जाया करता था। इस प्रथा में यह परम्परा थी कि पति की मृत्यु हो जाने के बाद उस मृतक की पत्नी स्नान आदि से

निवृत्त होकर अपने सभी आभूषणों को धारण करती थी। जब पति की शव यात्रा श्मशान के लिए प्रारम्भ होती थी तब वह भी अपने परिवार के लोगों के चरण स्पर्श करती थी और अपने हाथ में नारियल लेकर घोड़े पर चढ़कर शव यात्रा में चला करती थी। श्मशान पर चिता तैयार रहती थी।

इस प्रकार का परिवेश होने पर भी वह नारी अपने मृतक पति के साथ चिता पर आरूढ़ होती थी और देखते ही देखते धू धू करके पति के साथ ही जलकर राख हो जाया करती थी।

राणा सांगा के समय में इस प्रकार से पति के साथ सती हो जाने वाली नारी के और उसके पति के चित्र को बनवाया जाता था और उनकी अनेक पीढ़ियों तक पूजन हुआ करता था। कभी–कभी उन दोनो के नाम पर चबूतरे भी बनवाये जाते थे और इस चबूतरे की भी पूजा हुआ करती थी। यह इस काल का बहुत ही घिनौना कार्य था फिर भी आज तक वह आकृतियाँ आज भी उदयपुर और डूँगरपुर के संग्रहालयों में देखी जा सकती हैं।

ज्योतिषी तथा पुजारी

राणा सांगा के काल में यह प्रथा बहुत महत्वपूर्ण थी। सामन्त, राज घराने और सम्पन्न लोग इस व्यवस्था पर बहुत विश्वास किया करते थे। यहाँ तक कि अपने भविष्य की जानकारी प्राप्त करने के लिए लोग कभी अकेले और कभी समूहो में होकर ज्योतिषियों और पुजारियों के पास जाते थे और उनसे बहुत ही सम्मानित विधि से प्रणाम कर लेने के बाद अपने भविष्य के सन्दर्भ में उस ज्योतिषी और पुजारी से प्रश्न करके उस फल प्राप्त कर लिया करते थे।

इस सन्दर्भ में डॉ0 कालूराम शर्मा ने 'राजस्थान का इतिहास' नामक ग्रन्थ में ज्योतिषी और पुजारी के प्रकरण को विस्तृत रूप से प्रदर्शित किया है[24]। मेवाड़ नरेश महाराणा कुम्भा की जब उनके पुत्र उदा (उदय सिंह) ने हत्या करके शासन हथिया लिया तब असन्तुष्ट सिसोदिया सरदारों को यह कुकृत्य बहुत कष्ट दिया। उनके सहयोग से राणा कुम्भा का बेटा रायमल मेवाड़ का महाराणा बन गया। रायमल के पास 11 रानियाँ थीं। इस प्रकार उनसे 14 पुत्र और 2 पुत्रियां पैदा हुई थीं। रायमल का बड़ा पुत्र पृथ्वीराज फिर जयमल और उसके बाद सांगा थे। रायमल की नीति दुर्बल थी वह मेवाड़ का उत्तराधिकारी कभी दृढ़ता से चुन नहीं सके थे। उधर रायमल के चाचा सारंगदेव भी अपने को मेवाड़ का दावेदार मानते थे। रायमल के प्रथम पुत्र पृथ्वीराज अपने को प्रबल दावेदार मानते थे और सांगा भी मन से राजपद चाहते थे किन्तु पृथ्वीराज और सारंगदेव के रहते उन्हें कोई आशा की किरण तक भी नहीं दिख रही थी। किसी दिन पृथ्वीराज, सारंगदेव और सांगा ने विचार किया किस इस सम्बन्ध में किसी ज्योतिषी से पूँछकर सिंहासन पर बैठने का मार्ग साफ कर लिया जाय।

उपर्युक्त भाव मन में लेकर तीनों (पृथ्वीराज, जयमल और सांगा अपने चाचा सारंगदेव के साथ) अपने भविष्य को जानने की इच्छा से एक ज्योतिषी के पास जाकर अपने–अपने भविष्य के सन्दर्भ में प्रश्न किया। उस ज्योतिषी ने तीनों की जन्मपत्रियों का अध्ययन किया और सांगा के ही प्रबल राजयोग को बताया।

इतना कहना ही था कि पृथ्वीराज इसे सहन नही कर पाया। उसने अपनी तलवार से सांगा पर भरपूर प्रहार किया। प्रयास करने पर सांगा ने अपने को बचा लिया, किन्तु पृथ्वीराज के प्रबल वार करने के कारण तलवार की नोंक सांगा की आँख में घुस गयी और सांगा की आँख खराब हो गयी। उस पृथ्वीराज का उद्देश्य यह था कि जब सांगा अंगहीन हो जायेगा तब वह राजपद के योग्य नहीं रह जायेगा। इसके चलते वह पृथ्वीराज राज्य को प्राप्त कर लेगा।

इस कलह को देखकर सारंगदेव पृथ्वीराज और सांगा के बीच आकर शान्त कराया। इसके बाद सारंगदेव ने कहा कि हमें किसी भी ज्योतिषी पर कोई भी विश्वास नहीं करना चाहिए। सारंगदेव ने कहा कि यदि हम सबको विश्वास करना ही है तब हमे भीमल जाना चाहिए वहाँ चारण जाति की चामत्कारिक एक पुजारिन है, वही सब बता सकती है। इस प्रकार तीनों भीमल गाँव की पुजारिन के पास गये। वहाँ पहुंचने पर पता चला कि पुजारिन कहीं बाहर है। तीनों प्रतीक्षा करने लगे। पृथ्वीराज सबसे बड़ा था और रायमल ने उसे कुम्भलगढ़ की शासन व्यवस्था उसे पहले ही सौंप दी थी। अतः वह महत्वपूर्ण मुख्य आसन पर बैठा दूसरा भाई जयमल भी पृथ्वीराज के पास आसन पर बैठ गया। सारंग शंकालु एवं सावधान था इसलिए वह कुठ दूर सिंह की खाल पर एक किनारे पर बैठ गया। इसी समय वह पुजारिन आ गई। उस पुजारिन को देख चारों ने अपने अपने बारे में जानने का प्रश्न किया। उस पुजारिन ने सबको देखा और सांगा के ही प्रबल योग को बता दिया। इतना कहना ही था कि तीनों में युद्ध छिड़ गया। सारंगदेव ने बीच बचाव करके घायल सांगा को फिर

बचा लिया था। इस प्रकार विवाद का कारण ज्योतिषी और पुजारिन के द्वारा बताया गया भविष्य का फल ही था। जब राज परिवार में यह परिस्थिति थी तब अन्य प्रजा आदि में भी वह भाव अधिक प्रबल रहा हो गया।

जौहर–प्रथा

राणा सांगा के काल में यह प्रथा बहुत प्रचलित और महत्वपूर्ण थी। युद्ध करते–करते जब विजय होने के आसार कुछ भी न रह जाते थे तब अपने प्राणों की चिन्ता किये विना शत्रु पर टूट पड़ना जौहर के रूप में माना जाता था। यह जौहर युद्ध–भूमि में सामूहिक रूप से प्रदर्शित हुआ करता था। राणा सांगा ही नहीं अपितु उनके पूर्व महाराणा कुम्भा के काल में भी महमूद खिलजी ने जनकाचल पर आक्रमण कर दिया। भीषण युद्ध होने पर भी जब कुछ भी जीतने के आसार नहीं रह गये तब बिना देर किये स्त्रियों नें प्राणों की बाजी लगाकर जौहर दिखा दिया। यह प्रथा प्रचलित रहने के दो ही कारण थे। एक कारण तो यह था कि अपने शासक को वह हारता हुआ देख नहीं सकती थीं और दूसरा कारण अधिक महत्वपूर्ण था। वह यह जानती थीं कि युद्ध में यदि उनके राजा/शासक की पराजय हो जायेगी तब वह दिन बहुत कठिन होगा। जीतने वाला शत्रु खीझकर खुशियां मनाने का पूरे जोर से प्रयास करेगा। स्त्रियों को प्रताड़ित किया जाने का पूर्ण भय बना रहता था। सबसे बड़ा भय तो यह था कि शत्रु जब जीत जायेगा और उन स्त्रियों के पति वीरगति को प्राप्त हो जायेंगे अथवा यदि जीवित भी रहेंगे तब उनका जीवित रहना मरने से भी अधिक दुःखदायी होकर रहेगा। इसके साथ ही जीता हुआ शत्रु वीरगति

प्राप्त राजा, योद्धाओं और अन्य की पत्नियों के शील भी भंग कर देते थे। इसी कारण से उस काल में स्त्रियाँ यह दृढ़ निश्चय कर लेती थीं कि विधवा बनकर जीवित रहना और आन, बान और शान छोड़कर शत्रु के हाथ में पकड़कर भंग कराने की अपेक्षा यह कल्याणकारी होगा कि लड़ते–लड़ते वे भी वीरगति को प्राप्त कर जायेंगी। ऐसा जौहर दिखाने से शत्रु के छक्के भी छूट जायेंगे और उसके साथ उन्हें नारकीय जीवन कभी भी बिताना नहीं पड़ेगा। इस प्रकार की जौहर प्रथा राणा सांगा के काल में प्रायः प्रचलित थी।

लोलुपता

लोलुपता का अर्थ है लालच में पड़ जाना। यह दोष यद्यपि हर युग और हर काल तथा प्रायः हर व्यक्ति में प्राप्त होता था। यही नहीं भविष्य में यही दशा रहेगी। राणा सांगा के काल में यह लोलुपता की प्रथा चरम पर थी। शासक पिता के न रहने पर यद्यपि उसका पुत्र ही उत्तराधिकारी होता था, किन्तु महाराणा कुम्भा का शासन करते ही उनके पुत्र उदा (उदय सिंह) ने इस राज्य की लोलुपता के वशीभूत होकर अपने ही पिता की हत्या कर अत्यन्त घिनौना कुकृत्य कर डाला। यह हिन्दू जाति के लिए कलंक के रूप में हमेशा गिना जायेगा।

महाराणा रायमल के शासन करते भविष्य में कोई भी उत्तराधिकारी महाराणा रायमल द्वारा निश्चित नहीं किया जा सका था। उन राजा रायमल की नीति स्पष्ट न होकर बहुत ही ढुलमुल प्रकृति वाली थी। उसका दुष्परिणाम यह हुआ कि महाराणा रायमल के तीनों पुत्र (पृथ्वीराज, जयमल और सांगा) राजपद के दावेदार हो गये थे। यही नहीं उन तीनों

के दावेदारी के साथ–साथ इनके चाचा सारंगदेव भी राजपद के लिए अपने को दावेदार मानते थे। इसी का फल यह हुआ कि लोलुपता के चलते सांगा की आपसी कलह में एक आँख हमेशा के लिए चली गयी। इसी लोलुपता का ही फल था कि बाबर ने हर समय लड़ाई ही लड़ी। उसका जीवन ही लड़ाई लड़ते और आगे बढ़ते लड़ते बीत गया था।

इन उदाहरणों के अतिरिक्त शैबानी खान इतना क्रूर था कि वह बाबर पर हमेशा अपनी लोलुपता की दृष्टि रखता था। कई बार तो ऐसे अवसर आए कि बाबर ने जब यह सुना कि वह उनका पीछा कर रहा है अथवा आक्रमण करने वाला है तब बाबर विना किसी भी प्रकार का विचार विमर्श किए भाग खड़ा हुआ। वही बाबर जो सम्पूर्ण भारत का सम्राट् होना चाहता था और इस लक्ष्य की सफलता का स्वप्न देख रहा था वह भी अपने क्रूर शत्रु शैबान खान से डर कर चूहे की भाँति भागता रहता था। इस प्रकार से राणा सांगा का काल इस प्रकार का काल था कि जिस समय लोलुपता की कोई सीमा ही नहीं रह गयी थी। लोग अर्थ की लालच में माता, पिता, पुत्र, भाई, भतीजा, बहन और अन्य कोई भी किसी भी प्रकार के सम्बन्ध को कुछ भी नहीं समझते थे। अपना स्वार्थ सिद्ध हो जाय इस सिद्धि के लिए उन्हें जो भी घृणित से घृणित दुष्कृत्य करना होता तब भी वह दुष्कृत्य कर डालने में किसी को काई भी हिचक नहीं थी। मानव की यह लोलुपता की दुर्बलता राणा सांगा के काल में बहुत बाधक बनकर अपने दुष्परिणाम स्थान–स्थान पर व्यक्त कर रही थी।

कर–प्रथा

राणा सांगा के समय शासन की ओर से कर लेने की व्यवस्था थी। कोई भी शासक अपनी प्रजा से एक निश्चित सीमा से कर लिया करता है। इसके अतिरिक्त भी अधीनस्थ सामन्तों से भी लोग (शासक) कर लिया करते थे। राणा कुम्भा और सांगा के काल में भी उन्नत श्रेणी के वस्त्रों का आयात हुआ करता था। इन वस्त्रों पर कर लगाने की व्यवस्था वहाँ के शासक द्वारा हुआ करती थी।

सांस्कृतिक स्थिति

किसी भी देश की संस्कृति उस देश अथवा राज्य की पहचान हुआ करती है। उसी संस्कृति के माध्यम से उस देश अथवा राज्य का महत्व स्थापित हुआ करता है। राणा सांगा के काल में मेवाड़ की संस्कृति बहुत ही महत्वपूर्ण थी। वही संस्कृति उस मेवाड़ को अन्य स्थान अथवा देश से पृथक् करते हुए उसे और भी महत्त्वपूर्ण बनाया करती थी। उस संस्कृति का परिचय अधोलिखित रूप में मेवाड़ में प्राप्त हुआ करता था–

संस्कार

संस्कार का बहुत ही महत्व हुआ करता है। इसी संस्कार से ही मानव की प्रकृति में अन्तर[25] हो जाता है। संस्कृति का सम्बन्ध संस्कार से हुआ करता है। सम्यक् करना ही संस्कार होता है। 'सम्यक्करणं संस्करणं वा संस्कारः' इसी उद्देश्य से कहा गया है। जहाँ तक संस्कार का सम्बन्ध है गर्भाधान से लेकर मृत्यु के पश्चात् होने वाले संस्कारों की संख्या 16

हुआ करती है। संस्कार प्रकाश में संस्कारों का परिगणन अधोलिखित रूप में किया गया है–

1. गर्भाधान
2. पुंसवन
3. सीमन्तोन्नयन
4. जातकर्म
5. नामकरण
6. निष्क्रमण
7. अन्नप्राशन
8. चूड़ाकर्म
9. कर्णवेध
10. उपनयन
11. वेदारम्भ
12. समावर्तन
13. विवाह
14. वानप्रस्थ
15. सन्यास
16. अन्येष्टि

राणा सांगा के काल में भी इन संस्कारों का विशेष महत्व था। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त के संस्कार लोगों के द्वारा सम्पन्न हुआ करते थे। यह सनातन संस्कार महाराणा कुम्भा के समय और उसके पूर्व में भी सम्पन्न हुआ करते थे। ऐसे समय में लोग आवश्यकता के अनुसाार नवीन

वस्त्र धारण करते थे। ऐसे अवसरों पर लोग अपने इष्ट, मित्रों, नाते रिश्तेदारों को बुलाकर अच्छे–अच्छे भोजन कराते थे। संस्कार कराने वाला व्यक्ति सबको प्रणाम करता हुआ उनसे आशीर्वाद प्राप्त करता था। ऐसे अवसरों पर लोग अपने सामान्य जनों को दक्षिणा के रूप में द्रव्य–दान भी किया करते थे[26]।

वस्त्र और आभूषण

इसके अन्तर्गत राणा सांगा के काल में अनेक प्रकार के उल्लेख प्राप्त होते हैं। उस समय छपे और मोटे कपड़े पहनने की प्रथा थी। पुरुषों और स्त्रियों के वस्त्र विभिन्न प्रकार के हुआ करते थे। उस समय कुछ लोग वस्त्र को बनाते थे। कुछ लोग उसे रंग प्रदान किया करते थे।

उस काल में पुरुष वर्ग अधिकांशतः धोती और जामा पहनते थे। इसके अतिरिक्त वे अपने सिर पर पाग बाँधा करते थे। कुछ विशेष सम्प्रदाय के जैनी जैसे लोग धोती को तो धारण करते ही थे साथ में एक उत्तरीय वस्त्र भी ओढ़ लिया करते थे। धोती पहनने की विधि भी विचित्र थी। पुरुष जब धोती पहनता था वह ऊँची धोती पहनता था। उस काल में स्त्रियों को घांघरा बहुत प्रिय हुआ करता था। वे चोली पहनती थीं और आढ़नी ओढ़ा करती थीं। यह चोली राजपूतानों में दूसरे प्रकार की थी। राजपूत महिलाओं में यह चोली लम्बी होती और वह उनके कमर तक को ढँका करती थी। अन्य जातियाँ तो कंचुकी धारण किया करती थीं। कुछ विशेष लोग स्वर्ण के तार लगे हुए महँगे वस्त्र धारण कर लिया करते थे। यह प्रचलन सम्पन्न वर्ग के युवकों में अधिक रूप से हुआ करता था।

भोजन हुआ करता था। यह भोजन निरामिष हुआ करता था। मांस और मद्य का प्रयोग समाज में प्रायः कम ही था। मेवाड़ में जौ अधिक खाया जाता था। इसके अतिरिक्त खिचड़ी, भात, गेहूँ, उड़द, चना, पूड़ी, लड्डू, गुड़ और मालपुआ का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में हुआ करता था। अफीम प्रायः लोग खाते थे। मांस और मछली तथा मद्य का प्रयोग प्रायः क्षत्रियों और निम्न लोगों द्वारा हुआ करता था।

आमोद–प्रमोद

राणा सांगा काल में आमोद और प्रमोद के साधनों का बहुत प्रचलन था। यह साधन सामान्य और उच्च वर्गों में पृथक्–पृथक् हुआ करते थे। राजा लोगों का मनोरंजन शिकार खेलना हुआ करता था। प्रायः लोग शिकार खेलने में अपनी कुशलता का प्रयोग किया करते थे।

उस समय नाटक देखने का भी रिवाज था। सामन्ती और राजा महाराजा दरबार लगाते थे। सुन्दरी महिलाएं नाच कूद कर उन्हें खुश किया करती थीं। भिन्न–भिन्न वर्णों की नाट्यशालायें भी भिन्न–भिन्न प्रकार की हुआ करती थीं। नृत्य का प्रचार और प्रसार अधिक था। विवाह आदि के शुभ अवसरों पर मांगलिक गीत गाये जाते थे। इस प्रकार के गीतों में ढोलक वाद्य के रूप में बजाई जाती थी। इसके साथ तुरही बजाने का भी प्रचलन था। मृदंग, झाँझ और बांसुरी बजा करके लोग अपना और अन्यों का मनोरंजन करते और कराते थे। लोक–नृत्यों में 'घेर' नृत्य होता था। यह तो सामूहिक रूप से डंडों पर किया जाता था।

नाटकों में उस समय कहीं पर श्रीकृष्ण लीला और कहीं पर श्रीराम की लीला दिखाई जाती थी। रात के समय लोग गाते और बजाते हुए

जहाँ तक आभूषण का प्रसंग है, राणा सांगा के काल में लोग तीन प्रकार के आभूषण पहनते थे–

1. स्वर्ण–निर्मित
2. रजत–निर्मित
3. कांस्य और पीतल–निर्मित

साधारण वर्ग में स्वर्णाभूषण का प्रयोग कम होता था। विशेष लोग सोने के आभूषण पहनते थे। मध्य वर्ग के लोग रजत (चाँदी) के बने आभूषण धारण करते थे। शूद्र वर्ग में तो प्रायः कांस्य और पीतल धातु के बने आभूषण लोग धारण करते थे।

पुरुष वर्ग कानों में कुण्डल पहनता था। इसके अतिरिक्त कण्ठ में कण्ठी, अंगुलियों में मुद्रिका (मुँदरी) पहना करते थे। स्त्रियों के द्वारा चूड़ा पहनने की प्रथा थी। वह चूड़ा कभी काँच का और कभी हाथी दाँत का बना होता था।

श्रृंगार

राजा सांगा के काल में स्त्रियाँ श्रृंगार करने की शौकीन हुआ करती थीं। महिलाएं अपनी आँखों में प्रायः काजल का प्रयोग करती ही थी। वे महिलाएं काजल की लम्बी रेखा आँखों के बाहर तक अपने को सुशोभित करने के लिए निकालती थीं। इस प्रकार उनका सौन्दर्य बढ़ जाता था। वे अपने बालों को विभिन्न प्रकार से सजाया करती थीं।

भोजन

राणा सांगा के काल में जन साधारण का भोजन बिल्कुल सादा

जागरण किया करते थे। कुछ नट–सम्प्रदाय भी होते थे। ऐसे लोग बांसों पर अपने खेल दिखाते थे और जनसाधारण तथा विशिष्टजन को भी मन्त्रमुग्ध कर लिया करते थे।

उद्योग–धन्धे

वर्तमान काल की भाँति उस समय मशीन का युग नहीं था। इसलिए उस समय गृह उद्योगों का ही प्रचलन प्रचुर रूप में था। प्रायः लोगों का प्रयास यह था कि उस गाँव भर के आवश्यकता की पूर्ति उसी गाँव के द्वारा बने वस्तुओं से हो जाय।

मेवाड़ में उस समय प्रत्येक गाँवों में कुम्हार, लोहार, तेली, माली, नाई, रंगरेज और सोनार अपने–अपने कार्य किया करते थे। इसके अतिरिक्त गाँवों में भी बाजारों की भाँति छोटे दुकानदार भी हुआ करते थे। इस प्रकार गाँव वालों को कोई आवश्यकता होने पर कहीं पर भी भटकना नहीं होता था। यह दुकानदार काश्तकारों तथा साधारण लोगों में कर्ज दिया करते थे। इस प्रकार गाँवों में मेल–जोल अधिक हुआ करता था। भीलवाड़ा के पास लोहा को साफ करने का कारखाना लगाया गया था। कुम्भलगढ़, डूँगरपुर, और आबू जैसे स्थानों पर धातु की अनेक प्रकार की प्रतिमायें बनाई जाती थीं।

उस समय व्यापार करने की दृष्टि से व्यापारी मालवा अथवा गुजरात जाया करते थे। गेहूँ, धान, चावल, जौ और मूंग विक्रेता प्रायः हुआ करते थे। उस समय मेवाड़ के अन्तर्गत गुड़ और शक्कर बनाने का कार्य हुआ करता था। मेवाड़ से अफीम, गुड़ और शक्कर आदि का निर्यात हुआ

करता था। उस समय जावर, चित्तौड़ और मांडलगढ़ कई प्रमुख व्यापारिक केन्द्र हुआ करते थे।

उस समय गाँव के लोगों का प्रमुख कार्य खेती का कार्य करना हुआ करता था। प्रायः सभी वर्गों के लोग कृषि–कार्य किया करते थे। कृषि भी पूर्ण रूप से बरसात पर निर्भर हुआ करती थी। गाँवों में बने कुओं से पानी भी पिया जाता था और खेती की सिंचाई भी हुआ करती थी। तालाबों के द्वारा भी सिंचाई का कार्य हुआ करता था। वहाँ की खेती गेहूँ, उड़द, गन्ना, कपास, तिल और अफीम की हुआ करती थी।

वास्तु कला

महाराणा कुम्भा से लेकर राणा सांगा पर्यन्त मेवाड़ में वास्तु कला का बहुत विकास हुआ था। यह वास्तु कलायें अनेक प्रकार की हुआ करती हैं, जैसे–

भवन–निर्माण से सम्बन्धित

देवालय–निर्माण से सम्बन्धित

जलाशय–निर्माण से सम्बन्धित

स्तम्भ–निर्माण से सम्बन्धित

दुर्ग–निर्माण से सम्बन्धित

महाराणा सांगा के काल में इन पाँच प्रकार की कलाओं का बहुत विकसित रूप हो चुका था। मेवाड़ में भवन और राजभवन उच्च कोटि के बने थे। उन भवनों में सुन्दर गवाक्षों का निर्माण बहुत ही अच्छा था। आवासी गृहों में सुन्दरता के स्थान पर सफाई, सादगी और उपयोगिता पर विशेष ध्यान दिया गया था।

प्रत्येक व्यक्ति का कोई न कोई देव, देवता हुआ करता है। मेवाड़ में भी यही व्यवस्था थी। मन्दिरों के निर्माण में अनेक प्रकार की विशेषताएं थीं। इनमें जैन मन्दिर, चित्तौड़ के दुर्ग के पास कुम्भ स्वामी का मन्दिर प्रमुख रूप से दर्शनीय हैं। इन मन्दिरों में जीर्णोद्धार के पश्चात् वर्तमान में संगमरमर के पत्थर लगे हैं।

सांगा के समय मेवाड़ में जलाशय के रूप में कुएं और तालाब थे। उनसे पानी पीने की व्यवस्था चलती थी और लोग खेती की सिंचाई भी किया करते थे।

दुर्ग का अर्थ है जहाँ पर विरोधी लोग बहुत ही दुःख का अनुभव करने के बाद जा सकें। प्राचीन काल में राजा और सामन्ती व्यवस्था के लोग अपने प्रासादों में चतुर्दिक् अथवा स्वतंत्र रूप से दुर्ग (किले) का निर्माण कराते थे। उन दुर्गों में पर्याप्त सेना रहती थी। यदि कोई विरोधी राजा आक्रमण करता था तो उस आक्रान्त राजा का परिवार और उसकी सेना उसी दुर्ग में शरण लिया करती थी। महाराजा मनु ने तो कई प्रकार के दुर्ग का उल्लेख किया है।

धन्वदुर्गं महीदुर्गमब्दुर्गं वार्क्षमेव वा।
नृदुर्गं गिरिदुर्गं वा समाश्रित्य वसेत्पुरम्।।[26]

इन दुर्गों के निर्माण का उद्‌देश्य रक्षा करना हुआ करता है। दुर्गों में रहकर अजेय संग्राम हुआ करता है। एक सैनिक आयुधों से युक्त होकर एक सौ योद्धाओं से, तथा सौ सैनिक यदि दुर्गस्थ हैं तब वे दस हजार सैनिकों से लड़ने में समर्थ हुआ करते हैं[27]।

दुर्ग की इस परम्परा का कुशल निर्वाह वीरों की जन्मस्थली मेवाड़ में प्रचुर रूप से हुआ जिन्हें राणा के द्वारा उस स्थिति के अनुकूल रूप प्रदान किया गया था।

मूर्ति कला

राणा के काल में मूर्ति कला का प्रचार प्रसार पर्याप्त मात्रा में हुआ था। इस समय शैव और वैष्णव दोनों प्रकार की शाखाओं का समान रूप से प्रचार और प्रसार था। इसलिए उन मतावलम्बियों ने अपने अपने अनुसार देवों की प्रतिमाओं का निर्माण भी कराया था।

संगीत कला

संगीत का जीवन में विशेष महत्व हुआ करता है। इसके अभाव में मनुष्य को पुच्छ और विषाण से रहित पशु की संज्ञा प्रदान की गई है।[28] विष्णु शर्मा ने तो संगीतज्ञ रावण के द्वारा भगवान् शिव को अपने वश में कर लेने का तर्क प्रस्तुत किया है। राणा सांगा के राज्य में संगीत के अनेक रूप हो गये थे। दरबार में गायिका और नर्तकियों को बुलाकर उनसे संगीत का प्रयोग करवाकर आनन्द लिया जाता था। इसी संगीत का प्रयोग करते हुए जो कि गुजराती शैली में नृत्य कर रही थी, गुजरात के बहादुरशाह ने एक सुन्दर लड़की को देख लिया था। इसके परिणामस्वरूप वह बहुत आकर्षित हो चुका था। कुछ समय बाद जब बहादुरशाह को पता चला कि वह नर्तकी अहमदनगर की काजी की बेटी है और युद्ध में लूटकर उसे लाया गया था तब वह बहादुरशाह बहुत नाराज हुआ था। इस क्रोध के चलते उसने राजा के एक व्यक्ति की हत्या कर डाली थी।

उत्सव

किसी भी देश के संस्कृति की पहचान वहां के शासक अथवा निवास करने वाली जनता के द्वारा मनाये जाने वाले उत्सव के द्वारा हुआ करती है। यदि जनता सुखी और समृद्धियुक्त है तब वह जनता समय समय से आने वाले उत्सवों, पर्वों को बहुत ही प्रसन्नतापूर्वक मनाया करती है और दुःख से त्रस्त और धन के अभाव में परेशान वहाँ की जनता किसी भी प्रकार के उत्सव के समय न तो कोई खुशी प्रकट करती है और न ही उसका मन किसी उत्सव को मनाने में लगता है। राणा कुम्भा के काल से राणा सांगा के समय तक समान रूप से पर्वों एवं उत्सवों को जनता मनाया करती थी। प्रत्येक ऋतुओं में उपस्थित होने वाले उत्सवों को जनता पूरे मनोयोग के साथ मनाया करती थी। राज परिवार में भी समय–समय पर उत्सव आयोजित हुआ करते थे। कुछ पारंपरिक उत्सव जो उत्तर भारत, मध्य भारत तथा दक्षिण भारत में होते थे उनका आयोजन पूरे जोरों के साथ किया जाता था।

राजनीति

राजनीति राजप्रकृति के व्यक्ति की होती है। प्रत्येक काल में कुछ न कुछ राजनीति द्वारा निर्धारित विधि, विधान होते हैं जिनके द्वारा वहाँ का शासन अपना नीति–निर्धारण करता है और वहाँ की जनता उसका पालन किया करती है।

राणा सांगा के काल में राजनीति में प्रायः उथल–पुथल ही रहा। उनके स्वयं सिंहासनारूढ़ होने में भी अधिक प्रकार की राजनीति हुई थी।

राणा जयमल के तीन पुत्र राजा रायमल के बाद सिंहासन के अधिकारी बन चुके थे। रायमल के सबसे बड़े पुत्र पृथ्वीराज, द्वितीय पुत्र जयमल और तृतीय पुत्र सांगा। इतने पर भी शान्ति नहीं थी। इनके चाचा सारंगदेव स्वयं को भी सिंहासन का अधिकारी मानते थे और राजनीति किया करते थे। एक बार ज्योतिषी के यहां कोई निर्णयात्मक स्थिति न बनने से और कलह छिड़ जाने के कारण सारंगदेव ने राजनीति ही करके उस समय तुरन्त कलह शान्त कराया। इतनी राजनीति पर भी जब शान्ति नहीं मिली तब सारंगदेव ने अगली चाल चल दिया। इस प्रकार एक पुजारिन के पास फिर भविष्य जानने के लिए वह सारंगदेव पृथ्वीराज, जयमल और सांगा को लेकर गये। आखिर में पुजारिन ने बताया किन्तु क्रुद्ध पृथ्वीराज ने तलवार की नोंक से सांगा की एक आँख को समाप्त ही कर दिया। उसका उद्देश्य था कि सांगा यदि अंगहीन हो जायेगा तब अंगहीन को राज्य मिलना असम्भव हो जायेगा। यह सब राजनीति नहीं तो और क्या था ? पूरा राजवंश इस दुष्कृत्यसे थर्रा गया था। इस प्रकार दूषित राजनीति का स्वरूप प्राप्त होता है।

भौगोलिक–स्थिति

मेवाड़ को प्रकृति ने ऐसी परिस्थिति प्रदान किया है कि यह राज्य सामरिक दृष्टि से बहुत ही सुरक्षित और महत्वपूर्ण रूप प्राप्त किया था। इसके पश्चिम में, पश्चिम–दक्षिण में, उत्तर और पूरब में अधिकांश भाग पर्वतीय रहा है। इस प्रकार प्राकृतिक दृष्टि से मेवाड़ पर्वताच्छादित रहा है। मात्र मध्य का भाग ऐसा जो मैदानी रूप को प्राप्त किया है। प्राकृतिक

दृष्टि से यदि अवलोकन किया जाय तो मेवाड़ का विभाजन दो प्रकार से किया जा सकता है।

1. पर्वतीय भाग

पर्वतीय भाग का भी विभाजन अनेक रूपों में किया जा सकता है। यह पर्वतीय भाग मेवाड़ की प्राचीन संस्कृति के पोषक और उन्नायक रहे हैं। यह पर्वतीय भाग अनेक भागों में विभक्त हो सकता है, जैसे–

मेवाड़ के पर्वतीय भाग

यह पर्वतीय भाग ऐसा है जहाँ पहाड़ियाँ बहुत ऊँची भी नहीं हैं। राजपूतों के द्वारा बहिष्कृत मेव लोग इसी पर्वत माला में जाकर शरण ले लिए। अजमेर मेरवाड़ से अरावली पर्वतमाला मेवाड़ में बदनोर तहसील में घुसी हैं। यहाँ के बहिष्कृत नागरिक प्रायः राजपूतों के लिए समस्या के रूप में बने रहे। अनेक राजपूतों का इन लोगों से जमकर बराबर संघर्ष हुआ करता था। महाराणा कुम्भा को भी इन लोगों का विद्रोह झेलना पड़ा था। राणा सांगा के समय कोई आन्तरिक विरोध नहीं रह गया था।

जरगा पर्वतीय भाग

कुंभलगढ़ के पास यह पर्वतीय श्रेणी है जिसकी ऊँचाई 3215 फीट मानी गई है। स्थानीय नाम से यह जरगा पर्वत माला के रूप में जानी जाती है। यहाँ के जंगल बहुत घने हैं। सैनिक दृष्टि से इस क्षेत्र को बहुत महत्त्व रहा है। भील और मीना आदि यहाँ के निवासी हैं। मेवाड़ के शासकों ने इस क्षेत्र को सदा प्राथमिक दृष्टि से महत्त्व दिया है।

राणकपुर गोगून्द पर्वतीय भाग

राणकपुर से यह पर्वतमाला गोगुन्दा तक चली गयी है। यद्यपि यहाँ घने जंगलों का अभाव है, फिर भी यह महत्वपूर्ण भाग है। गोगुन्द पर्वत 2776 फीट ऊँचा है। इस क्षेत्र का महत्व अनेक दृष्टियों से रहा है। यद्यपि यहाँ पर घने जंगल और पर्वतीय घाटियों का अभाव है फिर भी यह पर्वतीय भाग बहुत महत्त्वपूर्ण रहा है।

भीमट पर्वतीय भाग

मेवाड़ का दक्षिणी भाग पर्वतीय है इसे ही भीमट के नाम से कहा गया है। ओगुणा से कोल्यारी होकर जाने वाली और वाकल नदी से पश्चिम होकर जाने वाली दो पर्वतमालायें बहुत महत्वपूर्ण हैं। इन दोनों के मध्य प्राचीन मार्ग था जो ईडर और गुजरात की ओर जाता था।

यह मेवाड़ सर्वाधिक घना भाग है। यहाँ बहुत घने जंगल हैं। यहाँ पर वर्षा औसत से अधिक हुआ करती है। इसी घनत्व के कारण यहाँ के 'सरवण कमल नाथ' के क्षेत्र मेवाड़ के शासकों को शरण प्रदान किया करता था। ईडर वाले हमेशा इस भीमट पर अधिकार का प्रयास करते रहे किन्तु उन्हें कभी सफलता नहीं मिल पायी थी। यद्यपि इस भीमट के लिए संघर्ष चलता रहा।

गिरवा पर्वतीय भाग

यह शब्द गिरिवाट से बना है। यहाँ भी भीलों का प्रमुख निवास है। यह क्षेत्र पहाड़ी है। सामरिक दृष्टि से इस पर्वतीय भाग का भी विशेष महत्त्व रहा है।

मगरा पर्वतीय भाग

उपरिलिखित गिरवा के दक्षिण में जो भू–भाग है उसे मगरा के नाम से जाना गया है। यह क्षेत्र पहाड़ी है और घने जंगलों वाला भी है। यहाँ पर मेवाड़ के सबसे अधिक बांसों के जंगल पाये जाते हैं। यह भाग भी शत्रुओं की पहुँच के लिए बड़ा दुर्गम रहा है।

धरियावद पर्वतीय भाग

यहाँ पर छोटे–छोटे पर्वत प्राप्त होते हैं। क्योंकि इस क्षेत्र में आक्रमण कम हो पाए थे, क्योंकि गहरी–गहरी खाइयों के होने के कारण यहाँ पर भी किसी शत्रु की पहुँच नहीं हो पायी थी। इस कारण से यह भाग बड़ा दुर्गम क्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध रहा है।

ऊपर माल

मेवाड़ के पूर्वी भाग को ऊपर माल पठार कहा गया है। कम ऊँचा होने के कारण यह भाग पठारी अधिक है। यहाँ पर मांडलगढ़ का दुर्ग बहुत ही प्रसिद्ध रहा है। यह भाग पर्वत श्रेणियों से युक्त है। मालवे का सुल्तान कुम्भा से अनेक बार लड़ा किन्तु एक बार भी उसकी जीत नहीं हो सकी। वह हर बार असफल रहा। मेवाड़ का ढाल उत्तरपूर्व की ओर है। यही कारण है कि नदियों का ढाल भी उत्तर पूर्व की ओर ही रहा है।

2. मैदानी भाग (मैदान प्रधान भाग)

मेवाड़ के मध्य भाग मैदानी भाग के नाम से जाना जाता है। यह भाग बनास और उसकी सहायक नदियों के द्वारा सींचा जाता है। इसमें पहाड़ी भाग नगण्य हैं। यहाँ पर नदियों और तालाबों द्वारा खेतों की

सिंचाई होती है। कहीं–कहीं तालाबों और नदियों से नहरें भी निकाली गयी हैं।

3. नदियाँ

जहाँ पर पर्वत उस देश की संस्कृति के प्रतीक हैं वहीं पर नदियाँ प्रवाहित होती हुई उस क्षेत्र के नाम को उन्नत किया करती हैं। मेवाड़ में नदियों की संख्या 6 है जिनमें दो ही प्रधानता को प्राप्त हैं। इसका उल्लेख इस प्रकार किया जा रहा है।

बनास नदी

यह मेवाड़ की प्रधान नदी है। इस नदी का उद्गम जरगा पर्वतमाला है। यह नदी मेवाड़ के भीतर से होकर इस क्षेत्र में प्रवाहित होती हैं। यह नदी मेवाड़ के पूर्वी भाग में बहने वाली अन्य नदियों को साथ लेकर प्रवाहित होती है और इस प्रकार प्रवाहित होती हुई मध्य प्रदेश के समीप में चम्बल नदी में मिल जाती है। इस नदी का मेवाड़ के इतिहास के अन्तर्गत विशेष स्थान रहा है।

बेड़च नदी

बनास नदी के बाद इस नदी का द्वितीय स्थान है। इसे कहीं–कहीं आहाड़ की नदी भी कह दिया जाता है। यह नदी गिरवा पर्वत माला से निकलती है। यह नदी स्थान–स्थान पर अनेक नदियों में मिल जाती है।

कोठारी नदी

यह नदी बहुत लम्बी नहीं है। यह दिवेर के पास से होकर बहती है। बाद में यह नदी बनास नदी में मिल जाती है। यह नदी अधिक रूप से

मैदानी भाग में प्रवाहित होती है। यह मेवाड़ के लगभग 140 किमी के क्षेत्र में प्रवाह धारण करती है।

खारी नदी

मेवाड़ के उत्तर की ओर प्रवाहित होने वाली नदियों में यह प्रमुख नदी है। यह नदी भी लगभग 100 किमी की दूरी तय करके बनास नाम की नदी में मिल जाती है। इस प्रकार यह नदी थोड़ी ही दूरी तक अपनी लीला प्रस्तुत करती है।

जाकम नदी

यह नदी सोम नदी की सहायक नदी है। यह सादड़ी के पास से निकलकर प्रतापगढ़ के भू–भाग में प्रवेश प्राप्त करती है। यह नदी भी सोम नदी में मिल जाती है। जिससे इस नदी का क्षेत्र बहुत थोड़ा ही है।

वाकल नदी

यह नदी गोगुन्दा के पश्चिम से अपनी प्रवाह यात्रा को प्रारम्भ करती है। मेवाड़ के दक्षिण की ओर से होकर गुजरात में प्रवेश कर जाती है। गुजरात में यह साबरमती नदी में मिल जाती है। इस नदी का भी मेवाड़ के इतिहास में विशेष महत्त्व रहा है।

4. जलीय परिस्थिति

मेवाड़ में प्रायः वर्षा कम ही हुआ करती है। वहाँ पर सामान्य रूप से 20 इंच के आस–पास ही वर्षा हो पाती है। कुछ भागों में वर्षा का प्रतिशत कुछ अधिक ही पाया जाता है। प्रत्येक तीन–चार वर्ष के बाद अधिक वर्षा भी हो जाती है। अतः अकाल और अधिक वर्षा से वहाँ के लोग झेल जाया

करते हैं और उनकी कृषि हर तीसरे अथवा चौथे वर्ष विनष्ट हो जाती है। इस प्रकार उन्हें प्रकृति की मार झेलनी पड़ जाया करती है।

5. जलवायु

किसी भी देश की जलवायु में वहाँ की जल और वायु का प्रधान योगदान हुआ करता है। मेवाड़ की जलवायु सामान्य रूप से स्वास्थ्य के अनुकूल है। जहाँ पर अतिवर्षा हो जाती है वहाँ पर अनेक प्रकार की बीमारियाँ फैल जाया करती हैं। इसी प्रकार जहाँ पर अकाल पड़ जाता है वहाँ पर भी अनेक बीमारियाँ पड़ जाती हैं और पीने के पानी का संकट बराबर आ जाया करता है। जल भराव होने के कारण अनेक प्रकार के दूषित मच्छर पैदा हो जाया करते हैं, और वे तरह–तरह की बीमारियों के जनक हो जाया करते हैं। पहाड़ी क्षेत्रों में प्रायः पानी भरा ही रहता है। इस कारण मच्छरों का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। पर्वतीय पानी भरे होने से केवल परिश्रम करने वालों को लाभप्रद है अन्यथा इस भारीपन से भी तरह–तरह की बीमारियाँ उत्पन्न हो जाया करती हैं। ऐसे भागो में सर्दी के समय में भी अधिक सर्दी पड़ने लगती है और गर्मी के समय में अधिक गर्मी हुआ करती है इस प्रकार की जलवायु भी वहाँ की संस्कृति का स्मरण कराती रहती है।

इस प्रकार की सम और विषम जलवायु और विषम परिस्थिति होने पर भी राणा सांगा के काल में मेवाड़ की स्थिति बहुत सुदृढ़ हो गयी थी। यद्यपि राणा सांगा की एक आँख जा चुकी थी और युद्ध में उनके शरीर पर अनेक घाव हो गये थे। युद्ध करते उनकी एक भुजा भी बेकार हो चुकी थी। इतना ही नहीं इब्राहिम लोदी के साथ गोला लग जाने से उनका

दहिना अंग ही बेकार हो गया था। इन विषम परिस्थिति के होने पर भी धन्यवाद के वह पात्र थे कि विषमता में भी उन्होंने बहुत अधिक मेवाड़ के लिए कर डाला था। इस सन्दर्भ में डी0आर0 मंकेकर का मानना है कि इन विषम परिस्थितियों के रहते भी राणा सांगा ने मेवाड़ को उन्नति की चरम सीमा पर पहुँचा दिया था[29]। यह बहुत बड़ी उपलब्धि मेवाड़ के सन्दर्भ में उदाहरणीय रही है। एक–एक शासक से उन्हें एक नहीं 18 बार[30] युद्ध करना पड़ा। अन्ततोगत्वा सुल्तान को राणा सांगा ने पकड़कर सम्मानपूर्वक कैदखाने में रखा था। यह भी मेवाड़ की विशेष संस्कृति का परिचायक रहा है।

इतिहासकारों के सर्वेक्षण से पता चलता है कि महाराणा सांगा कभी स्वतंत्र रूप में किसी सांस्कृतिक पक्ष की ओर ध्यान केन्द्रित नहीं कर सके थे। इसका प्रधान कारण था कि महाराणा का युग शान्त युग नहीं था। जीवन के बहुत खतरे वाले संघर्षों का सामना करने और उनसे प्रभावित होना उनके जैसे भाग्य में ही लिख गया था। उनका समय निरन्तर युद्धों और संघर्षों को झेलते हुए बीतता चला जा रहा था। उस विषम परिस्थिति का प्रभाव यह हुआ कि वे सांस्कृतिक पक्ष की ओर समय दे पाने में प्रायः असमर्थ हो रहे थे। हाँ, एक पक्ष तो महाराणा सांगा का बहुत मजबूत था कि अनेक लड़ाइयाँ लड़ने और अनेक झंझावातों को झेलते हुए भी उन्होंने अपने देश का सम्मान सदैव सुरक्षित किया था। देश के समक्ष आने वाली हर समस्याओं का राणा सांगा ने डटकर मुकाबला किया और अपने स्तर से उनका समाधान भी निकाला था। उनका एक प्रधान लक्ष्य था कि

उन्होंने अपनी शरण आने वाले को कभी निराश नहीं किया था और यदि कोई राजपूत या कि मुस्लिम ही उनके सामने उनके पक्ष में रहने का विचार किया अथवा उनके साथ कार्य करने का वायदा किया तब कभी राणा सांगा ने उस प्रकार के भाव वाले किसी व्यक्ति को भी निराश नहीं किया था।

वास्तव में उपर्युक्त सभी प्रकार के उच्च विचार और उनके कार्य ने तत्कालीन हिन्दुस्तानी संस्कृति को बहुत ऊँचाइयों पर ला दिया था और एक सच्चे क्षत्रिय होने का स्पष्ट परिचय हमेशा दिया था। उनका सौभाग्य ही था कि उनके अच्छे विचार और अच्छे कार्यों के प्रभाव से उनकी जनता सदा उन्हें प्यारी ही नहीं अपितु जनता जनार्दन ने राणा सांगा का हर पग पर साथ दिया था। इस सन्दर्भ में डॉ0 कालूराम शर्मा[33] के अधोलिखित विचार को स्वीकार किया है।

'उसने चरित्र बल से उस समय इस बात की पुष्टि कर दी कि उच्च पद और चतुराई की अपेक्षा स्वदेश–रक्षा और मानव–धर्म का पालन करने की क्षमता का अधिक महत्व है। उसने हिम्मत, मर्दानगी और वीरता के आचरणों को अपनाकर अपने आपको अमर बना डाला। आज भी उनके जीवन के उद्‌देश्य और आचरण भारतीय जनता के लिए आदर्श बने हुए हैं।''

सन्दर्भ–ग्रन्थ सूची

1. नागरिक शास्त्र, पृष्ठ 82,

   Society is prior to the state. It embraces all communities organised or unorganised.

2. मानव समाज, अध्याय 13, पृष्ठ 201, Culture is the man-made part of environent.

3. जैन संस्कृत महाव्य में भारतीय समाज– अध्याय 01, पृष्ठ 61

4. अमर कोश– 2, 5, 42 पशूनां समजोऽन्येषां समाजो सहधर्मिणाम्।

5. मुगल कालीन भारत, 1/1

6. भोज प्रबन्ध पृष्ठ–36 राज्ञि धर्मिणि धमिष्ठाः पापे पापपरा सदा।
   राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजा।।

7. राजस्थान का इतिहास अध्याय 5, पृष्ठ 176

8. ऋग्वेद पुरुष सूक्त 10/90/12 ब्राहमणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ऊरु तदस्थ यद्रवैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत्।

9. भगवद्गीता, 4/13 चातुर्वण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।

10. मनुस्मृति 1/87 सर्वस्यास्य ुसर्गस्य गुप्तयर्थं समहाद्युतिः।
    मुखबाहूरुपज्जानां पृथक्कर्माण्यकल्पयत्।।

11. विष्णोई सम्प्रदाय और साहित्य, पृष्ठ 181

12. महाराणा कुम्भा और उनका काल – 8/191

13. मनुस्मृति 1/88 अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
    दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राहमणानामकल्पयत्

14. मनुस्मृति 1/89 प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेवच।
    विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः।।

15. मनुस्मृति 1/90 पशूनां रक्षणं दानमिज्या ध्ययनमेव च।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च।।

16. मनुस्मृति 1/91 एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया।।

17. मेवाड़ मुगल सम्बन्ध, अध्याय–1 पृष्ठ 23

18. मनुस्मृति 9/3 पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्र न स्त्री स्वातन्त्रयमर्हति।।

19. महाराणा कुम्भा और उनका काल अध्याय 08, पृष्ठ 196

20. दशरूपक तृतीय प्रकाश, पृष्ठ 238, वेशो भृतिः सोऽस्याः जीवनमिति वेश्या तद्विशेषो गणिका

21. महाभारत, शान्ति पर्व

22. महाराणा कुम्भा और उनका काल, अध्याय–8, पृष्ठ 201

23. समयोचितपद्यरत्न मालिका पृष्ठ 18

24. रामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड, दोहा 21, चौपाई 4, सबके देह परमप्रिय स्वामी।

25. महाराणा कुम्भा और उनका काल, अध्याय 8, पृष्ठ 198

26. राजस्थान का इतिहास, अध्याय 5, पृष्ठ 149

27. संस्कार प्रकाश, पृष्ठ 1 संस्कारोल्लिखितो महामणि समो देदीप्यते मानवः।

28. मनुस्मृति 7/70

29. मनुस्मृति 7/74 एकः शतं योध्यति प्राकारस्थो धनुर्धरः।
शतं दशसहस्राणि तस्माद् दुर्गं विधीयते।।

30. पंचतन्त्र 5/56 नान्यद् गीतात् प्रियं देवानामपि दृश्यते।
शुष्कस्नायुस्वराह्लादात् त्र्यक्षं जग्राह रावण।।

31. Mewar Saga Chapter 4, page 38-

Under Saga, Mewar reached the aema of its glory and prosperity. He expended his kingdom to the bank of Jamuna in the north, to Malwa in the south, Sind in the west and the Aravallis in the east- a kingdom yielded him a revenue of 10 cror rupees.

32. Mewar Saga Chapter 4, page 38-

Sanga faught 18 pitched battles against the sultan of Delhi and Malwa.

33. राजस्थान का इतिहास, अध्याय 4, पृष्ठ 174

****

अष्टम अध्याय

उपसंहार एवं सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

अष्ठम अध्याय

उपसंहार एवं सन्दर्भित ग्रन्थ–सूची

उपसंहार

हमारा देश सभ्यता और संस्कृति की दृष्टि से बहुत समृद्धिशाली रहा है। यहाँ का इतिहास सदैव इस बात का साक्षी रहा है कि हमारे भारत वर्ष में समय–समय पर एक से बढ़कर एक योद्धा, स्वदेश–प्रेमी, दानी, कुशल प्रजापालक और जननायकत्व शक्ति से सम्पन्न महापुरुषों ने जन्म लेकर अपने–अपने आदर्श प्रस्तुत किए हैं। उस प्रकार के योद्धाओं की दृष्टि से मेवाड़ की धरती बहुत प्रसिद्ध रही है। मेवाड़ में राणा कुम्भा के पौत्र और राणा रायमल के पुत्रों में संग्राम सिंह (राणा सांगा) का नाम आज भी बहुत आदर के साथ लिया जाता है। उन्हीं महाराणा सांगा को लक्ष्य कर शोध–कार्य हेतु ''महाराणा सांगा और उनका काल'' शोध–शीर्षक को स्वीकृति प्रदान की गयी है।

इस शोध प्रबन्ध का विभाजन आठ अध्यायों में किया गया है। ''मेवाड़ की भौगोलिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि'' नामक प्रथम अध्याय में मेवाड़ की धरती पर तत्कालीन पर्वतों, वनों, नदियों और पठारों आदि का उल्लेख किया गया है। इसी अध्याय में वहाँ की अनेक प्रकार की भूमि की भी चर्चा की गयी है।

''रायमल की मृत्यु के समय मेवाड़'' नामक दूसरे अध्याय में मेवाड़ के अन्दर उस दशा का उल्लेख किया गया है जिस समय वहाँ हर प्रकार की समस्या उपस्थिति हो गयी थी। अपनी दुर्बलता और ढुलमुल नीति के

चलते रायमल कभी अपना उत्तराधिकारी नही चुन सके थे जिसके प्रभाव को इस अध्याय में उजागर किया गया है।

''राणा सांगा का उत्कर्ष, उनका अजमेर और चाकसू से सम्बन्ध'' नामक तीसरे अध्याय में राणा सांगा द्वारा मेवाड़ के सिंहासन को सँभालने के समय मेवाड़ की परिवर्तित और अच्छी दशा हो गयी थी। इस प्रकार वहाँ की आन्तरिक और वाह्य उन्नति का प्रस्तुतीकरण इस अध्याय में करते हुए राणा सांगा के द्वारा अजमेर पर किये गये आक्रमण को दर्शाया गया है। उसी क्रम में अजमेर को जीतकर राणा सांगा के अपने अज्ञातवास के समय कर्मचन्द्र पँवार को अजमेर की सत्ता प्रदान करने का उल्लेख किया गया है। उसके बाद राणा सांगा के द्वारा चाकसू की विजय को दिखाते हुए पूरनमल की जागीर में उस चाकसू को मिला देने का उल्लेख किया गया है। उसी क्रम में इतिहास के साक्ष्य के आधार पर यह भी प्रस्तुत किया गया है कि राणा सांगा बहुत कुशल और राजनीति के जानने वाले थे जिसके चलते उन्होंने अजमेर और चाकसू पर स्वयं प्रकट शासन नहीं किया अपितु कर्मचन्द्र पँवार और पूरनमल को वहाँ स्थापित कर अपने मेवाड़ की सीमा को पूर्ण रूप से सुरक्षित कर लिया था।

''राणा सांगा ईडर, मालवा और गुजरात'' नामक चतुर्थ अध्याय में राणा सांगा की ईडर, मालवा, गुजरात राज्य के साथ व्यवहार में लाई गयी नीतियों की चर्चा की गई है। इन ईडर, मालवा और गुजरात राज्यों के साथ राणा सांगा के उस समय के सम्बन्धों का उल्लेख भी इसी अध्याय में किया गया है।

"राणा सांगा का दिल्ली के सुल्तानों से सम्बन्ध" नाम के पाँचवें अध्याय के भीतर दिल्ली सल्तनत की स्थापना और वहाँ उनके प्रमुख वंशों का संक्षेप में परिचय देने का यथासम्भव प्रयास किया गया है। उसी क्रम में गुलामवंश, खिलजी वंश, तुगलक वंश, सैय्यद वंश का संक्षिप्त परिचय देते हुए लोदी वंश के अन्तर्गत बहलोल लोदी, सिकन्दर लोदी और इब्राहीम लोदी को भी प्रस्तुत करते हुए राणा सांगा के साथ उनके सम्बन्धों की चर्चा की गयी है।

"राणा सांगा और बाबर" नामक छठवें अध्याय के भीतर राणा सांगा और बाबर के संक्षिप्त वंशवृक्ष की प्रस्तुति करके उनकी प्रारम्भिक स्थिति की चर्चा की गयी है। उसी क्रम में राणा सांगा और बाबर दोनों के समीक्षात्मक व्यवहार का उल्लेख करते हुए राणा सांगा को उत्कृष्ट शासक के रूप में दिखया गया है जो कि तर्क संगत भी लगता है। उसी अध्याय में बाबर और राणा सांग की कठिनाइयों/समस्याओं की चर्चा भी की गयी है और यह भी दिखाया गया है कि राणा सांगा की यद्यपि उन्हीं के बड़े भाई पृथ्वीराज के द्वारा तलवार मारकर दाहिनी आँख सदा–सदा के लिए खराब कर दी गयी थी और इब्राहीम लोदी के साथ युद्ध में तोपों का गोला लग जाने से राणा सांगा का शरीर एक तरफ बेकार हो गया था फिर भी उन राणा सांगा के छोटे और गठीले शरीर में अदम्य साहस भरा था। वह अपने व्यवहार और व्यक्तित्व के बल पर अन्य राजाओं, रावों और सामन्तों के वह बहुत प्रिय थे। राणा सांगा के इशारे मात्र को पाकर वे सब हर समय मर मिटने को तैयार रहते थे। इसी अध्याय में राणा सांगा का खानवा के क्षेत्र में बाबर के साथ महासंग्राम को दर्शाया गया है और यह

सिद्ध किया गया है कि राणा सांगा अपने अन्तिम होश तक अपने मेवाड़ के लिए और अपनी शान के लिए बराबर से लड़ने को तैयार रहे किन्तु राणा सांगा के कुछ भीरू और निकट के लोगों ने राणा सांगा को विष देकर मेवाड़ ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारत वर्ष के ऊपर हिन्दू राष्ट्र की स्थापना करने के इच्छुक राणा सांगा को मौत के मुँह में डाल दिया था।

''राणा सांगा कालीन सामाजिक और सांस्कृतिक उन्नति'' नामक सातवें अध्याय में राणा सांगा के समय मेवाड़ के समाज की सुधरी और उन्नतिशील दशा का उल्लेख किया गया है। इसी अध्याय के भीतर राणा सांगा के समय मेवाड़ को स्वर्णिम अवसर प्राप्त हो गया था। राणा सांगा ने मेवाड़ को उन्नति के शिखर पर पहुँचा दिया था इसे भी दर्शाया जा चुका है। उसी क्रम में तत्कालीन समाज के भीतर प्रचलित वर्ण–व्यवस्था को प्रस्तुत करते हुए वहाँ के समाज में रहने वाले किसानों, शिल्पकारों, कलाकारों और सेना आदि के उन्नयन को प्रस्तुत किया गया है। नदियाँ, वन, पर्वत, पठार, भमि, जलवायु और उत्सव आदि पर उस स्थान की संस्कृति को अवश्य प्रकट करते हैं। इस पक्ष का उल्लेख करते हुए प्रकृति को मानव के ऊपर पड़ने वाले व्यावहारिक प्रभाव को दिखाते हुए उस तथ्य को भी उजागर करने का प्रयास किया गया है कि दुर्गम क्षेत्र के वासियों में ही दुर्गम और अजेय साहस रहता है और उनमें झुकना कभी नहीं आता है, वे अपनी अंतिम साँस तक दृढ़ रहकर संघर्ष करने के आदी रहते हैं। वह अपनी संस्कृति का निर्माण स्वयं अपने व्यवहारों के द्वारा किया करते हैं। इस प्रकार, उस समय राणा सांगा के द्वारा पूर्व समय में स्तब्ध मेवाड़ की अच्छी संस्कृति को प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रकार से इस सम्पूर्ण शोध–प्रबन्ध के अन्तर्गत राणा सांगा के व्यक्तित्व, व्यवहार, शौर्य, भीतर और बाहर की गयी उन्नति, सामाजिक अध्ययन और सांस्कृतिक पक्ष को यथासम्भव रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इसी के साथ यह भी दर्शाया गया है कि अपने अंगों की विकलता का कोई भी वैसा प्रभाव राणा सांगा ने अपनी राजनीतिक, अपने व्यवहार, अपने विचार और प्रजापालन आदि में नहीं आने दिया था। इतना अवश्य था कि राणा सांगा यदि उस अपने समय की अपेक्षित तकनीक के अनुसार नये और प्रचलित हथियारों के द्वारा 'खानवा' के मैदान में बाबर के साथ लड़ाई लड़े होते तब बाबर की विजय कभी संभव नहीं होती और भारतवर्ष के इतिहास में राणा सांगा का एक महत्वपूर्ण अध्याय जुड़ गया होता और सिद्ध हो जाता कि बाबर तो एक भीषण आँधी के समान था जो धन की लालच में कभी अपने और पराये को नहीं पहचाना था। धन लूटने और अपने साम्राज्य के विस्तार की ललक में बाबर ने हिन्दू और मुस्लिम कुछ नहीं देखा था। मात्र विनाश करते हुए बाबर अपनी उसी नीति पर चलता गया था। दूसरे पक्ष में सांगा एक ऐसा महान् ओर वीर राजपूत थे जिन्होंने हिन्दू का पक्ष हमेशा लिया था और हिन्दू राष्ट्र के रूप में भारत को प्रतिष्ठित करना चाह रहे थे। उन्होंने किसी को विनष्ट नहीं किया था उनका अपना व्यक्तिगत प्रभाव ही उस प्रकार का था कि उनके इशारे मात्र को अन्दाज कर उनके सहयोगी राजा, राव, सरदार और सामन्त मर मिटने तक के लिए हर समय तैयार रहते थे। उनका अपना ही प्रभावशाली व्यक्तित्व था कि उन राणा सांगा के पास बहुत विशाल सेना थी जिसका सामना उस समय कोई करने की क्षमता

दुनिया भर में नहीं कर सकता था। यदि उस समय की युद्ध की तकनीक का उन्होंने प्रयोग किया होता।

राणा सांगा के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता एक और थी उन्होंने अपने सामने झुकने वाले किसी शत्रु का कभी कोई नुकसान नहीं किया था। यदि पकड़ा गया शत्रु उनके अनुकूल रहने को राजी हो जाता था तो वह अपनी राजपूतानी मर्यादा के अनुसार उसे क्षमा कर देते थे और उसके साथ सम्मानपूर्वक व्यवहार किया करते थे। इसके ज्वलन्त उदाहरण के रूप में मालवा के सुल्तान द्वितीय थे जिन्होंने राणा सांगा के साथ लड़ाई ठान ली थी किन्तु राणा ने जब उन्हें पकड़ लिया तो 6 माह तक सम्मानित रूप में अपने चित्तौड़ के भीतर कैदी के रूप में रखा था। इसके बारे में राणा सांगा ने उन्हें सम्मानपूर्वक मालवा जाने दिया था। यह उदाहरण[1] राणा सांगा के गौरव में चार चाँद लगाने वाला सिद्ध हुआ था।

34- Mewar Saga, Chapter 4, Page 38

In 1519 Sanga routed Malwa's forces and took Sultan Mahmud 11 prisoner and kept him in Chittor for 6 months while prisoner, the Sultan was treated with great curtesy and then sent back home with an escort of 1000 horses. The later agreed to pay a war indemnity snd surrender the gold cap and belt, the heirlooms of the Malwa ruting family, and to send hisson to the Rana's court as a pledge for future good relation between Malwa and Mewar.

सन्दर्भ–ग्रन्थ सूची

1. **अमरकोष**– अमरसिंह, चौखम्भा संस्कृत सीरीज ऑफिस वाराणसी, 1978
2. **अकबरनामा**– अबुल फजल, कलकत्ता, 1976
3. **अकबर महान**– आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, कलकत्ता, 1973
4. **एनल्स एण्ड एण्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान**– कर्नल टाड
5. **बाबरनामा**– बाबर, अनुवादक श्रीमती ए0एस0 बैवरिज, लन्दन, 1922
6. **भारत की प्रसिद्ध लड़ाइयाँ**– केशव कुमार ठाकुर, आदर्श हिन्दी पुस्तकालय, मालवीय नगर, इलाहाबाद, 1967
7. **भारतीय समाज**– टी0एस0 ठाकुर, महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा, 1988
8. **भारतीय इतिहास भाग–1** – पी0सी0 कौल, प्रतिभा साहित्य सदन इलाहाबाद, 1987
9. **भारतीय इतिहास भाग–2** – सम्पादक अरविन्द कुमार श्रीवास्तव, प्रतिभा साहित्य सदन इलाहाबाद, 1990
10. **भारत में मुगल साम्राज्य**– एस0आर0 शर्मा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 1970
11. **भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास**– एस0आर0 शर्मा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 1976
12. **भारत वर्ष का इतिहास**– एस0पी0 तिवारी, भार्गव पुस्तक भण्डार, गाय घाट, वाराणसी, 1940
13. **भारतीय इतिहास कोष**– सच्चिदानन्द भट्टाचार्य, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1989

14. **भारतीय सम्भ्यता और संस्कृति का विकास**– बी0एन0 लूनिया , लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 1998

15. **भगवद्गीता**– व्यास, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1999

16. **भोज प्रबन्ध**– बल्लाल, साकेत प्रकाशन केन्द्र, फैजाबाद, 1977

17. **दशरूपक**– धनंजय, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ, 1980

18. **दिल्ली सुल्तनत**– मो0 हबीब, खलिक अहमद निजामी, भारतीय साहित्य अनुसंधान परिषद्, 1978

19. **दिल्ली सल्तनत का इतिहास**– महाजन, एस0कौल एण्ड कम्पनी, 1986

20. **एकलिंग माहात्म्य**– कान्हव्यास, सरस्वती भवन उदयपुर, 1477–78

21. **एपिग्राफिया इण्डिका**– रिपोर्ट्स, रिपोर्ट्स

22. **हिन्दुस्तान का इतिहास**– वी0सी0 मजूमदार, जगदीश पब्लिकेशन्स, आगरा, 1988

23. **हम्मीर मद मर्दन**– जयसिंह सूरि, गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज

24. **इण्डियन एण्टीक्वेरी रिपोर्ट्स**– रिपोर्ट्स

25. **जैन संस्कृत महाकाव्यों में भारतीय समाज**– डॉ0 मोहनचन्द्र, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, 1989

26. **कालिदास–ग्रन्थावली**– कालिदास, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, 1997

27. **महाभारत**– व्यास, गीता प्रेस, गोरखपुर, 2009

28. **मेवाड़ मुगल सम्बन्ध**– डॉ0 गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान हिन्दी अकादमी, जयपुर, 1974

29. **मुगलकालीन भारत**– एस0एल0 नागौरी, श्री सरस्वती सदन, ए–1/32, सफदरगंज इनक्लेव, दिल्ली, 2002

30. **मनुस्मृति**– मनु, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2008

31. **माध्यमिक भारत भूमि का इतिहास**– शिवनरायन सिंह राना, हिन्दी प्रचारक पब्लिकेशन प्राइवेट लिमिटेड, सी.21/30 पिशाचमोचन, वाराणसी, 1972

32. **मध्यकालीन भारत**– हरिश्चन्द्र वर्मा, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1983

33. **मेवाड़ से मुगलों के सम्बन्ध**– बी0एस0 भार्गव, राजस्थान हिन्दी अकादमी, जयपुर, 1973

34. **मृच्छकटिक**– शूद्रक, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2005

35. **मेघदूतम्**– कालिदास, महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा, 1998

36. **महाराणा कुम्भा और उनका काल**– डॉ0 तारामंगल, आलोक प्रेस, जोधपुर, 1984

37. **मुगलकालीन भारत**– डॉ0 आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, अस्पताल मार्ग, आगरा–3, 1953

38. **मध्यकालीन भारत**– प्रो0 सतीशचन्द्र, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान परिषद्, 1990

39. **मध्यकालीन भारत का संक्षिप्त इतिहास**– डॉ0 ईश्वरी प्रसाद, इण्डियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग, 1957

40. **मानव समाज**– डॉ0 जी.के. अग्रवाल, साहित्य भवन पब्लिशर्स, 34 लालपत कुंज, आगरा, 1999

41. **मेवाड़ के महाराणा और शहंशाह अकबर** - राजेन्द्र शंकर भट्ट, स्टफिक प्रकाशन–3, म्यूजियम मार्ग, जयपुर, 1976

42. **मुगलकालीन भारत**– दीनानाथ वर्मा, ज्ञानदा प्रकाशन, पटना, 1985

43. **नीतिशतक**– भर्तृहरि, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1998

44. **नागरिक शास्त्र**– सतीशचन्द्र अग्रवाल, नवीन प्रकाशन मन्दिर, महाजनी टोला, इलाहाबाद, 1977

45. **नागरी प्रचारिणी पत्रिका**– पत्रिका

46. **पंचतन्त्र**– विष्णुशर्मा, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 1990

47. **प्राचीन राजवंश और बौद्ध धर्म**– डॉ0 अच्युतानन्द घिण्डियाल, विवेक घिण्डियाल बन्धु, श्रीनगर अग्रवाल, 1976

48. **प्राचीन भारत का इतिहास**– बी0डी0 महाजन, एस0चन्द्र एण्ड कम्पनी, 1985

49. **रामचरित मानस**– गोस्वामी तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1990

50. **राजस्थान का इतिहास**– सुखवीर सिंह गहलौत, राजस्थान साहित्य मन्दिर, राजस्थान, 1980

51. **राजस्थान का इतिहास**– /ईश्वरी प्रसाद, आदर्श हिन्दी पुस्तकालय, इलाहाबाद, 1986

52. **राजस्थान का इतिहास**– डॉ0 गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान हिन्दी अकादमी, जयपुर, 1974

53. **राजस्थान का इतिहास**– डॉ0 कालूराम शर्मा, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1987

54. **ऋगवेद**– वैदिक शोध संस्थान, पूना, 1978

55. **संस्कार प्रकाश**– डॉ0 भवानी शंकर त्रिवेदी, श्री लाल बहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, शहीदजीत सिंह मार्ग, नई दिल्ली, 1986

56. **सभ्यता एवं संस्कृति–** डॉ0 एस.आर. विश्नोई, महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा, 1985

57. **संस्कार शिक्षा–** डॉ0 ज्वलन्त कुमार शास्त्री, आर्यसामज शक्तिनगर, सोनभद्र, 2002

58. **शिक्षा मनोविज्ञान–** डॉ0 मालती सारस्वत, आलोक प्रकाशन, 1999

59. **सामाजिक नियन्त्रण तथा परिवर्तन–** एम.एल. गुप्ता, डी.डी. शर्मा, साहित्य भवन आगरा, 1995

60. **समयोचित पद्य रत्न मालिका–** मातृ पाण्डेय, चौखम्बा अमर भारती प्रकाशन, वाराणसी, 1987

61. **तुलनात्मक शासन एवं राजनीति–** डॉ0 वीरकेश्वर प्रसाद सिंह, ज्ञानदा प्रकाशन–24, दरियागंज अन्सारी रोड, नई दिल्ली, 1998

62. **उदयपुर राज्य का इतिहास–** डॉ0 गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा, साहित्य संस्थान, उदयपुर, 1989

63. **विश्नोई सम्प्रदाय और उनका साहित्य–** हीरालाल, कलकत्ता प्रकाशन, कलकत्ता, 1952

64. **वीर विनोद–** कवि श्यामदास, हिन्दी अकादमी, जयपुर, 1978

65. **Bhargawas Dictionory-** R.C. Pathak, Bhargavaa Book Depot, Chowk Varanasi, 12 Edition, 2009

66. **Bhargawas Dictionory-** R.C. Pathak, Bhargavas Book Depot, Chowk Varanasi, 6 Edition, 1978

67. **Maharana Sanga-** Harbilas S arda, Ajmer, Scottish Mission Industries Company Limited 1918

68. **Mewar Sanga-** Dr. Mankekar, Vikas Publishing House, Pvt. Ltd., New Delhi – 1976

69. **Social Changes and Progress**- O.P. Shukla, Sahitya Bhawan Agra, 1998

70. **Sociology and Social Relation**- A.P. Sharma, Sahitya Bhawan, Subhash Bazar, Meerut, 1999

71. **The Mugal Empire**- R.C. Magumdar, Majumdar Prakashan, 1988

****